1945 से प्रकाशित

मई 2011 दस रुपये

आजकल

साहित्य और संस्कृति का मासिक

केदारनाथ अग्रवाल

मैं हूं अनास्था पर लिखा
आस्था का शिलालेख
...मृत्यु पर जीवन के जय की घोषणा

शहीद भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू

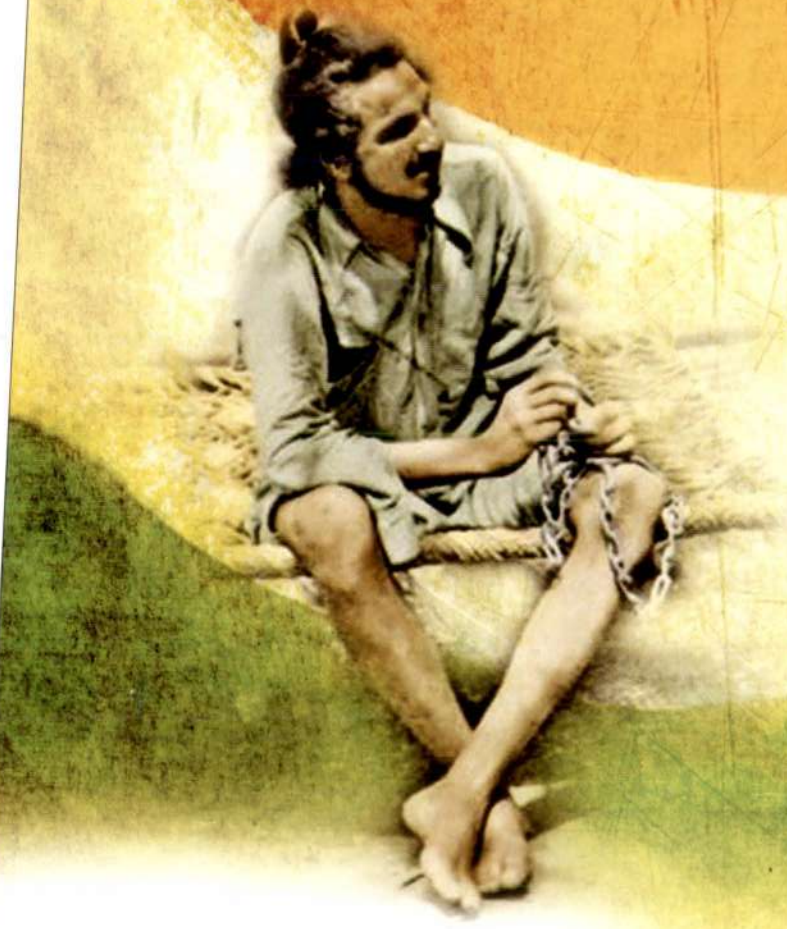

उनकी शहादत को सलाम

शहीदी दिवस, 23 मार्च

सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

22111/13/0059/1011

AH-7/2011

ISSN-0971-8478

स्थापित 1945

आजकल

वर्ष : 67; अंक : 01; पूर्णांक : 799
मई 2011; वैशाख-ज्येष्ठ 1933

संपादक
सीमा ओझा

सह संपादक
फरहत परवीन

आवरण चित्र : **अनूप पांडेय**
आवरण सज्जा : **अर्चित धीर**

संपादकीय पत्र व्यवहार :
संपादक
आजकल : प्रकाशन विभाग
कमरा नं. 120, सूचना भवन
सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110003
फोन : 2436 2915

website :
www.publicationsdivision.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
जे. के. चंद्रा

सदस्यता शुल्क :
वार्षिक : 100 रुपये; दो वर्ष : 180 रुपये;
तीन वर्ष : 250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक से)
एक वर्ष : पड़ोसी देश : 530 रुपये
शेष विश्व : 730 रुपये

सदस्यता संबंधी पूछताछ :
सूर्यकांत शर्मा
वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
फोन : 26100207 / 26175516
ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

टाइपसेट : **ज्योति लेजर टाइप सेटिंग**

इस अंक में

पृष्ठ 1-56

लेख

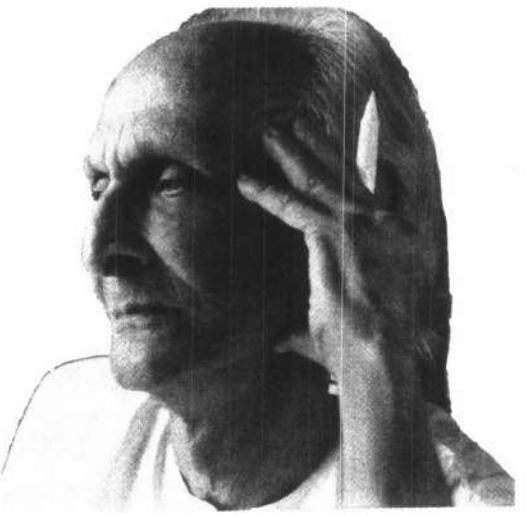

मुझे प्राप्त है
जनता का बल
वह बल मेरी
कविता का बल
मैं उस बल से
शक्ति प्रबल से
एक नहीं
सौ साल जिऊंगा!

2.	*प्रसंगवश*	
3.	*आपके पत्र*	
5.	*क्यों न यह कवि मुझे विशेष प्रिय हो ...*	*शमशेर बहादुर सिंह*
6.	*सजल नयन गदगद गिरा ...*	*रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी*
10.	*फूल नहीं रंग बोलते हैं !*	*शमशेर बहादुर सिंह*
13.	*उन्मादिनी (कहानी)*	*केदारनाथ अग्रवाल*
15.	*बैल बाज़ी मार ले गए (उपन्यास अंश)*	*केदारनाथ अग्रवाल*
17.	*काल को चुनौती की परंपरा और केदारनाथ अग्रवाल*	*बलदेव वंशी*
20.	*जीवन जीता हारी मौत*	*अशोक त्रिपाठी*
25.	*पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी हिंदुस्तान में रहूंगा...*	*कुमुद शर्मा*
27.	*जनकवि केदारनाथ अग्रवाल : संक्षिप्त जीवन परिचय*	*शिप्रा सिंह*
28.	*ओ जन-मन के सजग चितेरे! (कविता)*	*नागार्जुन*
29.	*चाहे तुम हमको गरियाना (पत्र)*	*केदारनाथ अग्रवाल*
30.	*पाब्लो नेरुदा की कविता (अनुवाद)*	*केदारनाथ अग्रवाल*
31.	*मांझी! न बजाओ वंशी : केदार की कविता का स्थापत्य*	*ओम निश्चल*
36.	*प्राकृत सौंदर्य के चितेरे कवि केदारनाथ अग्रवाल*	*नरेंद्र पुंडरीक*
39.	*कविता ने मुझे आदमी बनाया : केदारनाथ अग्रवाल*	*आनंदस्वरूप श्रीवास्तव*
41.	*बहुत धूप खाई है मैंने (बातचीत)*	*मजीद अहमद*
43.	*कवि केदारनाथ अग्रवाल का प्रेम-दर्शन*	*ज्योति किरण*
45.	*दांपत्य रस के अनूठे कवि*	*नंदकिशोर नंदन*
47.	*मैं समय की धार में धंसकर खड़ा हूं...*	*चंद्रकांत सिंह*
49.	*केदार की कविता में स्त्री*	*मेधा*
51.	*केदारनाथ अग्रवाल के गीत : संवेदना और दृष्टि*	*रामनिहाल गुंजन*
53.	*केन कूल का गीत विहग*	*शुभा श्रीवास्तव*
55.	*पुस्तक चर्चा*	
56.	*समीक्षा*	

हमारे विक्रय केंद्र : **नई दिल्ली:** सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260; **लखनऊ:** हाल नं. 1, दूसरी मंजिल, केंद्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225455; **कोलकाता:** 8, एस्प्लेनेड ईस्ट; दूरभाष : 33-22488030; **पटना :** बिहार रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ; दूरभाष : 0612-2683407; **मुंबई :** 701 बी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवीं मुंबई; दूरभाष : 9522-27570686; **बंगलौर :** एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला दूरभाष : 080-25537244; **हैदराबाद :** ब्लाक-4, प्रथम तल, गृहकल्प कांप्लेक्स, एम.जे. मार्ग, नामपल्ली; दूरभाष :040- 24605383; **चेन्नई :** राजाजी भवन, बेसेंट नगर; दूरभाष : 044-24917673; **तिरुअनंतपुरम :** गवर्मेंट प्रेस के निकट; दूरभाष : 041-2330650

प्रसंगवश...

कवि नागार्जुन केदार के बारे में लिखते हैं–

मैंने तुमको पहचाना है
समझा-बूझा है, जाना है
केन कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो
कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहे
वह भी तुम हो
लाठी लेकर काली रात में करता जो उनकी रखवाली
वह भी तुम हो

एक संवेदनशील इंसान, जनवादी चेतना के प्रहरी, धरती से जुड़े, लोक से जुड़ाव, परिवेश और प्रकृति से अपनापा रखने वाले केदार जी का पूरा जीवन ही छंदमय रहा। उत्तर प्रदेश के एक छोटे शहर बांदा के निवासी केदारनाथ ने बुंदेलखंड की धरती, कल-कल बहती केन की उत्ताल तरंगों और गांव-कस्बे की संवेदना, को जहां काव्य में उतारा वहीं आम जनता के आवेग का स्वर भी बने। केन की तरह ही आपकी कविता, आपकी भाषा ने लोगों को दिया एक आधार, एक संबल! केदार जी जब प्रकृति, स्त्री, सामान्यजन की व्यथा को स्वर देते हैं तो उस स्वर में वह साक्षात मौजूद रहते हैं अपनी पूरी सरलता के साथ।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के पश्चात यदि कहीं संघर्ष का स्वर मुखरित हुआ है तो वह केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में–उनकी कविताओं में संघर्ष चाहे जनता का हो या जीवन का, संघर्ष के स्वर दबे पांव आते गए हैं।

कवि की व्यापक दृष्टि में संघर्ष के बावजूद है ईमानदारी! जीवन के हर पक्ष पर लेखनी चलाते हुए केदारनाथ मुक्त हैं प्रलोभनों से। केदार के काव्य का केंद्र बिंदु है– सामान्यजन। कबीर के समान ही दो टूक कहने वाले कवि की कविता आम जन तक सीधे पहुंचती है। वह पुस्तकों में कैद रहने की बजाय जन-जन का शब्द बन जाती है। प्रकृति की संवेदना से जुड़ा कवि उसकी रूमानियत में नहीं डूबता बल्कि कृषक समाज के शोषितों के लिए क्रांति का स्वर भी बनता है। लोक तक सीधे पहुंचने वाला यह कवि बिना लाग लपेट के कहता है–

मेरी कविताएं गाएगी
जनता सस्वर

जन्मशती वर्ष में कवि केदार के व्यक्तित्व व कृतित्व का सही मूल्यांकन हो इसके लिए जब लेख मिले तो सभी लेखों में कवि केदार ही उपस्थित थे गद्यकार केदार पर बहुत ही कम लेख मिले। कवि केदार जनप्रिय हैं, लोकप्रिय हैं। गद्यकार केदार कहीं छुप गए हैं पद्य के आगे।

समय की धार में धंसकर खड़ा कवि सगर्व यह घोषणा करता है कि कविताई न मैंने पाई न चुराई, इसे मैंने जीवन जोतकर किसान की तरह बोया और काटा है तभी तो आज शताब्दी वर्ष में कवि केदार अपने देसीपन के बावजूद पूरे देश के कवि बने हैं।

बहुपठित केदारजी पर आजकल का यह अंक समर्पित करते हुए चाहा कि कवि, गद्यकार केदार जी के हर रूप, हर रचना की प्रस्तुति हो पर ऐसा संभव न हो सका।

मैं आभारी हूं अशोक त्रिपाठी की– जिन्होंने केदार जी के गद्य विषयक सामग्री उपलब्ध कराने में भरपूर सहयोग दिया। केदार जी की रचनाओं को त्रिपाठी जी ने न केवल संजोया है बल्कि उसका प्रकाशन भी कराया है और मांगने पर बिना किसी हीला-हवाले के केदारजी की हस्तलिखित कापियां पकड़ा दीं कि–"आप कहानियां छांट लें।" अगर हम सभी अपने श्रद्धेय साहित्यकारों के प्रति उनकी रचना के प्रति ईमानदार रहे तो शायद कवि की यह उद्घोषणा व्यर्थ नहीं जाएगी–

इसी जन्म में / इस जीवन में
हमको तुमको मान मिलेगा
गीतों की खेती करने को
पूरा हिंदुस्तान मिलेगा।

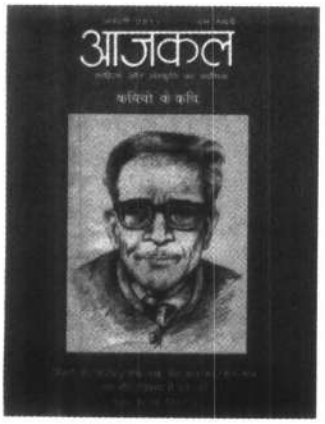

श्रेयस्कर कार्य

● जनवरी, 2011 अंक 'कवियों के कवि शमशेर को पूरी तरह समर्पित कर आपने श्रेयस्कर कार्य किया है। शमशेर जितने प्रतिभाशाली कवि और चित्रकार हैं, उतने ही कुशल अनुवादक भी हैं। इस अंक में आपने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के विविध पक्षों पर पठनीय सामग्री जुटाकर सराहनीय कार्य किया है। मुझे लगता है कि इसी प्रकार के अंक शंभुनाथ सिंह, भवानी प्रसाद मिश्र, मुकुट बिहारी सरोज, उमाकांत मालवीय जैसे रचनाकारों पर भी आने चाहिए।

–बुद्धिनाथ मिश्र, देहरादून

बेजोड़ अंदाज़

● *आजकल* का जनवरी-2011 का अंक मेरे हाथों में है। महान कवि और साहित्यकार शमशेर बहादुर सिंह को समर्पित यह अंक पठनीय व संग्रहणीय है। पूर्व का दिसंबर-2010 का अंक जो उपेंद्रनाथ 'अश्क' को समर्पित था, वह भी काबिलेतारीफ़ था। उपेंद्रनाथ जी के विभिन्न मुद्राओं के चित्रों वाला मुखपृष्ठ आकर्षक लगा। वहीं जनवरी के अंक में कृष्णदत पालीवाल, सुरेश सलिल व प्रकाश मनु के लेख सराहनीय रहे। साथ ही 'कीर्ति स्तंभ', प्रसंगवश, पत्र, बातायन सहित सभी स्तंभ बेजोड़ एवं अंत तक पाठक को बांधे रखने वाले हैं। हर अंक में आप जो सुंदर-सा पोस्टर देते हैं, वह भी संग्रहणीय होता है। पिछले कई अंकों में 'कीर्ति स्तंभ' लेखमाला में *आजकल* को आपने देश के महान कवियों और साहित्यकारों को समर्पित किया है। इसी प्रकार आगामी अंकों में कभी महान साहित्यकार एवं युग निर्माण योजना के सूत्रधार पं. श्रीराम शर्मा को समर्पित अंक भी निकालें। यह वर्ष इनका भी जन्मशताब्दी वर्ष है।

–सिमरथाराम सेवदा 'समर्थ', बाड़मेर

सेतुधर्मी शख्सियत

● उपेंद्रनाथ अश्क अंक प्राप्त हुआ, यह पिछली शताब्दी के चर्चित रचनाकार की उपस्थिति को तो दर्शाता ही है साथ ही इस शताब्दी में उन जैसी सेतुधर्मी शख्सियत की व्यक्तिगत विशिष्टता को नए अर्थ देता है। हिंदी और उर्दू के बीच एक सेतु की तरह स्थापित हो जाने वाले इस शख्सियत की विशिष्टताओं को महत्त्वपूर्ण रचनाकारों ने अपनी-अपनी तरह व्याख्यायित किया है। कृष्णदत्त पालीवाल हों, महेश दर्पण हों, या से.रा. यात्री, अपनी तरह से सभी ने अश्क की पिछली शताब्दी में उपस्थिति दर्शाई है। 'संस्मरणरंभ' से हिंदी कविता में उपस्थिति दर्ज कराने वाले उनके कवि-संपादक पुत्र नीलाभ ने भी पीढ़ियों के उस संघर्ष को बताया है और अपने पिता को सिर्फ पिता की तरह नहीं जीवन में जद्दोजहद करते रचनाकार को श्रद्धांजलि दी है।

–माताचरण मिश्र, गोविंदपुरा, भोपाल

स्मृतिशेष : अश्क

● *आजकल* पढ़ा, अच्छा लगा। रचना-शिल्पी उपेंद्रनाथ अश्क के जीवन और रचना-संसार को दर्शाने वाला यह अंक साहित्य प्रेमियों के लिए नई दृष्टि देने वाला साबित होगा। जिन साहित्यकारों ने अपने सृजन से समाज को दृष्टि दी है और जीवनपर्यंत लेखन को अपना धर्म समझा, उन साहित्यकारों की रचनाओं और जीवन से आम पाठकों का परिचय कराने में साहित्यिक संस्थाओं और संपादकों का बड़ा दायित्व है। भावी पीढ़ी को यदि कालजयी कृतियों के रचनाकारों के लेखन से परिचय नहीं कराया गया तो कई साहित्यकार नींव के पत्थर बनकर दब जाएंगे। इस संदर्भ में *आजकल* के दिसंबर अंक में रचनाकार अश्क के बारे में जो आलेख प्रकाशित किए गए हैं, वे काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

महेश दर्पण का आलेख 'एक चेहरे में मौजूद कई उपेंद्रनाथ अश्क' काफी ज्ञानवर्द्धक लगा। श्याम सुशील द्वारा प्रस्तुत 'कविता में सहजता का कायल हूं' आलेख में अश्क जी की काव्य-दृष्टि उद्घाटित हुई। अश्क जी ने कविता लिखना कब आरंभ किया इसको समझाते हुए लेखक ने अश्क जी की रचना-प्रक्रिया पर जहां गंभीर टिप्पणियां दी वहीं दूसरी ओर उनकी कविता संबंधी विचारों की प्रस्तुति को भी उजागर किया है। अश्क जी कविता-यात्रा के विभिन्न रूपों और कविता के प्रति उनके दृष्टिकोण की झलक इस आलेख में देखने को मिलती है। 'अधूरी रह गई सुलह-सफाई की इच्छा' आलेख में पिता के साथ जुड़ी पुत्र नीलाभ की यादें तो मन की गहराई तक छू गईं। अश्क जी के रचना पक्ष को उजागर करने वाले अन्य आलेख भी पठनीय हैं।

'प्रसंगवश' में संपादक ने अपनी कलम से पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर अश्क जी को न केवल याद किया, अपितु उनके साहित्य साधना का सम्मान करते हुए उनके साहित्य का मूल्यांकन भी किया। हिंदी कथा-साहित्य को अपनी कहानियों से अद्भुत चरित्र देने वाले अश्क जी ने कथा साहित्य में प्रेमचंद की परंपरा को ही आगे बढ़ाया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी अश्क जी की रचना-यात्रा से यह अंक अच्छा परिचय कराता है। *आजकल* ने उन्हें न केवल याद किया अपितु उनकी स्मृति शेष को भी जीवंत कर दिया।

–श्याम शर्मा, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)

अश्क जी को समर्पित

● यह अंक पूर्णता यथार्थवादी साहित्यकार उपेंद्रनाथ अश्क को समर्पित था। महेश दर्पण, कृष्णदत्त पालीवाल तथा श्याम सुशील के लेखों के माध्यम से अश्क जी के बारे में अनेकानेक जानकारियां प्राप्त हुईं। अश्क जी की तीनों कहानियां जो एक से बढ़कर एक हैं; अत्यधिक मार्मिक लगीं। से.रा. यात्री जी का संस्मरण 'फिर उनसे मैंने कोई सवाल नहीं पूछा' से यह तो पता लग ही जाता है कि उस समय के अन्य साहित्यकार अश्क जी को जो समझते थे; वे वह नहीं थे। नीलाभ जी के लेख के माध्यम से अश्क जी का पारिवारिक लोगों के बीच में रहने का ढंग तथा अन्य पारिवारिक बातों का पता चलता है। वास्तव में अश्क जी ने जो यश और धन प्राप्त किया था वह काफी संघर्ष करने के बाद प्राप्त किया था। उनके पत्रों के माध्यम से अन्य साहित्यकारों के प्रति जो लगाव था, उसके बारे में अच्छी-ख़ासी जानकारी मिली है। कुल मिलाकर अश्क जी को समर्पित यह अंक अपने में बेजोड़, सराहनीय तथा संग्रहणीय है।

–प्रभाकर प्रसाद पांडेय (छत्तीसगढ़)

रस देने वाला

● अंक पढ़ने का सुअवसर मिला। उपेंद्रनाथ अश्क पर अंक समर्पित कर आपने पाठकों पर बड़ा एहसान किया है। मुझे अश्कजी का उपन्यास *गिरती दीवारें* अपने कालेज के दिनों में ही पढ़ने का अवसर मिला था और मैं एक प्रकार से विमोहित हो गया था। उनका एकांकी 'तौलिए' से उस काल के एकांकियों में एक नया मोड़ आया था। यह विशेष एकांकी सैकड़ों बार मंचस्थ हुआ है। अश्कजी से साहित्यकारों के पत्र-व्यवहार में विपुल रोचकता है। मेरा तो मानना है कि साहित्य में 'पत्रों' को भी एक विधा के रूप में ही अपनाया जाए तथा इसे प्रामाणिक मान लिया जाए तो हिंदी साहित्य को एक नया आयाम मिलेगा। अश्क जी की इस अंक में समाहित दोनों कथाएं भी कृषक वर्ग के कथाओं की ही अभिव्यक्ति हैं। से.रा. यात्री के संस्मरण का तो कहना ही क्या है? ये तो उपन्यास अथवा कथा से भी अधिक रुचि एवं रस देने वाला है। महेश दर्पण के आलेख द्वारा अश्क जी के व्यक्तित्व के वातायन में झांकने का अनोखा अवसर मिला है।

—अमरनाथ मेहरोत्रा, मुजफ्फरपुर

कालजयी कृतिकार

● कालजयी कृतिकार अश्क जी पर केंद्रित *आजकल* का अंक पढ़ा। आपने संपादकीय में आलोचकों द्वारा अश्क जी की उपेक्षा पर आपने अपनी मनोवेदना व्यक्त की है। सचमुच पत्र-पत्रिकाओं में अज्ञेय, नागार्जुन और शमशेर बहादुर सिंह की जन्मशताब्दी की चर्चा सालभर से हो रही हैं और अंक निकालने की तैयारी भी हो रही है। अश्क जी के साथ ही, बिहार की विशिष्ट प्रतिभाएं और विभूतियां गोपाल सिंह नेपाली और आरसी बाबू भी उपेक्षित हैं। इन दोनों विभूतियों की जन्मशताब्दी इसी वर्ष पड़ रही है, किंतु साहित्यकारों की दृष्टि केवल अज्ञेय, शमशेर और नागार्जुन तक ही सीमित है। परंतु, नेपाली, आरसी और अश्क साहित्य प्रेमियों और पाठकों की स्मृति में सदा जीवंत बने रहेंगे।

—शालिग्राम सिंह अशांत, वैशाली (बिहार)

इस ओर भी ध्यान दें

● *आजकल* का शमशेर अंक देखा। आपने बड़े परिश्रम, बड़े मनोयोग से अंक निकाला है। बधाई! यह वर्ष हिंदी के अनन्य गीतकार गोपाल सिंह नेपाली का जन्मशताब्दी वर्ष भी है। हो सके तो इस ओर भी ध्यान दें।

—शेरजंग गर्ग, गुड़गांव (हरियाणा)

दस्तावेज़

● अश्क के कृतित्व पर चर्चा का न होना एक घटना हो सकती है। लेकिन अश्क का कृतित्व को पारिवारिक जीवन, रचनाधर्मिता जैसे तमाम पहलुओं को गहराई से, बड़ी संवेदनशीलता से छूता है।

नीलाभ जी के संस्मरण वाकई आंखें गीली कर देते हैं। अपने बुजुर्गों से अपने मन को न बांट पाने का दर्द हम सभी की नासमझी पीड़ा है। अश्क जी का नीलाभ को लिखा पत्र सारे पिताओं की ओर से पुत्र को लिखा गया दस्तावेज है। कुछ भी खोना पड़े, हारना पड़े पर कभी सर न नीचा करने वाले अश्क जी बेटे के शुभ, मंगल के लिए कुछ भी करने को तत्पर रहे। कौशल्या जी को लिखा उनका पत्र मार्मिक है। से. रा. यात्री, महेश दर्पण जी के आलेख उत्कृष्ट और प्रशंसनीय है। सच कहूं तो पूरा अंक ही प्रशंसनीय बन पड़ा है। उनके विभिन्न चित्रों से सजा मुखपृष्ठ वाकई उनके व्यक्तित्व के बहुआयामी स्वरूप को ही अभिव्यक्ति देता है। इस कठिन समय में रचनाकार को यह श्रद्धांजलि आश्वस्त करती है कि छपे हुए शब्दों के लिए गौरव के दिन अभी खत्म नहीं हुए।

—भूपेंद्र कुमार सिंह, रीवा (मध्यप्रदेश)

रचनाकार की मुखमुद्रा

● उपेंद्रनाथ अश्क पर केंद्रित अंक पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। किसी साहित्यकार पर इतना आकर्षक अंक मुझे पहली बार देखने-पढ़ने को मिला। *आजकल* के अगस्त अंक में से. रा. यात्री की कलम से जब यह जाना कि अश्क जी की इस वर्ष जन्मशताब्दी है और उनकी कहीं कोई चर्चा ही नहीं तो बड़ा दुख हुआ। लेकिन जब आपका यह अंक हाथ में आया तो बेहद प्रसन्नता हुई। अगस्त में ही जब मैं यात्री जी से मिला था तभी मैंने कहा था अश्क जी पर *आजकल* का विशेषांक निकले तो बड़ा पुनीत कार्य होगा। मुखपृष्ठ पर अश्क जी के युवा से लेकर वृद्धावस्था तक के विविध चेहरे देख मन को लगा कि साहित्य सृजन किस तरह रचनाकार की मुखमुद्रा को बदलता रहता है। 'एक चेहरे में मौजूद अनेक चेहरे' के पीछे एक भाव यह है कि 86 वर्षों का जीवन जीने वाले अश्क जी ने साहित्य की विविध विधाओं को नाना रूपों में समृद्ध किया है। उन्होंने कविताएं, कहानियां, नाटक, एकांकी, संस्मरण और समालोचनाएं लिखकर लेखकों की अग्रणी पंक्ति में अपने को रखा। वह प्रेमचंद के लेखन से प्रभावित थे लेकिन अपने लेखन में उन्होंने न तो प्रेमचंद का न अन्य किसी साहित्यकार का अनुसरण किया। लेखन के मामले में वह बड़े प्रतिबद्ध और श्रमशील थे। उन्होंने मध्यवर्गीय परिवार को केंद्र में रखकर रचनाएं कीं। इन रचनाओं की बड़ी विशेषता थी अनुभूति की प्रामाणिकता।

उपन्यासों में *गिरती दीवारें*, कहानियों में 'पिंजरा' और एकांकी में 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' कुछ यादगार कृतियां हैं, जो अश्क जी को सदैव अमर रखेंगी। महेश दर्पण का अश्क जी पर कीर्ति स्तंभ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर समग्र रूप से प्रकाश डालता है।

से. रा. यात्री ने अपने संस्मरण में अश्क जी के जो चित्र खींचे हैं वे हमें अश्क के विराट व्यक्तित्व और संघर्षशील जीवन-शैली से परिचय कराते हैं। कृष्णदत्त पालीवाल अश्क जी के बारे में बहुत सही लिखते हैं—'वे उस राह पर चले जिसमें जंगल भी दिखाई देता था और पेड़ भी और वह भेड़िया भी दिखाई देता था, जो समाज में उपद्रव मचाए हुए था।'

अश्क के सुपुत्र नीलाभ ने पिता के अंतरंग जीवन की प्रभावकारी और मार्मिक घटनाएं लिखी हैं। अश्क जी की कहानी 'डाची' और एकांकी 'तौलिए' अच्छी लगीं। ये रचनाएं अश्क के श्रेष्ठ और कलात्मक रचना कौशल को व्यक्त करती हैं। अश्क जी के साथ हुए पत्राचार भी पठनीय हैं।

—आनंदस्वरूप श्रीवास्तव, रायबरेली

क्यों न यह कवि मुझे विशेष प्रिय हो...

'एक बिल्कुल पर्सनल एसे' में शमशेर बहादुर सिंह ने अपने कुछ प्रिय कवियों के बारे में लिखा है जिसमें नागार्जुन के बाद दूसरा स्थान केदारनाथ जी का है। केदार जी शमशेर को क्यों प्रिय हैं स्वयं शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में ...

केदारनाथ अग्रवाल भी शायद मुझे इसीलिए प्रिय हैं। इधर जब से उनकी बहुत-सी नई कविताएं सुनी हैं—अभी तक, एकाध को छोड़कर, अप्रकाशित—बुंदेलखंड की नैसर्गिक प्रकृति पर—तब से तो और भी प्रिय हो गया है। मैं उसकी कविताओं में उसका दिल जैसे आरपार देखता हूं और वह दिल कितना हर तरह के हम्वग और स्नॉबरी से पाक है। वह सहज ही किसी जादूगरी में फंसता नहीं। खिलवाड़ उसे अच्छा नहीं लगता। जो बात या उक्ति समझ में नहीं आती, वह उसे ख़ामख़ाह ही गूढ़ नहीं लगती। एक होता है कविता का अपना मर्म, शब्द जिसका माध्यम मात्र होता है : वह मर्म जैसे चमकती हुई आंखें रखता हो—स्पष्ट, गंभीर और सहज-तरल। केदार उसी को खोजता है।

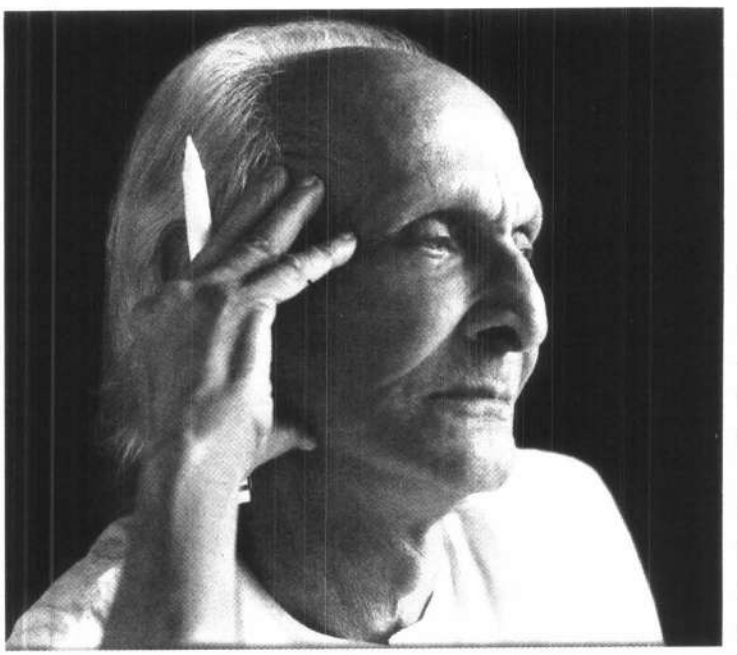

उसके छंद और पद में एक ठेठपन मिलेगा जो ठोस अनुभवों का तेवर लिए हुए होता है। उसकी वाणी में एक कस-बल है जो बुंदेलखंड का ही नहीं—उसका तो है ही—हर स्वस्थ मेहनतकश नौजवान का भी है। उसके शिल्प में बारीकियां न होते हुए भी, उसके अंदाज़ में ज़ोर और असर है और एक अजीब-सी ताज़गी। इधर की उसकी कविताएं प्रेम और प्रकृति से संबंधित, अपने ढले हुए सौंदर्य में हज़ार शिल्पगत बारीकियों को शर्माती हैं। बेशक, उन्होंने कुछ कविताएं ऐसी लिखी हैं, अब से पहले, जो पूरा-पूरा संतोष नहीं देतीं, अभिव्यक्ति की दृष्टि से। मगर मुझे जो कवि प्रिय हैं, उनमें सबसे पहले जो चीज मुझे अपनी तरफ़ खींचती है, वह होता है, उनका अपना विशेष और मुक्त व्यक्तित्व या उनका सबसे अलग अपना लहजा या उनकी अपनी अनुभूतियों की कोई विशेषता फिर वो चाहे प्रसिद्ध और बड़े कवि हों या छोटे और अल्पख्यात, या औरों के लिए गुमनाम भी। कभी-कभी किसी कवि के शिल्प या भाव या अनुभव के क्षेत्र में कोई विशेष खोज या उपलब्धि—वह चाहे प्रत्यक्ष महत्त्व की न भी हो—मुझे पूरी तरह आकृष्ट कर लेती है।

केदार जिस खोज की तरफ़ बढ़ा है वह है, समाज का सत्य और प्रकृति का खुला नैसर्गिक सौंदर्य। अन्याय के ख़िलाफ़ और मेहनत के पक्ष में बेझिझक वह बोलता है। उसके व्यंग्य में दोहरी-तिहरी धार नहीं, सीधी एक धार। मगर वही बहुत काफ़ी होती है। ऐसा खुले हृदय का उन्मुक्त साहसी कवि सौंदर्य और प्रेम की सुषमा और सौष्ठव पर दृष्टि डालता है तो सहज ही अपनी अनुभूतियों से हमें मोह लेता है। इतना खुला प्यारापन जिसमें दिखावट और बनावटीपन का नाम नहीं; साथ ही इतना गंभीर और मर्यादित जितना कि गहरा प्रेम वास्तव में होता है; एक ऐसा उधरापन भी, जैसा कि प्रकृति के खुले-फैले प्रांगण में सब ओर मिलेगा...नदी, पेड़, पत्ती, फूल, टहनी, चट्टान, हवा, वातावरण विशेष—सब हमारी आंखों में खुब-सा जाता है। किसान और मज़दूर के हाथ और रग-पुट्ठे कहीं हमारे हाथों और रग-पुट्ठों को रगड़ते हुए से लगते हैं और अपना वेग और सहज शक्ति बरबस ही हमें महसूस कराते हैं। उनके यथार्थ वातावरण की गृहिणी, उनके किसान, युवक और युवती, और खेतों की सजीव हरियाली और भोली-भाली रंगीनी अपना परिचय हमेशा के लिए हमसे दृढ़ कर लेती है। क्यों न फिर यह कवि मुझे विशेष प्रिय हो...सादगी की कुछ लग़ज़िशों और कहीं-कहीं (कुछ पहले तक की कविताओं में) सपाटपन के भी बावजूद।

एकाएक, केदार के साथ ही एक और कवि—बहुत असमान शक्ति और क्षमता का (मुहावरे का अटपटापन और शब्दों का भी कभी-कभी ग़लत प्रयोग उसके यहां मिलेगा जो बेहद अखरेगा) —मगर जिसकी कल्पना (गहरे व्यंजनात्मक संकेतों से) उलझे हुए बिंबों और उपमाओं के ही द्वारा सामाजिक सत्य को विलक्षण रूप से उघाड़ने की शक्ति रखती है. ..ऐसा एक कवि क्यों एक-टक् मेरी ओर देखकर मुस्करा उठा है! वर्ग-सत्य पर जिसका हाथ है—जिसकी वाणी में वेग है, मगर आवेश के कारण जो रह-रहकर अपना असर खो भी देती है; जो कभी-कभी अपनी ही उपमाओं में उलझ जाता है—मगर फिर भी कटु सत्य की तीव्र अनुभूति और कचोट दबती नहीं, उसके 'अटपटेपन' में भी उभर-उभर उठती है। यह कवि रहते-रहते लाजवाब बंद और मिसरे लिख जाता है। बेशक एक पूरी कविता की सफलता उसके टुकड़ों की सफलता से नहीं आंकी जाती, मगर इन सीमाओं के अंदर भी जिस सच्ची प्रतिभा के मैं दर्शन करता हूं उसके प्रति मेरे हृदय में बहुत-बहुत आदर है। यह किंचित अनपढ़, सच्ची प्रतिभा है कानपुर के मजदूरों और किसानों के 'शील' की। वह राजनीतिज्ञ नहीं है; राजनैतिक कार्यकर्ता है—मगर कवि है! निश्चय ही वह एक बहुत सफल नाटककार भी है—उसका 'किसान' जिसमें पृथ्वीराज कपूर ने हीरो का रोल लिया, बड़े गौरव से हिंदुस्तान के अनेक स्थानों पर बहुत सफलतापूर्वक खेला जा चुका है।

एक बिल्कुल पर्सनल एसे : **शमशेर बहादुर सिंह**
कुछ और गद्य रचनाएं (संपादन : रंजना अरगड़े) से साभार

सजल नयन गदगद गिरा...

रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल घनिष्ठ मित्र थे। केदारजी और रामविलास शर्मा में ख़तो-किताबत चलती रहती थी। केदार जी द्वारा लिखे पत्रों को एकत्रकर रामविलास शर्मा और अशोक त्रिपाठी ने मित्र संवाद *में पुस्तकाकार रूप में संपादन किया है। रामविलास जी को केदार क्यों प्रिय थे! यह* मित्र संवाद *की भूमिका के इस अंश से स्पष्ट हो जाता है।*

केदारनाथ अग्रवाल ने जब से बांदा में वकालत शुरू की, वह एक ही मकान में रहते आए हैं। उनके चाचा जी नामी वकील थे, जब तक वह बांदा में थे, तब तक शायद केदार बगल के मकान में रहते थे। उनके जीवन का अधिकांश समय एक ही मकान में बीता है। पर इससे बड़ी बात यह कि उनका जीवन बहुत ही नियमबद्ध और व्यवस्थित रहा है। सवेरे उठकर किताबों की धूल झाड़ना उनका अटल नियम है। बैठक में बड़ी-बड़ी कानून की जिल्द बंधी किताबें हैं। उन्हें शायद ही कभी पढ़ते हों। पर उनकी धूल जरूर झाड़ते हैं।

हम दोनों मित्र हैं, अपने-अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं के साथ। इनमें कुछ का पता मुझे अभी लगा इन पत्रों का संपादन-संकलन करते समय। ऐसा बहुत कम होता है कि केदार ने पत्र पर तारीख़, महीना और सन् न लिखा हो। कभी-कभी वह लिखने का समय भी सूचित कर देते हैं। इसके विपरीत मेरे बहुत-से पत्र ऐसे हैं जिनमें तारीख़ और महीना है, सन् ग़ायब है, कुछ में तारीख़, महीना, सन् तीनों ग़ायब हैं। इसलिए सन्, महीना आदि का पता लगाने में मुझे काफी समय खर्च करना पड़ा। आमतौर से आपको ऐसा लगेगा कि केदार फ़ुर्सत में चिट्ठियां लिख रहे हैं, दरअसल ज़्यादा फ़ुर्सत मुझे रही है, केदार को फ़ुर्सत का समय निकालना होता था। वह वकील थे, दिन-भर कचहरी करते थे, रात में उन्हें पढ़ने-लिखने का अवकाश मिलता था। मेरे पास अवकाश ही अवकाश था। सन् 38 से 43 तक लखनऊ विश्वविद्यालय में दस बजे गए, डेढ़ बजे लौट आए। सबेरे का समय अपना, तीसरे पहर का समय अपना। कुछ दिन तक आगरे में यही क्रम रहा, फिर सबेरे गए, ग्यारह बजे लौट आए, यह क्रम बरसों चला। पर जल्दबाजी के चिह्न मेरे पत्रों में ही ज़्यादा मिलेंगे। मेरे कुछ पत्र, आमतौर से पोस्टकार्ड, बहुत जल्दी में लिखे गए हैं। साहित्यिक आंदोलन संबंधी लेखन, पत्र-व्यवहार और भाग-दौड़, यह आपाधापी सन् 46 के पहले कम थी, सन् 53 के बाद और कम हो गई। फिर भी पत्र न लिखने की ज़्यादा शिकायत केदार की ओर से है। पहले तो आलस्य के कारण पत्र लिखने का समय जल्दी न आता था, बाद को लिखाई-पढ़ाई में व्यस्तता के कारण देर हो जाती थी। पर कभी-कभी केदार भी महीनों तक मौन साध लेते थे। उनकी एक ही पेटेंट दलील थी—तुम पुस्तक लिखने में व्यस्त होगे, इसलिए डिस्टर्ब करना उचित न समझा। एक ही काम केदार ने जल्दी में किया था, वह था मुझसे दोस्ती करना। मैं उनसे कहता था, जल्दी क्या है, मुझे परख लो, मेरी कमज़ोरियां पहचान लो, जिससे बाद में दोस्ती न टूटे। पर केदार को अपने सहज बोध का भरोसा था। जैसे उनकी कविता सहज थी, वैसे ही उनकी मैत्री थी।

सन् 35 में जब उनसे परिचय हुआ, तब वह कानपुर में वकालत पढ़ रहे थे, मैं क्लासवाली पढ़ाई पूरी करके रिसर्च में लगा हुआ था। शायद इस कारण मुझमें बड़प्पन का भाव आ गया था। बहुत दिन बाद मैंने इस बात पर ध्यान दिया कि वह उम्र में मुझसे बड़े हैं, बातचीत और पत्र-व्यवहार में मुझे उनके बड़प्पन का ध्यान रखना चाहिए। पर ऐसा कभी हुआ नहीं, अधिक-से-अधिक यह हुआ कि बड़प्पन छुटपन की बात छोड़कर हम लोग बराबरी के स्तर पर आ गए। फिर भी मेरे पत्रों में 'प्रिय केदार' तो बराबर मिलेगा, केदार के पत्रों में 'प्रिय रामविलास' एक बार भी नहीं। अधिक-से-अधिक 'प्रिय शर्मा'—वह भी शुरुआती दौर के पत्रों में। वैसे मौका मिले तो मुझे बनाने से कभी चूकते नहीं हैं।

केदार को हास्य-विनोद से सहज प्रेम है। प्रेम ही नहीं, हंसना, प्रसन्न रहना, उनकी सहज वृत्ति है। वह हास्य-विनोद की सामग्री वहां ढूंढ़ लेते हैं जहां कवियों की निगाह कम जाती है। यहां उनके पत्रों का गद्य उनकी कविता से भिन्न है। कविता में एक छोर पर तीखा मारक व्यंग्य है (इसकी अनोखी मिसालें *कहें केदार खरी-खरी में* हैं), दूसरे छोर पर *फूल नहीं रंग बोलते हैं* की दुनिया है। हंसने-हंसाने के लिए उन्हें कविता में कम समय मिलता है। पर यह उनके व्यक्तित्व का बहुत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इस दृष्टि से पत्रों का गद्य उनकी कविता का पूरक है। वह कवि केदारनाथ अग्रवाल का गद्य है, यह तथ्य भुलाकर भी आप उसका आस्वादन कर सकते हैं। और हास्य-विनोद तो उसका एक पक्ष है, बहुत जगह तो वह कविता बन जाता है, छायावादी शब्दावली में रचा हुआ गद्यकाव्य नहीं, यथार्थवादी कविता, ऐसा गद्य जो अपनी गद्य की ज़मीन नहीं छोड़ता, फिर भी कविता बन जाती है और कहीं-कहीं तो कविता से आगे बढ़ जाता है। केदार जो कुछ भी कविता में कहना चाहते हैं, उसे गद्य में भी कहते हैं और इतने सहज भाव से कहते हैं कि उस अभिव्यक्ति की पूर्णता को कविता नहीं छू पाती। हमेशा ऐसा नहीं होता पर कभी-कभी ऐसा भी होता है।

केदार के गद्य में बहुत-सी भाव दशाएं हैं—'भाव भेद रस भेद अपारा' की उक्ति को चरितार्थ करती हुई। पता लगाना दिलचस्प होगा कि उनकी कविता में इतनी भाव दशाएं हैं या नहीं। कहीं वह रीझते हैं, कहीं खीझते हैं, कहीं उत्तेजित कहीं स्थितिप्रज्ञ, कहीं दुखी, कहीं प्रसन्न, कहीं किसी व्यक्ति अथवा वृत्ति से तादात्म्य, आपा खोए हुए, बेसंभाल, कहीं एकदम तटस्थ, विवेकशील, तर्क का सूत कातते हुए मन ही मन हंसते हुए। उनकी अनेक मुद्राएं हैं, अनेक भंगिमाएं हैं, मेरे लिए उनकी सबसे प्रिय मुद्रा वह है जब वह मन ही मन हंसते हैं। *सजल नयन गदगद गिरा गहबर मन पुलक शरीर*—कभी-कभी यह स्थिति भी होती है। सारंगी उनका प्रिय वाद्य है (बजाते नहीं, सुनते हैं)। अन्य किसी भी वाद्य यंत्र से ज्यादा सारंगी मनुष्य के स्वरों का अनुकरण करती है। केदार का गद्य सारंगी की तरह उनकी सूक्ष्म भावदशाएं ज्यों की त्यों शब्दों में बांध लेता है। यहां बात केवल उनके पत्रों के गद्य की है, उनमें भी केवल मुझे लिखे हुए उनके सबसे अच्छे पत्रों की। (यहां 'केवल' में गर्वोक्ति का आभास हो सकता है; दूसरों को लिखे हुए उनके बहुत कम पत्रों से मैं परिचित हूं।) मेरे पत्र उत्तेजक का काम करते हैं—अनेक प्रकार से। मेरे किसी पत्र से उन्हें क्षोभ हुआ तो यह एक तरह का उत्तेजक हुआ। कहीं किसी दुख की गहराई में उन्होंने मेरी आवाज सुन ली और मन थोड़ा भी हल्का हुआ तो यह दूसरी तरह का उत्तेजक हुआ। केदार को सारंगी प्रिय है, मुझे उसमें नाद की गंभीरता नहीं मिलती। केदार के गद्य में सारंगी के स्वरों की सुकुमारता है, वायलिन का नाद गांभीर्य और जहां-तहां मृदंग की थाप भी। केदार संघर्ष और चुनौतियों के कवि हैं। गद्य में जहां उदात्त स्तर पर उनके स्वर फूटते हैं, वहां सारंगी की पहुंच

नहीं है। केदार का मूल स्वर लिरिक कवि का है, वही उनके गद्य का मूल स्वर भी है। कविता में वह बाहर की दुनिया देखते हैं, मन के भीतर झांकते भी रहते हैं। अपने मन के भीतर पैठने की यह क्रिया उनके गद्य में और भी ज्यादा होती है। उनके पत्र आत्मवक्तव्य का श्रेष्ठ साधन हैं। यह आत्माभिव्यक्ति परिवेश से कटी हुई नहीं, दृढ़तापूर्वक उससे जुड़ी है। कवि के व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन करना हो तो इन पत्रों से ज्यादा अच्छी सामग्री दूसरी जगह न मिलेगी। व्यक्ति का मन और उसका परिवेश, इनका परस्पर घात-प्रतिघात—यह परिदृश्य है इन पत्रों में। कहीं पारिवारिक परिवेश की झलक है, कहीं (कचहरी केंद्रित) सामाजिक परिवेश की, सबसे अधिक साहित्यिक परिवेश की। यह बांदा का परिवेश है और बांदा से बाहर व्यापक हिंदी का परिवेश। यदि कहें, केदार के पत्र एक युग का इतिहास हैं तो अत्युक्ति हो सकती है। परंतु एक युग के साहित्यिक परिवेश में स्वयं केदार के जीवन का अंतरंग इतिहास उनके पत्र निश्चय ही हैं। यह परिवेश बदलता रहा है, उसके साथ केदार भी बदलते रहे हैं, सदा उसके अनुरूप नहीं। परिवेश की गिरावट से बचने का प्रयास यहां देखा जा सकता है। कुल मिलाकर केदार का व्यक्तित्व निरंतर विकसित और परिपक्व होता गया है और हर मंजिल में उनके व्यक्तित्व की अपनी पहचान अपरिवर्तनशील रही है।

केदारजी, रामविलास शर्मा और उनके छोटे भाई *मुंशी* के साथ

केदार के कवि जीवन के आदिकाल से मैं उनके गद्य का प्रशंसक रहा हूं। पद्य की नुक्ताचीनी, गद्य की प्रशंसा बरसों तक—यह व्यापार देखकर केदार ने यह समझा हो कि मुझे उनकी कविता पसंद नहीं है तो इसमें आश्चर्य ही क्या। *केदारनाथ अग्रवाल और प्रगतिशील काव्यधारा* के प्रकाशन के बाद उनका वह भ्रम बहुत कुछ मिट गया है लेकिन शायद पूरी तरह नहीं क्योंकि मैं उनके गद्य का प्रशंसक अब भी हूं। संभव है, *मित्र संवाद* की यह भूमिका पढ़कर वह पुराना भ्रम बुढ़ापे में उन्हें फिर सताने लगे। अतः मैं घोषित करता हूं कि केदारनाथ अग्रवाल अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और मुझे उनकी कविता बेहद पसंद है। यह भी कि उनका काफी गद्य मुझे नापसंद है। जब वह दिनकर की *उर्वशी* को लेकर मुझसे जिरह करने बैठ जाते हैं तब मुझे उनका गद्य बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। आप इस मुद्दे पर यों विचार करें, केदार ने जो अच्छी कविताएं लिखी हैं, उनके आस-पास नागार्जुन, निराला या किसी अन्य महाकवि की पंक्तियां पहुंच जाएंगी पर केदार ने पत्रों में जो बढ़िया गद्य लिखा है, उस तक किस कवि का बढ़िया से बढ़िया गद्य पहुंचता है, विचार करें। ऐसा नहीं है कि हिंदी में अच्छे गद्य लेखक नहीं हैं। हैं, और एक से एक बढ़कर हैं। सवाल गद्य के मिज़ाज का है। केदार अपने गद्यों में जिस तरह का गद्य लिखते हैं, उस तरह का गद्य हिंदी में और किसी ने नहीं लिखा। दरअसल केदार अपने हुनर से बेखबर हैं। जो सहज है, उसे ऐसा होना भी चाहिए। बहुत से पत्रों में साधारण बातों का उल्लेख मात्र है। संभव है, इनका ध्यान आने पर वह सोचते हों, ऐसा इनमें क्या है जो प्रशंसा के योग्य है। मैं भी कहूंगा, ऐसा कुछ खास नहीं है परंतु केदार जैसे साहित्यकार के जीवन और परिवेश के बारे में हम जितना ही जानें उतना ही थोड़ा है। हां साधारण बातों का उल्लेख पढ़ते-पढ़ते अचानक आप उनके किसी अनूठे उपमान से चौंक पड़ें, यह संभव है। आप चाहें तो ऐसे उपमानों की सूची बना लें, फिर देखें, ऐसे अनूठे सहज उपमान कविता में भी कितने हैं। वैसे तो उन्हें अपनी कविताएं बहुत अच्छी लगती हैं और मैं उनकी अपेक्षित तारीफ न कर ें वह नाराज़ भी होते हैं पर कभी-कभी आत्मालोचन के मूड में वह कविताओं को बटोरकर उसी जगह रख देते हैं जहां उनकी समझ में उनके पत्र हैं ऐसे में दोनों का स्थानांतरण बहुत जरूरी है। कविता जाए तो जाए, पत्रों में रचा हुआ गद्य तो रहे!

केदार में आसपास की चीजों को देखने और उनका वर्णन करने की अद्भुत क्षमता है। निराला से अंतिम भेंट करके उन्होंने जो अंतिम पत्र लिखा था, उसमें यह क्षमता देखी जा सकती है। ऐसे पत्रों का ऐतिहासिक महत्त्व है। वह पुस्तकों के बारे में कम लिखते हैं, अपने भीतर और आस-पास देखकर ही अधिक लिखते हैं। इसके विपरीत मेरे पत्रों में पुस्तक चर्चा बहुत रहती है। मेरी इच्छा रही है कि पढ़ने में जो कुछ मुझे अच्छा लगा है, उसकी जानकारी केदार को भी हो जाए। पर वह काफी पढ़ते हैं; जो पढ़ते हैं, कलाकार के भाव से, सीखते समझते हुए, फालतू चीजें एक तरफ हटाते हुए। मेरे उनके काव्य बोध में अंतर है, यह आप पत्रों में अनेक जगह देखेंगे। उनकी अपनी कविताओं को लेकर मतभेद रहा है। दिनकर, निराला, सूरदास की रचनाओं को लेकर भी मतभेद रहा है कविता से सामाजिक यथार्थ के संबंध को लेकर, पुरानी साहित्य-परंपराओं के मूल्यांकन को लेकर, छंद और काव्य शिल्प को लेकर मतभेद रहा है। दो मित्रों के, एक-दूसरे की हां में हां मिलाने वालों के, ये पत्र नहीं हैं। जहां भी ऐसे मतभेदों का विवरण है, आज के आलोचकों और कवियों को अपने काम लायक कुछ सामग्री अवश्य मिलेगी। पर ये मतभेद गौण हैं। उनसे हमारी मैत्री कभी नहीं डगमगाई। जीवन में असह्य दुख के क्षण भी आते हैं। ऐसे क्षणों में हम सदा एक-दूसरे के पास रहे हैं। व्यक्तिगत रूप में यह मैत्री मेरे लिए कविता से भी अधिक मूल्यवान है। ये पत्र उस मैत्री के साक्षी दस्तावेज हैं।

हम दोनों में एक बात सामान्य है—बीते दिनों के बारे में हम बहुत कम सोचते हैं। क्या कर रहे हैं, आगे क्या करना है, अधिकतर ध्यान उसी पर केंद्रित रहता है। हमारी मैत्री का लंबा इतिहास है, इस पर भी ध्यान कम ही जाता है। लगता है, सारे तथ्य सिमटकर गुणात्मक रूप से भावशक्ति में परिवर्तित हो गए हैं—वह भावशक्ति जो रचनात्मक क्षमता का स्रोत है। केदार का जीवन जितना ही व्यवस्थित है, उनकी लिखावट उतनी ही बहुआयामी है। उनके अक्षर ज्यामिति के अनेक पैटर्न बनाते चलते हैं।

केदार के गद्य शिल्प के बारे में मुझे और बहुत कुछ लिखना चाहिए पर वह एक भूमिका में संभव नहीं है। उसके लिए अलग एक पुस्तक चाहिए। मैं आशा यह करता हूं कि गद्य को भाष्य की जरूरत नहीं है, पाठक उसकी खूबियां

खुद ही पहचान लेंगे। पत्र पढ़ते समय आप यह न भूलें कि वे प्रकाशित होने के लिए न लिखे गए थे। "तुम जानते हो कि मैं किसी अन्य से इस तरह खुलकर बात नहीं करता।" (8.2.57)। ये पत्र इतने आत्मीयतापूर्ण हैं कि इन्हें प्रकाशित करने में मुझे संकोच होना चाहिए था। केदार का व्यक्तित्व अब अकेले उनका नहीं रहा, कविता के माध्यम से वह उसे हिंदी जनता को सौंप चुके हैं। कविता में वह खुलकर बोलते हैं, फिर भी जो वहां नहीं कहा, वह यहां है। जिस कारखाने में उनकी कविता ढलती है, उसे आप भीतर से यहां देख सकते हैं। जो सामग्री कविता में नहीं ढाली गई, पर कविता से घटकर नहीं है, वह भी आपको यहां मिलेगी। "सामने नल चल रहा है। बाल्टी भर रही है। पानी बोल रहा है। आंगन के कच्चे कोने में, पहले की कटी, रातरानी ने पत्तियां निकाल दी हैं।" (23.7.58)। अदृश्य काल के एक क्षण को उसके पार्थिव परिवेश के साथ केदार ने अमर कर दिया है।

बहुत साल पहले उन्होंने कहा था—"सांस का जोर पंक्तियों में आवे, मेरी यह साधना है।"(5.11.43)। आदमी के सांस लेने की तरह उनकी कविता सहज है; उनके सांस लेने की आवाज़ आप उनके पत्रों में सुन सकते हैं। जब वह कचहरी से बाहर होते हैं तब उनकी हर सांस कविता होती है। लेकिन सताकर भी कचहरी उन्हें कविता दे जाती है। "11/5 से सुबह की कचहरी हो जाएगी। साढ़े छह बजे सुबह से एक बजे दिन तक। तब तो समझो कि घिर जाऊंगा। चूर-चूर हो जाऊंगा। पर किया (क्या) जाए। पेट को लिए-लिए गर्भवती की तरह जिऊंगा। न खा पाऊंगा, न घूम-फिर सकूंगा।" (4.5.64)। विरोधी परिवेश से लंबी टक्कर—यह है केदार का जीवन। पर वह इस परिवेश को अपने ऊपर हावी नहीं होने देते। और केवल कचहरी का परिवेश नहीं, साहित्य का परिवेश भी अक्सर उनके प्रतिकूल होता है। वह उससे दूर नहीं भागते, निगाह जमाकर उसे देखते हैं। और यहां भी उनकी प्रतिक्रिया कविता बन जाती है। " 'प्रतीक' श्मशान का रंगीन धुआं रहा।"। (11.8.47)। धुआं रंगीन है पर है श्मशान का।

जो अप्रत्याशित है, अनपेक्षित है, पत्र में अकस्मात वह सामने आकर हमें चौंका देता है। साधारण बातें करते-करते अचानक ऐसे बोल फूटते हैं कि सुनकर हम दंग रह जाते हैं। ऐसे बोल कब कहां सुनने को मिल जाएंगे, आप कुछ कह नहीं सकते। "मैं तो अपने को खोजता रहा हूं कि कहां हूं और क्या सच है और मैं उसे पकड़कर जी रहा हूं अथवा नहीं। मुझे काठ होकर या रहकर मरने में दुख होगा। मरो तो इस शान से कि मौत भी ऐसे फूले-फले पेड़ को कंधे पर रखकर चले कि जिधर से निकले रूप-रस और गंध बरस पड़े। हमें यश न चाहिए। हमें चाहिए पूर्ण विकसित मनुष्य की मौत।" (17.12.58)। पूर्ण विकसित मनुष्य की मौत—मानव जीवन का यह सबसे बड़ा दार्शनिक सत्य है। केदार ने उसे अपने अनुभव से, चिंतन और मनन से प्राप्त किया है।

– रामविलास शर्मा

साभार : *मित्र संवाद* की भूमिका का संपादित अंश

पत्र

प्रिय केदार,

भारत की सूखी धरती पर नींद के बादल ही मंडराएं; उसका रूखापन तो दूर हो। इसके बारे में Apologetic होने की क्या बात है? सपनों के बिना आदमी जिंदा कब रह सकता है? नींद से ज्यादा जागने के सपनों की जरूरत होती है। तुम्हारे नींद के सपनों में मिठास है, कहीं-कहीं बिल्कुल गुड़ की भेली की तरह। उम्मीद है कि जागने के सपने शक्कर जैसे होंगे जो control के भाव ही बिकेंगे, decontrol के नाम खुले ब्लैक मार्केट के भाव पर नहीं। यह इसलिए कि नींद के बादलों की छपाई-सफाई दुअन्नी भर लेकिन कीमत बीस आना है।

तुम्हारा रामविलास

बांदा

20.5.48

प्रिय भाई,

इधर एक लंबे अर्से से तुम्हारी चिट्ठी नहीं आई। कारण नहीं जानता क्या है? न तुम्हारी रचनाएं ही (पद्य) पढ़ने को मिल रही हैं। नागार्जुन की रचनाएं बहुत बढ़िया आ रही हैं।

कब कहां रहोगे? मैं लखनऊ आना चाहता हूं दो दिन को। क्या तुम वहां जाने वाले हो? यदि आओ तो लिख देना। और अगर न लिखो तो पत्रवाहक से ही कह देना वह लिख देंगे। मिलने पर बातें होंगी।

मुंशी तो बंबई ही होगा। उसकी पार्टी पर प्रहार हो रहा है इससे वह परेशान होगा ही। मैं भी चिंतित हूं।

अब तुम्हारे प्रकाशन का क्या हो रहा है? तुम्हारी पुस्तकें कब तक निकलने वाली हैं?

हंस देखते ही होगे! कुछ राह बता दिया करो। गलत पथ पर तो नहीं चल रहा? कुतुबनुमे का काम कभी-कभी तो कर दिया करो।

यहां तो गरमी पड़ रही है। हम सब सूखे जा रहे हैं। पानी न मिले तो खलरी मात्र रह जाय। अंधड़ बेहद उड़ता है।

बच्चे कैसे हैं? प्यार! योग्य सेवा लिखना।

तुम्हारा

केदार

4 जुलाई 48

प्रिय केदार,

हंस मिल गया ना? आख़िर कविता समय पर न पहुंची। ख़ैर, अगले अंक में जाएगी।

(आजकल श्रीमती जी बच्चों के साथ मायके हैं। इसलिए खीर फल खाकर निबाह करते हैं) अ. बै.' की कई कविताएं लिखी हैं; भेज दीं। मुंशी की चिट्ठी आई है। जिंदगी के पुराने दिन गुना करता है।

गरमी अभी घनघना रही है।

तुम्हें भारतेंदु युग और निराला भेज रहे हैं।

उम्मीद है—कलम मांज रहे होंगे।

तुम्हारा

रामविलास/गोकुलपुरा-आगरा (6.10.50)

मैथिलीशरण गुप्त जी को केदारनाथ जी द्वारा लिखा यह पत्र आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना 1949 में था।

श्रद्धेय श्री गुप्तजी

आपकी विवशता की सूचना पाकर भी आग्रह कर यह पत्र दुबारा लिखकर मैं धृष्टता अवश्य कर रहा हूं, यह धृष्टता एक स्नेही व्यक्ति की है, मित्र की नहीं। इसके करने का साहस इसलिए कर रहा हूं, क्योंकि इसके किए बिना काम नहीं बनता। अतएव मुझे विवश जानकर आप मेरी धृष्टता के लिए क्षमा करेंगे।

मैं इस योग्य नहीं हूं कि आपसे हठ करूं। आपको विवश करूं। न मुझमें इतना साहस है कि आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ करूं। न मुझे यह ही शोभा देता है कि मैं आपको इस उद्घाटन कार्य की महत्ता बता दूं। वह स्वयं अपना महत्त्व रखता है। आप उस महत्ता को जानते भी हैं। फिर भी मेरा परम कर्त्तव्य मुझे विवश करता है कि मैं एक बार पुनः इस महत्त्वपूर्ण कार्य के विषय में आपका ध्यान विशेष तौर से आकर्षित करूं। इसी उद्देश्य से मैं यह पत्र लिख रहा हूं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इसे बुरा न मानेंगे। मुझे यह भी भरोसा है कि इसे पढ़कर आप अवश्य ही अपने पहले के विचार की स्थिति पर गंभीरता से विवेचन करेंगे और सही निर्णय पर पहुंचेंगे।

यह कहां तक उचित है कि देश के लगभग सभी समाचार-पत्र अफसरों के वृक्षारोपण का समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छापते हैं, उनकी बीमारी का हाल प्रातः सायं के संस्करणों में प्रमुख स्थान में छापते हैं, और नेता के उठने-बैठने से लेकर छींकने तक की दिनचर्या बड़ी श्रद्धा से छापते हैं। क्या कवि, जीवन को वाणी देने वाला कवि, किसी समाचार पत्र में एक इंच भी स्थान पाने का अधिकारी नहीं है? आप ही बताएं कब किस महानामधारी के पत्र में आपकी बीमारी का समाचार छपा, आपकी पुस्तकों की बिक्री के समाचार छपे, आपके अच्छे से अच्छे विचारों का प्रचार छपा? निराला जी शोकग्रस्त रहे। कुछेक संपादकों ने, जो उनके परिचित मित्र थे, उनकी बीमारी का समाचार छापा। परंतु और किसी ने एक पंक्ति भी नहीं लिखी। यह अपमान है, अनादर है और अवहेलना है, जो कवि को वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक कारणों से मिलती है। इसे दूर करना है इसके प्रति विरोध प्रकट करना है। इसी हेतु यह उद्घाटन की योजना इस महान कार्य की प्रारंभिक भूमिका है, जिसे पूरी तरह सफल बनाना है और हरेक कवि, लेखक तथा बुद्धिजीवी को अपना सहयोग देना है। वह दिन निकट है जब कवि भी राष्ट्र की जनता से आदर पाएगा। वह अनादृत सदस्य न होगा, सम्मानित सदस्य होगा। उसके स्मारक स्वरूप भवन निर्मित किए जाएंगे, पुस्तकालय खोले जाएंगे और विश्वविद्यालय बनाए जाएंगे। उसकी जयंती मनाई जाएगी और उसके ग्रंथों का देश-देश में प्रचार होगा। मैं इस उद्घाटन कार्य में उसी दिन की स्पष्ट झांकी देखता हूं। आप भी देखेंगे।

जबलपुर की जनता तथा अन्य नगरों की जनता अपनी परमप्रिय कवयित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी का स्मारक बनाकर उनका आदर कर रही है। यह परम गौरव की बात है। इससे जनता की काव्य-प्रेमी भावना का परिचय मिलता है और उसका अखंड विश्वास प्रकट होता है। तुलसीदास ने इसी जन-जीवन के बल पर रामायण रची थी और मुगल वैभव के विरोध में रामराज्य को साकार किया था। तुलसी के राजदरबार का आश्रय नहीं ग्रहण किया राजदरबार में रहकर उन्होंने जनता के हृदय पर आसन बिछाया है। इस जनता के आदर की बड़ी महत्ता है। तुलसी अमर हो गए। श्रीमती सुभद्रा कुमारी को यह आदर प्राप्त हो रहा है। वह इस योग्य थीं और उनका सम्मानित होना सब प्रकार से वांछित है।

वह घड़ी अवश्य ही चिरस्मरणय होगी जब आपके कर कमलों द्वारा यह उद्घाटन कार्य सफलता के साथ संपन्न होगा और उस प्रस्तर-मूर्ति में, आपके स्पर्श मात्र से जनता की सबल-सजीव चेतना प्रवेश करेगी। तब हम सब यह अनुभव करेंगे कि हमारी कवयित्री हमारे पास हैं और सदा ही हमारे पास रहेंगी। काल का क्रूर कर उन्हें हमसे कभी न छीन सकेगा।

आज वह दिन स्वप्न है, कल्पना है। आप उस स्वप्न और कल्पना को सत्य और साकार करेंगे। आपसे अधिक सहृदय और योग्य व्यक्ति कोई दूसरा नहीं है, जो यह उद्घाटन कार्य कर सके। आपके हाथ राजमद से अछूते हैं, आपका हृदय सद्भावनाओं का परम प्रसन्न सागर है। आपकी वाणी शुद्ध और तपस्वी है। आपने उपेक्षित उर्मिला को सम्मान दिया है। क्या आप स्वर्गीया कुमारी जी को सम्मानित न करेंगे? ऐसा कदापि न होगा। आप अवश्य पुनः विचार करें।

अतएव मैं आपसे अत्यंत विनीत शब्दों में सब जनता की ओर से यह प्रार्थना करता हूं कि आप उद्घाटन का हमारा आग्रह स्वीकार करें और अपनी बीमारी और विवशता में भी चिरगांव का साहित्य-सदन को छोड़कर जबलपुर चलें। हर्ष और उत्साह के इस शुभ अवसर पर आपकी बीमारी और विवशता निःसंदेह दूर हो जाएगी। प्रश्नोत्तर की तीव्र लालसा है।

आपका

केदारनाथ अग्रवाल

साभार : *मित्र संवाद*

(संपादक : **रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी**)

फूल नहीं रंग बोलते हैं!

शमशेर बहादुर सिंह

पौने दो साल हो गए केदार के प्रतिनिधि संकलन *फूल नहीं रंग बोलते हैं* को निकले और सुनता हूं अभी तक उसकी कोई रिव्यू कहीं नहीं निकली, न कोई चर्चा कहीं हुई। केदार के पहले दो संग्रह—*नींद के बादल* और *युग की गंगा* सन् 45-46 में प्रकाशित हुए थे, और तीसरा *लोक और आलोक* सन् 56 में। केदार सन् 30 से भी पहले से लिख रहे हैं।

केदारनाथ के बहुचर्चित कविता-संग्रह फूल नहीं रंग बोलते हैं *पर शमशेर बहादुर सिंह द्वारा लिखी गई समीक्षा का संपादित अंश।*

नाम गिनाने के लिए आज तक प्रगतिशील धारा के जिन दो प्रमुख कवियों का उल्लेख सबसे पहले किया जाता रहा है वे यही हैं, केदार और नागार्जुन। कभी-कभी त्रिलोचन का भी तीसरा नाम इनके साथ जोड़ दिया जाता रहा है। चौथा नाम पिछले दो-तीन वर्षों से मुक्तिबोध का शामिल हो गया है। मगर मुझे वास्तव में नहीं मालूम कि इन चारों में से किसी पर भी कोई अच्छा गंभीर लेख आज तक कहीं लिखा गया। छिट-पुट तौर से निबंधों में एकाध पैरा में जिक्र कभी-कभार जरूर हुआ है। उसके आगे कुछ नहीं। सन् 43 या सन् 50 या सन् 60 के बाद से लिखने वाले अनेक छोटे-बड़े कवियों पर बार-बार कुछ-न-कुछ लिखा जाता रहा, उन पर बहसें भी उठाई जाती रहीं।

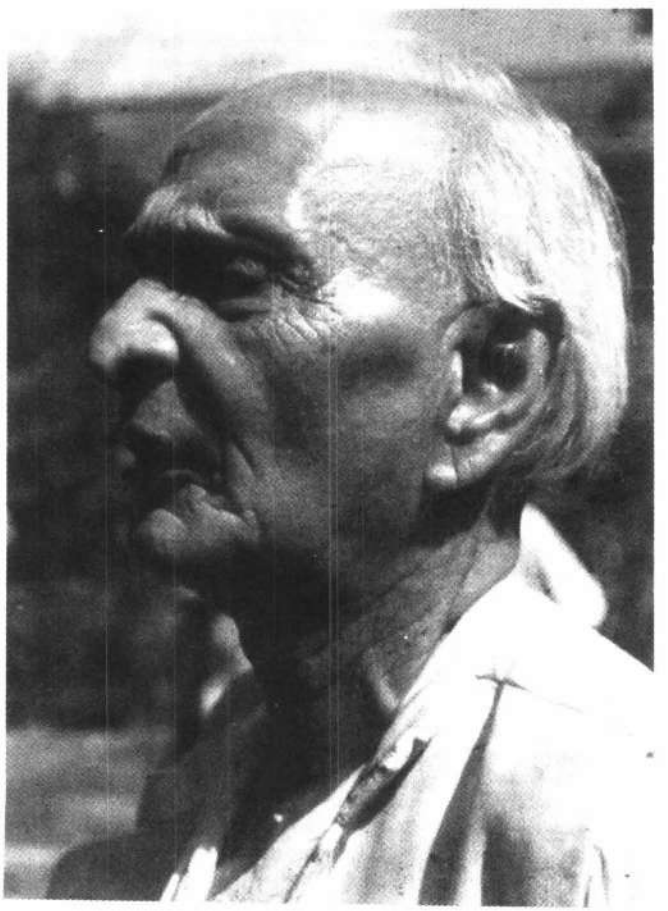

बंगला, उर्दू, मराठी, मलयालम, पंजाबी और कश्मीरी भाषाओं में समाजवादी विचारधारा ने प्रगतिशील साहित्य की रीढ़ बहुत हद तक मजबूत की थी। मगर हिंदी का प्रगतिशील साहित्य आंदोलन सन् 37-38 से लेकर लगभग 52 तक अपना रोल पूरा करके ख़ासा निःशक्त हो गया। इस आंदोलन के पंत, निराला, नरेंद्र, सुमन और कुछ लोक-कवियों के बाद जो चार कवि दृढ़ता से बराबर जनता के मनोबल में विश्वास रखते हुए अपना नाता उसकी आंतरिक रचनाशील शक्तियों से जोड़े रहे, वे मात्र केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध और नागार्जुन थे।

इनके साहित्य का उद्देश्य था—वर्ग-संघर्ष के सामाजिक मर्म को उघारते जाना। बस इसी को पूरा करने में एक अजब खामोश आन के साथ, इन्होंने अपने-आपको पूरी तरह खपा दिया।

एक छोटा-सा सवाल यहां उठता है। पाठकों के साथ सीधे संपर्क-माध्यमों की अपनी ओर से उपेक्षा—क्या इसमें एक प्रकार के रोमानी अहंवाद का लेश नहीं मिलता? बात यह है कि हिंदी प्रगतिशील कवियों में मुख्यतया अपने को निराला जी की परंपराओं से जोड़ा। इसी स्रोत से रोमानी आदर्शवाद हमारे कवियों के मार्क्सवादी दृष्टिकोण में चुपके-चुपके आ मिला। अतः मेरी दृष्टि में दृष्टिकोण की वैज्ञानिक आधुनिकता संदिग्ध हो जाती है। यह माना कि कविता विज्ञान नहीं है; मगर उसे आधुनिक युग का तो फिर भी होना ही है। कठिनाई आलोचक की नहीं, कवि की है। इस समस्या को भी आलोचक नहीं, कवि ही सुलझाएगा। इन कवियों को अच्छी तरह ज्ञात है और वे आश्वस्त हैं कि इनके भी अपने पाठक सभी हिंदी प्रदेशों में मौजूद हैं। पत्रिकाओं में इनकी चर्चा हो न हो। मौन और गंभीर, सजग पाठक; उन्हें इनकी भावनाओं और विचारों तथा इनकी आन और टेक में वह कुछ मिलता है जो उनके अन्य समकालीनों और बाद के कवियों में नहीं मिलता।

दरअसल हमारी खड़ी बोली का पूरा साहित्य बाबू-संस्कृति की देन है और हमारी आज़ादी भी। यद्यपि यह आज़ादी हमें कभी प्राप्त न होती अगर देश का किसान और मज़दूर मध्यवर्गी नेताओं का साथ न देता। उसके घोषित आदर्शों में विश्वास करके संघर्ष में उसके साथ न जूझता। मगर आज़ादी के बाद अब बाबू—संस्कृति की असली हकीकत, उसके आदर्शों की ढोल की पोल खुल गई है। लेखकों में बहुत-थोड़े निकलेंगे जो अपनी बाबू संस्कृति की दयनीय सीमाओं की वास्तविक चेतना रखते हों। केदारनाथ अग्रवाल निश्चय ही उन थोड़े-से लेखकों में हैं। वह वकील हैं, यानी 'बाबू साहब' हैं मगर बाबू साहब और 'बाबू जी की यथार्थ स्थितियों' से बखूबी परिचित हैं। *दयालु हो गया दीन/ दान देते-देते/दीन हो गया है क्षीण/दान लेते-लेते/असह्य है यह व्यवस्था/ दयालु और दीन की मर्म-कथा!/वेतन उड़ जाता है/ जैसे गंध कपूर।*

वह औद्योगिक नगर की बुनियाद, गांव के महाजन की हकीकत बिके हुए बुद्धवादी की हार, ऊब और विघटन, भूखे किसान के बेटे की पैतृक संपत्ति और बुंदेलखंड के दैनंदिन जीवन का नक्शा अच्छी तरह पहचानते हैं। मसलन—*धोबी गया घाट पर/ राही गया बाट पर/ मैं न गया घाट और बाट*

पर बैठा रहा हाट पर/ दोनों हाथ काटकर/जीता रहा ओस चाट-चाटकर।

जब बाप मरा तब यह पाया/ भूखे किसान के बेटे ने/ घर का मलबा, टूटी खटिया/ कुछ हाथ भूमि-वह भी परती/ चमरौधे जूते का तल्ला/ छोटी, टूटी बुढ़िया औगी/ दर की गोरस, बहता हुक्का/ लोहे की पत्ती का चिमटा/ कंचन सुमेर का प्रतियोगी/ द्वारे का पर्वत घूरे का/ बस यही नहीं, जो भूख मिली/ सौगुनी बाप से अधिक मिली।

केदार बुनियादी तौर पर एक 'नार्मल' रोमानी कवि हैं, छायावादी-रोमानी नहीं। शायद इसीलिए छायावादोत्तर काल में वह शीघ्र ही प्रगतिशील, और फिर मार्क्सवादी विचारधारा के कवि हो गए। अल्पकाल के लिए नहीं, बल्कि स्थायी रूप से। उनकी कवि-भावनाओं की रेख छायावादी इलाहाबाद में नहीं फूटी। छायावाद के चौराहे पर आने से पहले वह द्विवेदीकालीन उस आख़िरी लीक पर कुछ थोड़ी-सी दूर चल आए थे, जिस पर श्रीधर पाठक के सैलानी प्रकृति-प्रेम के स्वर और कानपुर की यथार्थ-प्रिय अल्हड़ मस्ती के रंग अभी बहुत हल्के नहीं पड़े थे—सन् 30 के आसपास। उनके बांदा के ही कवि-कहानीकार मित्र डा. वीरेश्वर सिंह का उनका साथ इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में उन्हीं दिनों तीन-चार साल रहा; वह प्रेमचंद के भक्त थे और कविता में सीधे-सजीव शैली पसंद करते थे। डा. वीरेश्वर सिंह की मौसी सुभद्राकुमारी चौहान 'मुकुल' लेकर तब कवि-रूप में सामने आई-आई थीं, और काफी सुथरा और सजीव उनका नया-नया काव्य था। और उनकी भी पृष्ठभूमि बुंदेलखंड की ही थी, जिसके प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण केदार ने भी नवीन कुशलता से बार-बार किया है।

सन् 30-31 से पहले ही लखनऊ की *माधुरी* में उनके छोटे-छोटे गीत (जैसे—धीर उठाओ मेरी पालकी) बराबर छप रहे थे। इंटर-बी.ए. विद्यार्थी के लिए यह कुछ कम गौरव की बात न थी। केदार की प्रतिभा की एक विशेषता रही है सहज सजगता। अपने लिए सही रास्ता चुनने में वह कभी नहीं गड़बड़ाए। स्वस्थ रोमान की जवान रंगीनी। मुझे याद है होस्टल के दिनों में अपनी पत्नी पर एक लंबी कविता उन्होंने लिखी थी। इसके कुछ ही साल बाद की उनकी कविताएं—'चंद्र गहना से लौटती बेर' और 'बसंती हवा' जो उनके प्रतिनिधि संकलन के आरंभ में ही हैं) आज भी वही मस्ती और ताज़गी लिए हुए हैं; प्रकृति और समाज के भी—आईने में जब वह सौंदर्य के दर्शन करते हैं (नैसर्गिक या श्रमसंपुष्ट), तो वह उसमें उसी तरह मगन हो जाते हैं जैसे तैराक नदी में कूदकर या परिंदे हवा में नाचकर। केदार के इस उत्साह और आनंद में हम सदैव एक सहज अनारोपित मर्यादा का अनुभव करते हैं। यह केदार का बहुत प्रसिद्ध प्रकृति-चित्रण है—*एक बीते के बराबर/ यह हरा ठिंगना चना/ बांधे मुरैठा शीश पर/ छोटे गुलाबी फूल का/ सजकर खड़ा है/ पास ही मिलकर उगी है बीच में अलसी हठीली/ देह की पतली, कमर की है लचीली/ नील फूले फूल को सिर पर चढ़ाकर/ कह रही है, जो छुए यह/ दूं हृदय का दान उसको/ और सरसों की न पूछो/ हो गई सबसे सयानी/ हाथ पीले कर लिए हैं/ ब्याह-मंडप में पधारी/ फाग गाता मास फागुन/ आ गया है आज जैसे/ देखता हूं मैं : स्वयंवर हो रहा है/ प्रकृति का अनुराग अंचल हिल रहा है/ इस विज़न में/ दूर व्यापारिक नगर से/ प्रेम की प्रिय भूमि उपजाऊ अधिक है।...*

(*चंद्र गहना से लौटती बेर*)

इसी तरह की ताज़गी लिए हुए पंक्तियां ये भी हैं, जो बीस-बाईस साल बाद की अनुभूति—*धूप चमकती है चांदी की साड़ी पहने/ मैके में आई बेटी की तरह मगन है/ फूली सरसों की छाती से लिपट गई है/ जैसे दो हमजोली सखियां गले मिली हैं/ भैया की बांहों से छूटी भौजाई-सी/ लहंगे को लहराती लचती हवा चली है/ सारंगी बजती है खेतों की गोदी में/ दल के दल पक्षी उड़ते हैं मीठे स्वर के...* (*धूप*)

मैं नहीं जानता कि डा. रामविलास शर्मा से केदार का संपर्क पहले-पहले कब हुआ। मगर सन् 38 के आसपास नरोत्तम नागर ने जब जैनेंद्र-विरोधी, गांधीवाद-विरोधी और छायावाद-विरोधी (मगर-निराला/समर्थक) *उच्छृंखल* निकाला, तो उसके सहयोगी लेखकों में ये दोनों भी थे। पंत जी ने तभी प्रगतिशील साहित्य आंदोलन के आरंभ के साथ-साथ करवट ली थी। उसका असर और कवियों पर भी पड़ रहा था जिनमें नरेंद्र मुख्य थे। सन् 39 में पंत जी ने नरेंद्र शर्मा के साथ मिलकर *रूपाभ* मासिक निकाला था। ग्राम्या की यथार्थवादी कविताएं जब *रूपाभ* में निकलीं, तो केदार की भी 'बसंती हवा' उसमें प्रकाशित हुई। आज भी वह वैसी ही ताज़ी, उत्फुल्ल, चुहल-भरी और मस्त लगती है।

प्रकृति-चित्रण में पश्चिम के कुछ आधुनिक कवियों से भी उन्होंने अपना कुछ-न-कुछ संबंध रखा है। सन् 52 में नेरूदा की लंबी कविता का अनुवाद किया था। दो अनुवाद उनके प्रतिनिधि संकलन में भी हैं, विशेषकर कीट्स के 'हाइपीरियन' के आरंभिक अंश का अनुवाद।

केदार ने वकालत बांदा में ही शुरू की। घर में थी एक मध्यवर्ग की सुखी-सी कार्यव्यस्त गृहस्थी और बाहर एक ईमानदार वकील की कड़ी मेहनत। ऊपर से सफल-प्रसिद्ध वकील चचा का अनुशासन और मर्यादाओं का परंपरासम्मत बंधन। केदार का चुपके-चुपके बांदा के इस व्यस्त एकांत में अपना अध्ययन और काव्य-प्रेम जारी रहा और बढ़ता गया। कविताएं वह रात को ही लिख पाते। केदार के चारों ओर था रूढ़ियों और अंधविश्वासों से जकड़ा, निरंतर ठगा जाता शोषित-दलित किसान, मुकदमों के चक्करों में तबाह। दूसरी ओर अर्द्धसामंती जमींदारी सभ्यता थी, उसका खोखला आडंबर और पाखंड और क्रूर दांव-पेच। साथ था साम्राजी शासन का, उसके सहयोग से, नवीन विचारों और आंदोलन का निरंतर दमन। इसी दौर में केदार का अपना खास व्यक्तित्व पुष्ट हुआ और निखरा। एक ओर वर्ग-संबंधों की क्रूर-कटु पृष्ठभूमि को समझने के लिए अध्ययन और मनन चलता था, तो दूसरी ओर उनके मन और मस्तिष्क के श्रम को दूर करने वाली रम्या प्रकृति थी : आंख-मिचौनी खेलते उसके ऋतु-परिवर्तन, उसके मस्त झूमते पेड़-पौधे, उसकी रंग-बिरंगी फूल-पत्तियां और उनके बीच में उनकी सबसे प्रिय सखी-सी केन-नदी। यही दो क्षेत्र रहे हैं कवि केदार की मुख्य भावनाओं के। अपने गार्हस्थ्य जीवन की भी सहज भाव-प्रवण झांकी कवि ने यदा-कदा दी है। केदार आंखों से पान किए हुए सौंदर्य के कवि और कलाकार हैं। ध्वनियों को भी जब किसी विशेष प्रभाव के लिए इन्होंने बांधा है तो अच्छा बांधा है। मगर उनके लिए वास्तव में रंग ही बोलते हैं—*जल रहा है/जवान होकर गुलाब/ खोलकर होठ/ जैसे आग/ गा रही है फाग / लिखा है अग्निम प्रकाश/ संध्या प्रकाश में ...न यह याद रहता है मुझे/ न वह/ बस याद रहता है मुझे/ रंग रोर.../ फैलता फूलता फलताः अछोर/ डूबता हूं जिसमें मैं/ और डूबती हो तुम/ एक दूसरे को अंक में समोये/ भाव से विभोर/ रंग नहीं, रथ दौड़ते हैं/ रंगीन फूलों के/ सांध्य गगन में!/ ध्वज फहरते हैं/ रंगीन स्वप्नों के/ ...नट नाचते हैं रंगीन छंदों के/ सांध्य गगन में!*

प्रायः ही पाया जाएगा कि रंगों के साथ सदैव कोई-न-कोई क्रियात्मकता संबद्ध है। ऐंद्रिय अनुभूतियों को पैना धारदार करना; रूप को चटक रेखांकित करना; रोमानी भावना के विशेष नाटकीय क्षण को स्पष्ट आकारों में मूर्त करने का आग्रह होना—यह ढंग और अंदाज़ केदार में बार-बार मिलता है। इसमें 'रहटरिक' को अक्सर दख़ल होता है; और अक्सर बेजा दख़ल भी नहीं। पर यह 'रहटरिक' बाद की 'प्रायः सन् 57-58 के बाद की कविताओं की प्रभावकारिता में पूर्णतया छिप गया है। छठे दशक से केदार के यहां भाव-स्तरों में अधिक गुंफन, भावनाओं में एक गूढ़ता-सी मिलने लगती है, जो पहले उनके मिज़ाज और शैली की विशेषता कोई अधिक न थी। इस प्रकार की पंक्तियां उनके

यहां नयी चीज हैं—*अंधकार में खड़े हैं /आकाश के स्तंभ/ एक नहीं, हजार/ इस पार-उस पार/ कुएं के मौन में डूबे स्तब्ध/ भूल में डूबी नदी/ हंस की चोंच में दबी/ आकाश में चली जा रही है उड़ी/ न जाने कहां-न जाने कहां/ रूई ओटती है दुनिया/ स्वप्न देखती है दुनिया।* यह कोमल अंतरमानसी चित्रण केदार की इधर की कविता की विशेषता है—*वह /सुबह की चांदनी है/ओस से भीगी हुई/धूप का दर्पण लिए/ ओट में गूंगी खड़ी/वह /नदी के नील जल की वासना है/जो कगारों को/ डिगाए जा रही है।* मगर जब कवि कहता है—*मेरे मन की नदी/सदी के वृहत सूर्य से चमक रही है।* तो हम पाते हैं कि स्पष्टोक्ति और जीवन में यथार्थ के नैतिक पक्षों के प्रति आग्रह आज भी केदार की कविता के विशेष गुण हैं। नई कला-चेतना के इस दौर में भी उनका वह अपना विशेष गुण कम नहीं हुआ है। (मगर कवि के मिज़ाज में एक घुलावट, एक तरलता पहले से कुछ अधिक जरूर आ गई है।) इधर की कविताओं में भी कवि का विशिष्ट रंग देखिए—*न टूटो तुम/ वरन झुको यों/ कि चूम लो मिट्टी/और फिर उठो/ कोई है देखे /मेरा मनुष्य पत्थर हो गया है/ बहार के दिनों में/ फिर उपजेगा उन्नत-मस्तक सिंह-अयाली नाज़/फिर गरजेगी कष्ट-विदारक धरती की आवाज़।* सीधे संक्षिप्त उपादानों से एक भरपूर चित्रण पेश करना—यह भी केदार के सहां देखते बनता है—

चोली फटी सरस सरसों की/लहंगा गिरा फागुनी नीचे।
चूनर उड़ी अकासी नीली/नंगी हुई पहाड़ी देखो।

उत्प्रेक्षा में पूरा प्रतीक सांगोपांग खड़ा कर दिया गया है। कम-से-कम शब्द और एकदम यथास्थान।

'इमेज' के लिए 'बिंब' शब्द लाना यहां मुझे उपयुक्त नहीं जान पड़ता। मैं यह कहना चाहता हूं कि केदार की कुछ बहुत अच्छी कविताओं में 'इमेजिस्ट' शिल्प की प्रधानता है (इस शिल्प में कोई खतरा है तो यही कि कभी-कभी कविता चित्र-मात्र होकर रह जाती है। चित्र बराय चित्र।) एक सफल रचना का प्रधान आकर्षण इस बात में होता है कि चित्रों की मूर्त प्रखरता काव्यात्मक अनुभूति की इकाई को एक अतिरिक्त-सी आभा या 'हाइ-लाइट' प्रदान करती जाए। सभी प्रकार की काव्यात्मक स्थितियों के लिए यह शिल्प आवश्यक हो—ऐसा नहीं है। पर निश्चय ही केदार की यथार्थपरकता के बहुत अनुकूल पड़ता है इस प्रकार का शिल्प। *फूल नहीं रंग बोलते हैं* में से दो सुंदर उदाहरण द्रष्टव्य हैं—*रात-दिन हिरण-सा चौकड़ी भरता चला/ धूप की चादर सिमिटकर खो गई/ खेत, घर, वन, गांव का/ दर्पण किसी ने तोड़ डाला/ शाम की सोना-चिरैया नीड़ में जब सो गई/ पेड़-पौधे बुत गए जैसे दिए/ केन ने भी जांघ अपनी ढांक ली।* एक दूसरी छोटी-सी कविता—*झाड़ी के एक खिले फूल ने/नीली पंखड़ियों के एक खिले फूल ने/ आज मुझे काट लिया/ ओठ से/ और मैं सचेत रहा धूप में।* या यह चित्र और उसका भाव देखिए—*आज नदी बिलकुल उदास थी/ सोई थी अपने पानी में/ उसके दर्पण पर/ बादल का वस्त्र पड़ा था।* यहां 'इमेज' का शिल्प कविता के प्रभाव में कैसा घुल-मिल गया है। प्रकृति कवि के लिए एक आत्मीया जैसी है। केदार की ऐसी कविताओं में भावनाओं की एक अजब सुसंस्कृत कोमलता का अनुभव होता है—*चली गई है कोई श्यामा/आंख बचाकर, नदी नहाकर/कांप रहा है अब तक व्याकुल/विकल नील जल।*

केदार उन्मुक्त आनंद और उल्लास के कवि और श्रम-शक्ति के सौंदर्य के गायक पहले रहे हैं; और कुछ बाद में भरे-पूरे ऐंद्रिय अनुभूतियों के कवि। मसलन 'खेत का दृश्य' गीत में देखिए। ऋतु के राग-रंग में विभोर कवि कह उठता है—*मैंने ऐसा दृश्य निहारा, मेरी रही न मुझे खबरिया—आसमान की ओढ़नी ओढ़े धानी पहने फसल घघरिया/राधा बनकर धरती नाची/नाचा हंसमुख कृषक सांवरिया/माती थाप हवा की पड़ती/पेड़ों की बज रही दुलकिया/जी-भर फाग पखेरू गाते/ढरकी रस की राग-गगरिया।* जहां हमने 'दिन' का एक मूड ऊपर देखा, वहां यह सहज-उष्ण अनुभूति भी देखिए—*भूल सकता मैं नहीं—/ये कुच-खुले दिन/ओठ से चूमे गए/उजले, धुले दिन/जो तुम्हारे साथ बीते!/रस भरे दिन/बावरे दिन/दीप की लौ-से/गरम दिन!* सहज स्नेह-बंधन का एक विह्वल चित्र जो आत्मीय पत्र-शैली के साथ पूर्ण होता है—*हे मेरी तुम!/आज धूप जैसे ही आई/और दुपट्टा/उसने मेरी छत पर रखा/मैंने समझा तुम आई हो/दौड़ा मैं तुमसे मिलने को/लेकिन मैंने तुम्हें न देखा/बार-बार आंखों से खोजा/वही दुपट्टा मैंने देखा/ अपनी छत के ऊपर रखा।*

मार्क्सवादी कवि प्रयोग के क्षेत्र में उतनी ही दिलचस्पी ले सकता है और लेता है जितना कि मार्क्सवाद-विरोधी कवि। केदार की एक छोटी-सी प्रसिद्ध कविता है—*मैंने उसको/जब-जब देखा/लोहा देखा/लोहा जैसा/तपते देखा/गलते देखा/ढलते देखा/मैंने उसको/गोली जैसा/चलते देखा!* यह 'फार्मलिस्ट' कविता नहीं है। यह प्रगतिशील कविता है, और प्रयोगवादी कविता है। अंतिम दो पंक्तियों में एक विस्फोट जैसा है। स्थिति जो क्रम में परिवर्तित होती आगे बढ़ रही है सहसा अपने निशाने पर आकर बिजली की तरह स्पष्ट हो उठती है। क्रांतिकारी का संक्षिप्त जीवन-चरित्र है। पाठक जिसको चाहे इस चित्र में रखकर देखे। प्रखर बौद्धिक विकास के सार्थकतम जीवन का भी प्रतीक यह चित्र हो सकता है, या अनवरत उद्योगशीलता का यह चित्र लें—*तेज धार का कर्मठ पानी/चट्टानों के ऊपर चढ़कर/मार रहा है/घूंसे कसकर/तोड़ रहा है तट चट्टानी!* या अंधड़ का यह चित्रण, जो प्रथम पाठ में रूपप्रकारवादी लगता है—एक सशक्त चित्रण, चित्रण के लिए; आंधी की अपनी आवाज़ में—*मैं घोड़ों की दौड़/वनों के सिर पर तड़-तड़ दौड़ा/पेड़ बड़े से बड़ा/चिरौटे-सा चिल्लाया चौंका/पत्तों के पर फड़-फड़ फड़के/उल्टे, उखड़े, टूटे/मौन अंधेरे की ढालों पर/सांड़ पठारी छूटे!*

यह प्रकृति की एक दुर्दम्य शक्ति का चित्रण है। उसकी अहंता का एक रूप। जब केदार एक अन्य प्रकार का चिंताकुल मौन भाव का चित्र पेश करते हैं, जो प्रायः वह नहीं करते, तो हम उसमें भी एक स्वस्थ ज़िम्मेदार नागरिक को ही चिंतारत देखते हैं। उसके 'मूड' ने प्रकृति को रंग दिया है। 'इमेज' अपनी मार्मिकता में इस 'मूड' को और गहरा करते जाते हैं, जो एक व्यक्ति का ही नहीं, शायद पूरे परिवेश का है—*गींज गए कपड़ों-सा उतारा हुआ अंबर है/मैली हुई मौन शाम फैली है/अनकही बातों को/और हवा डूब गई नावों की/पाल लिए चलती है/नाटकीय रंगों का रंगमंच सूना है/न ही कोई नर्तक है/न ही कोई वादक है/न ही कोई गायक है/हर्ष की हिलोरों को/पांव से दबाए खड़ा सैनिक है/काई मढ़े पानी में सोई कहीं शोभा है/चंचला अचंचल है—चारों ओर/केश खोले चिंता है/धुएं की अवस्था में देश-काल धुंधला है/मेरा मन ऐसी शाम देखकर सिहरता है/रात जाने कैसी हो, मेरा मन डरता है।*

केदार की अभिव्यक्ति में एक भोलापन कभी-कभी उनके तथ्य को सपाट और भावहीन कर देता है। जैसे 'लेखक की स्वतंत्रता' (पृष्ठ 79) में। पूरी कविता मात्र 'स्टेटमेंट' है। स्वतंत्रता-संघर्ष से अर्जित की जाती है। मांग कर नहीं मिलती। बहरहाल इस तरह की चीज़ें सहज ही पत्रकारिता की शैली में ढल जाने का ख़तरा मोल लेती हैं। यह प्रायः वहां अधिक होता है जहां अति-परिचित प्रतीकों और उपमाओं को ही मुख्य रूप से बांधा गया हो। मसलन 'अंधकार' और 'प्रकाश' के विरोधी प्रतीक किसी भी प्रकार की सार्थकता-नवीनता पैदा करने के लिए बहुत कठिन पड़ेंगे। (पृष्ठ 116)

कभी-कभी किंचित लापरवाही भी दृष्टिगत होती है—'हथौड़े का गीत'

पृष्ठ 38 पर जारी

उन्मादिनी

केदारनाथ अग्रवाल

*(केदारनाथ अग्रवाल की अप्रकाशित कहानियों का जो संकलन हमें अशोक त्रिपाठी जी ने दिया उसी संग्रह की एक अप्रकाशित कहानी—***अशोक त्रिपाठी** *के सौजन्य से)*

मैं अपने पिता की एकमात्र पुत्री थी। मेरा कोई भाई न था। मैं अपने पिता को दादा-दादा कहकर पुकारती थी। मैं उन्हें प्यारी थी और वे मुझे बड़ी प्रसन्नता से अपनी गोद में बिठाकर मेरे कोमल कपोलों पर चुंबन की छाप डाल देते। मुझे उनसे इतनी अधिक प्रीति क्यों थी, इसका कारण संभवतः इकलौती पुत्री होने का रहा हो। जब भी मुझ पर किसी प्रकार का दुख आता वे चिंतामग्न हो जाते और अपने अपार साहस से उसे हटाने का प्रबल प्रयत्न करते। लगभग मैं उनके साथ हर समय रहती। ग्रीष्म की तीव्र उष्णता में और शीतकाल की कंपाने वाली ठंडक में सदा उनके ही बिस्तर पर लेटती। वे मुझे कभी कहानी सुनाते और कभी सदुपदेश का लाभ देते। कभी भी उन्होंने मेरे ऊपर अपना हाथ न छोड़ा था। जब किसी समय मैंने कोई अपराध किया उन्होंने उसे शीघ्र ही क्षमा कर दिया। मारे शर्म के मेरे शरीर में आप ही आप कंपन हो उठती। मुझे स्वयं अपनी भूल पर घृणा होती। वे मुझे 'बेटी' कहकर पुकारा करते थे।

मेरे दादा की हार्दिक इच्छा थी कि वे मुझे असीम सुख देते परंतु उनकी आर्थिक अवस्था दिन-पर-दिन बुरी होती जाती थी। वे अपने वृद्धावस्था में थे। अब उनसे काम-धाम तो हो नहीं सकता था। जो कुछ भी वे हाथ उठाकर करते केवल मेरे ही सुख देने के लिए। वे सदा मुझे घी-चुपड़ी रोटी भोजन के समय देते। स्वयं सूखी रोटी खाते। मैं इस पर झगड़ती परंतु वे मेरी एक न सुनते। मैं उन्हें सदैव काम करने से भरसक रोकती परंतु वे कुछ भी कान न देते। मुझे अपने दादा की गिरती हुई दशा पर दया आती। मैं काम करना चाहती परंतु वे ऐसा न करने देते। हां उनका हुक्का मैं ही ताज़ा किया करती।

मुझे अपने दादा के साथ बड़ा सुख था। ग़रीबी में पेट-भर भोजन ही मिल गया तो मानो सब सुख मिल गया। मैं तो रोटी क्या दूध तक पाती थी। मेरे दादा के पास एक बूढ़ी बकरी थी। मैं उसे अम्मां कहकर पुचकारती थी। वह मेरे को काफी दूध देती। मेरे दादा ही उसे दूहते। मेरी अम्मां के लंबे-लंबे कानों में मेरी मधुर ध्वनि गूंज उठती। मैं कभी तो कहती कि अम्मा आज दादा से मैं तुझे हरी-हरी घास दिलवाऊंगी और कभी कहती कि अम्मा मैं आज तुझे अपनी रोटी का एक भाग दूंगी। मेरी अम्मा इस पर सिर हिला देती। और मैं समझ जाती थी कि उसे यह सब स्वीकार है। मैं उसे ही अपनी जननी मानती। माता का काम बच्चे को दूध पिलाना होता है। मेरी अम्मा मुझे याद है बहुत वर्षों से अपना दूध पिलाती आई थी। मैं उसकी पुत्री थी। मुझे अपनी अम्मा से उसी भांति प्रेम था जिस भांति अन्य बच्चों को अपनी-अपनी मांओं से प्रेम होता है। मैं अपनी अम्मा के पास बैठकर अपने सुख-दुख की कहानी सुनाती। मुझे विश्वास था कि मेरी अम्मा बड़े ध्यान से सुनती है। वह मुझे देखकर अपनी दुम हिलाकर चिल्लाने लगती। मुझे उसकी बोली भी सुंदर लगती। मैं दौड़कर उसका मुख चूमकर कहती कि अम्मा भूख लगी है। अच्छा दादा अभी तुम्हारे लिए हरे पत्ते लाते होंगे। बहुत भूख लगी हो तो मैं जाऊं दादा को बुला लाऊं। इस पर वह चुप हो जाती। उसके लंबे बाल बड़े भले लगते। मैं उन्हीं को हाथ में लेकर सहलाती। जब मेरे दादा को पत्ती लाने में देरी लग जाती तो मैं उनके आने पर उन्हें पकड़कर समझाती कि दादा ऐसी देरी क्यों करते हो? मेरी अम्मा को बड़ी भूख लगती है। उसे पत्ती लाकर और काम किया करो। मेरे दादा भी मेरी प्रेम-भरी बातें सुनकर अच्छा कहकर टाल देते और कोई दूसरा काम करने लगते।

मैंने कभी न सोचा कि मेरी अम्मा बकरी क्यों है। दूसरे बालकों की माताएं तो स्त्रियां हैं। यह मैं अब तक न जान सकी थी। मैं बकरी को अम्मा कहती थी क्योंकि वह सचमुच ही मेरी अम्मा थी। मुझे इस बात में तनिक भी संदेह नहीं मालूम होता था।

मैं सावन में दस बरस की होने वाली थी। मेरे दादा की अवस्था और भी गिर गई। वे हमेशा शोकातुर-से रहने लगे। उन्हें मेरी चिंता अधिक सताने लगी। वे मेरी ओर देखकर आंसू टपका देते। मेरी फटी धोती उनके दिल को फाड़ देती। उन्हें दमे का रोग पहले ही से था। दवाई का प्रबंध तो कुछ था ही नहीं। वे खाट पर पड़े रहकर दिन-भर 'खांय-खांय' किया करने लगे। अब घास काटकर कौन लाता और कौन उसे बेचकर अपना पेट पालता। मेरी भी हालत बुरी हो गई। मेरे दादा ने सुक्खू काका के हाथ मेरी अम्मा को चार रुपये में बेच देने की ठानी। सुक्खू ने चांदी के रुपये दिए और मेरी मां को ले चला। मैं यह रहस्य न समझ सकती थी। मैंने दादा से पूछा कि मेरी अम्मा को सुक्खू के यहां क्यों भेज दिया। उन्होंने डबडबाई आंखों से उत्तर दिया बेटी—'पेट के कारण।' उनके कहने के ढंग में दुख और तीव्र वेदना की अनुभूति थी। इतना कहकर उन्होंने मुझे गले से चिपटा लिया। मैं अबोध बालिका की भांति घबराए हुए दिल से यह सब बातें देख रही थी। मुझे नहीं ज्ञात था कि मानव जीवन में इस प्रकार की जटिलताएं प्रतिपल प्रकट होती हैं। मैंने सुक्खू को कोसा। उसे मेरी अम्मा को ले जाने का क्या हक था। मुझे यह बड़ा बुरा लगा कि चार रुपये देकर सुक्खू मेरी प्यारी अम्मा को मेरे घर से ले जाए। मेरी अम्मा का मोल रुपयों द्वारा नहीं किया जा सकता। दुनिया की इस अनीति पर मुझे घृणा और क्रोध हुआ। मुझसे रहा न गया। मैं उठी और सुक्खू काका के घर की ओर दौड़ पड़ी। मैं दौड़ती हुई हांफती जाती और मन ही मन सोचती कि काका से कहूंगी कि मेरी अम्मा को ले जाने वाला वह कोई नहीं होता। वह मेरे दादा और मुझ पर बड़ा ही अत्याचार करता है। वह अपने रुपये ले ले परंतु मेरी अम्मा दे दे।

मैं थक गई थी। मेरी सांस जोर से चल रही थी। हांफती हुई मैं सुक्खू चाचा के द्वार पर जा पहुंची। देखा सुक्खू काका मेरी प्यारी अम्मा को मारने का आयोजन कर रहे हैं। धरती पर मेरी अम्मा पड़ी हुई है। सुक्खू अपने हथियार तेज करके मेरी अम्मा के गले पर चलाने ही वाला है। मैंने लपककर उसे रोकते हुए अपनी घबराई हुई आवाज़ में कहा। सुक्खू काका! मेरी अम्मा को न मारो। मैं बिन अम्मा न जिऊंगी। ये लो अपने चार रुपये। परंतु काका ने मेरी एक न मानी और कहा—"अरे चल! रुपये मुझे अब क्या करने हैं? दरोग़ा साहब को गोश्त खिलाना है कि रुपये!" इतना कहकर मेरे देखते-देखते ही काका ने मेरी प्यारी अम्मा का जीवन अंत कर दिया। मैं बेहोश होकर पास ही गिर पड़ी।

अहा! वह दृश्य कितना भयंकर था। मां का बेटी के ही सम्मुख मारा जाना। आज भी यह सोचकर

मेरे हृदय में पीड़ा उठती है। रोम-रोम सुक्खू की क्रूरता पर जल उठते हैं। हाय! उसी दिन मैं मातृहीन बना दी गई। मुझे प्रतीत हुआ कि मेरी अम्मा का रक्त-रंजित सर अपनी दीन आंखों से मेरी ओर एकटक देख रहा है। मैंने उसे चूमा और अपनी मृत अम्मां से कहा! अम्मां मेरी प्यारी अम्मां! अब मैं तुमसे कैसे प्यार करूंगी? मैं अधिक न बोल सकी। दुख के कारण मेरे शब्द बाहर नहीं निकलते थे। मैं अपनी अम्मा का सर लिए हुए उसे अपने मुख से चूम रही थी और अपनी आंखों से अम्मां का रूप लावण्य देख रही थी। मेरी फटी धोती रक्त से लथपथ हो गई। मुझे इसका कुछ भी ज्ञान न था। इतने में सुक्खू चाचा ने मेरा हाथ पकड़कर मेरी प्यारी अम्मा का सर मेरे हाथ से छीन लिया और जमीन पर पटककर कहा—"चल बाहर।" बात की बात में मैं काका के घर से बाहर कर दी गई। भीतर से सांकल लग गई। मैं निःसहाय की भांति थोड़ी देर तक आंसू गिराती रही।

मेरे सिसकने की आवाज़ सुनकर पास-पड़ोस के कई लोग इकट्ठा हो गए। सब लोग मुझसे मेरे रोने का कारण पूछने लगे। मैं अपनी वेदना से और भी दुखित हो उठी और मेरी शोक-यात्रा बढ़कर आंसुओं के रूप में टप-टप करने लगी। मैं अपनी पूरी ताकत से फुफकार छोड़कर रो पड़ी। मैंने रुक-रुककर रोते हुए कहा—'मेरी अम्मा को सुक्खू काका ने मार डाला है।' लोग इस बात को सुनकर आश्चर्यचकित हो उठे। उनकी बुद्धि ने मेरी सत्य बात का विश्वास न किया। उन्हें केवल यही ज्ञात था कि मेरी मां पहले ही मर चुकी थी। वे न जानते थे कि मेरी मां तो लंबे बालों वाली बकरी थी। मैंने इस मानव हृदय पर अपने हृदय का विष उड़ेलना चाहा। हाय! कोई नहीं जानता था कि मुझ जैसी बालिका की मां पशु भी हो सकती थी। सब लोग मेरी बात पर हंसने लगे। मैं वहां से रूठकर भागने का प्रयत्न करने लगी। भीड़ को मेरे साथ संवेदना नहीं थी फिर मैं वहां पर रुकना उचित नहीं समझती थी। मैंने अपने कदम बढ़ाए और लोगों की ओर रोते हुए कहा कि— "तुम लोग पागल हो मेरी मां बकरी थी। सब लोग मिलकर मेरी मां का अपमान करते हो। ईश्वर तुम्हें इसका बदला देगा"। इसके बाद मैं दौड़कर मंदिर की ओर बढ़ी। इधर कुछ लड़कों ने मेरे पीछे धावा बोला और वे पगली कहकर पुकारते और ताली बजाते। कुछ लोग मेरे दादा के पास भी पहुंचे और उन्हें इस बात की सूचना दे दी कि मुझे उन्माद हो गया था।

मंदिर के पट खुले थे। मैंने बाहर ही सीढ़ियों पर अपना मस्तक पटककर कहा—'भगवान! मेरी मां को जिला दो!' मेरे आंसू टपक रहे थे। हृदय में बड़ी पीड़ा हो रही थी। सर ऊपर उठाकर जब मैंने भगवान की निश्चल मूर्ति को देखा तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे मुझे अपने निकट बुला रहे थे। मैंने मूर्ति के चरणों पर अपना माथा रख दिया। मुझे यह पूर्णरूप से ज्ञात एवं विदित था कि भगवान की शरण में जाकर कुछ भी दुख नहीं रहता। वे सर्वशक्तिमान हैं। फिर जब कभी मेरे दादा पर कोई विपत्ति आती थी तो वे आकाश की ओर हाथ उठाकर विनम्र नयनों से दयापूर्वक विनती करते थे। मैंने देखा कि ईश्वर ने उनकी कामनाएं पूर्ण की थी। मेरे हृदय में इसी कारण से यह निश्चय हो गया था कि ईश्वर मेरी भी बात सुनेंगे। उसी दिन जब कुछ खाने को न था मैं भूख के कारण व्याकुल पड़ी थी तब दादा की विनय सुनकर ईश्वर ने उसी समय पड़ा हुआ रुपया मिला दिया। मैं तो उसे ईश्वर का ही दिया हुआ समझी थी। मेरे नन्हे और अबोध दिल पर ईश्वर की दया का चित्र बड़ी ही सुंदरता से अंकित हो गया। मैंने अपना हृदय खोलकर ईश्वर के सम्मुख रख दिया। मैंने सारे भाव रोकर ही प्रकट किए। मैं प्रतीक्षा ही कर रही थी कि अब भगवान अपनी दया करने वाले हैं कि इतने में कई बालक आए और मुझे मेरे घर की ओर पकड़कर ले चले। मैं यह रहस्य न समझ सकी। मैंने चीख़कर कहा कि मुझे मेरे दादा के पास जाना है। वे बीमार हैं। सुक्खू काका के पास अब न ले चलो। मैं उसे देखकर अब न जी सकूंगी। चिलबिले बालक समुदाय की तूती की आवाज के सम्मुख मेरी आवाज़ कौन सुनता। मेरे हृदय को यह ज्ञात था कि मेरी बात कोई नहीं सुन रहा। परंतु फिर भी मुझे एक अज्ञात विश्वास की किरण भगवान की मूर्ति के सम्मुख अपनी करुण कथा कहने और मूक प्रार्थना करने को आकर्षित कर रही थी। यही सोच-सोचकर मेरे रोकने पर भी विनम्र शब्दावली निकल पड़ती थी। बालकों ने उन्मादिनी कहते-कहते मुझे अपने दादा की खाट के पास पटक दिया। मेरे दादा की दशा बड़ी दयनीय थी ही मेरी उन्मादावस्था का कारण सुनकर उनकी दशा और भी खराब और शोचनीय हो गई। वे मरने ही वाले थे। मैंने दादा को गले लगाकर रोती हुई आवाज़ में कहा—दादा! सुक्खू काका ने मेरी अम्मा को मार डाला। मैं बड़ी विपत्ति में हूं। वे लोग मुझे उन्मादिनी कहने लगे। कहते हैं कि क्या पशु भी मानव को जन्म दे सकता है। देखो ये कैसे मूर्ख हैं। इन्हें हंसने में ही आनंद मिल रहा है। तुम इनकी न मानो। मैं बिल्कुल अच्छी हूं। ये सच बात नहीं जानते। अब बताइए मेरी मां फिर और कौन थी? दादा तुमने भी तो मुझे यह नहीं बताया कि मेरी पहले एक और मां थी। असली मां वही थी।

दादा ने मेरी बातें सुनकर बड़ा दुख प्रकट किया। उन्होंने मेरा मुख चूमकर कहा—'बेटी, तेरी मां तो पहले ही मर चुकी थी। तुझे यह ज्ञात नहीं है। तू बड़ी छोटी थी। मैंने तुझे बकरी का दूध पिला-पिलाकर पाला है। बेटी! तुझे यह बात मैंने इसी वजह से नहीं बताई थी कि तुझे बड़ा दुख होगा। मैंने देखा कि यह कहते हुए मेरे दादा के नयन गीले पड़े थे। मैं दादा की बातें सुनकर भी दंग रह गई। मैंने लाख चाहा कि मैं दादा की बातों का तो विश्वास कर लूं पर ऐसा न कर सकी। मैंने दादा की ओर बड़ी आलोचनात्मक दृष्टि से देखकर कहा—'दादा क्या तुम भी झूठ बोलने लगे। अपनी प्यारी बेटी को तुम भी उन्मादिनी समझ बैठे। मैं तो यह नहीं मान सकती। मेरी अम्मा को तो सुक्खू ने ही मारा है। मेरी और दूसरी मां ही नहीं थी। क्या पशु मनुष्य को जन्म नहीं दे सकता? ईश्वर सर्व सामर्थ्यपूर्ण है। जब वह प्रह्लाद को अग्नि से बिना जला निकाल सकता है और द्रोपदी की लज्जा रखने के लिए अपनी राधा का अंबर तक दे सकता है तो क्या वह मुझे बकरी के उदर से जन्म नहीं दे सकता। यह असंभव नहीं है। फिर क्यों दादा तुम भी मुझसे यह बात छिपा रहे हो। ऐसा न करो।

दादा का आखिरी समय आ गया था। वे अपनी बोलने की शक्ति खो चुके थे। उन्होंने आंखों से फिर भी कहा कि मैं झूठ नहीं कह रहा हूं। परंतु मेरे हृदय पर जो बात जम गई थी वह अब निकल नहीं सकती थी। दूसरे ही क्षण में मेरे दादा की मृत्यु हो गई और मैं रोती-बिलखती संसार में अकेली रह गई।

ऐ नीम के पेड़! इस घटना को हुए कई वर्ष व्यतीत हो गए हैं। मैं आज भी उन्मादिनी के नाम से सारे गांव में पुकारी जाती हूं। लड़के मुझ पर ढेला फेंकते और दौड़-दौड़कर मेरे पीछे ताली बजाते हैं। तुम मुझे अपनी शीतल छाया में दिन की कड़ी धूप से बचाकर विश्राम देते हो। इसी वजह से मैं तुम्हें अपना हित-चिंतक समझकर यह सब अपनी बीती सुनाती हूं। अन्यथा दिल की बात दिल में ही लिए रहती। तुम्हें मेरी कथा सुनकर सहानुभूति होती है यह मैं भलीभांति जानती हूं। आंसुओं के लिए अपनी पीली पत्तियों को गिराकर तुम अब नाहक और दुख न करो। मेरे प्यारे पेड़! अब तुम्हीं मेरे सब कुछ हो!

यह कहकर उन्मादिनी नीम के पेड़ के नीचे पड़कर झपक गई। ❑

बैल बाज़ी मार ले गए

(केदारनाथ अग्रवाल ने कविताओं के अतिरिक्त गद्य में भी कार्य किया है। उन्होंने उपन्यास भी लिखे जिसमें पतिया, दीनू की दुनिया तथा बैल बाज़ी मार ले गए *(अधूरा) उपन्यास प्रमुख हैं। केदारनाथ अग्रवाल का गद्य लेखन, उनकी भाषा शैली का नमूना उनके अधूरे उपन्यास* बैल बाज़ी मार ले गए *के एक अंश से)*

बिंदा उस किस्म का आदमी था जो ऊपर उठने की कोशिश में सदा नीचे गिरता गया। उसका सही कदम विवेक और बुद्धि से न उठकर बल और बलात्कार से उठता था। उसमें सांड़ की-सी ताक़त और तूफान की-सी हिम्मत थी। काश, वह न्याय और नीति के पथ पर चल पाता तो आदमी बन जाता, दानव न हो पाता। लेकिन गांव की सामाजिक पृष्ठभूमि में जब तक वह अपना निर्वाह, न्याय और नीति को लेकर, करता रहा तब तक वह अन्याय और अनीति का ही शिकार होता रहा; किसी ने उसकी रक्षा नहीं की, किसी ने उसका साथ नहीं दिया, सबने सौ तरह से उसे नुकसान ही पहुंचाया।

अब वह इस समय तीस वर्ष का था। सोलह वर्ष की अवस्था से ही वह छत्ता (सीना) तानकर अखाड़िए पहलवान की तरह चलता था। जहां पैर रखता वहां ज़मीन जवान हो जाती थी। जहां नदी में नहाता, वहां पानी शराब हो जाता था। हवा तो उसका शरीर छूकर अलग होना जानती ही न थी। जब वह खेत में हल चलाता तब खेत की मिट्टी उर्वरा हो जाती थी। उसके हाथ से बोया दाना सोना होकर खेत में चमचमा उठता था। ऐसा लगता था कि जैसे वह बड़ा भाग्य लेकर मां के पेट से पैदा हुआ है और कभी भी तकलीफ न उठाएगा। मगर गांव के लोग यह कब देख सकते थे। वह अकारण ही उससे जलते थे और उसे पानी पी-पीकर कोसते थे। न जाने क्यों लोग उसका बुरा ही चाहते थे। वह था कि किसी को सताता नहीं था और न किसी के भाग्य से बुरा मानता था। दूसरे का धन और अनाज छूना उसके लिए पाप था। बहू-बेटियों को ताकना तो वह जानता ही न था। अपनी सीधी राह चलता और जीवन निर्वाह करना उसका परम ध्येय था।

बीस साल का हुआ ही था कि उसका बाप परलोक सिधार गया। घर का सारा भार उसी के मजबूत कंधों पर आ पड़ा। वह परेशान तो ज़रूर हुआ किंतु एकनिष्ठ होकर उसने जब अपने घर की, खेतपात की देखभाल शुरू की तब उसकी परेशानी काफूर हो गई और वह लायक पूत की तरह सारा काम-धाम संभालने लगा। लोग सोचते थे कि बाप के मरने पर इस चढ़ी जवानी में वह आवारा और बदचलन हो जाएगा और उसकी सारी मस्ती और हंसी-खुशी मिट्टी में मिल जाएगी। मगर लोगों का यह ख़्याल ग़लत निकला।

वह खेत से गेहूं-चना की लांक लढ़ी में लादकर गाता हुआ खरिहान पहुंचता और वहां मांड़ और ओसा कर दानों का ढेर लगा देता और साल भर तक सुख-चैन से दिन काटता था। गाय भैंस पाल रक्खी थीं उसने। खूब सेवा करता था और खुद ही दूध दुहकर उसे सिझाकर भर कटोरा पीता था। क्या मजाल कि कोई नस ढीली पड़ जाए और कंधा झुक जाए या जांघों का मांस लटक जाए!

तभी अभाग्य ने उस पर वार करना शुरू किया। चौबीस वर्ष की आयु में सबसे पहली अशुभ घटना यह घटी कि रातोंरात गांव वालों ने उसकी गेहूं-चने की लहलहाती हुई फसल को जानवरों से इस तरह चरा लिया कि जैसे उसके खेत में एक दाना भी न बोया गया हो। भोर होने पर जब वह खेत पर पहुंचा तब उसकी हालत देखकर दिल बैठ गया। फिर उसके भीतर का ज्वालामुखी अग्नि उगलने लगा और वह इसका बदला लेने के लिए विकल हो उठा। उसने बहुत कोशिश की कि दुष्टों का पता पा ले, किंतु जब न पा सका तो उसके हृदय में पहली बार दूसरों के खेतों का अनाज उखाड़ने की और दूसरों को मिट्टी में मिला लेने की लालसा जगी। तभी से उसकी बुद्धि उसे विपथगामी बनाने लगी। इसी घटना के दूसरे दिन ही तो उसने बीच बाजार में खड़े होकर गला फाड़कर कहा था—"मैं बजरंगबली की कसम खाकर कहता हूं कि मेरी फसल चराने वाले को जिंदा रहने का कोई हक़ नहीं है। जिसने मुझे मिट्टी में मिला दिया है उस पर ही अब मेरे नए निर्वाह के तरीकों की सारी जिम्मेदारी होगी। मैं बदला लूंगा और इसी बदले के लिए अपना जीवन उद्दंड से उद्दंड कर लूंगा, ताकि अब फिर मुझे कोई सता न सके।"

इसे कहे हुए एक साल भी न बीता था और उसकी कसम के शब्द अब भी हवा में गूंज ही रहे थे कि एक-दूसरी घटना घटी जिसने बिंदा को मथकर बेक़ाबू कर डाला और वह निर्दय और कठोर हो गया। न जाने किसने उसके गाय और भैंस को ज़हर खिला दिया और वह मर गईं। दोनों एक साथ एक ही दिन चल बसीं। बेचारा बिंदा उनकी लाशों के पास बैठा उसी तरह रो रहा था जैसे मां के मरने पर लड़का रोए। उसको रोते देखकर ऐसा मालूम होता था कि कोई पहाड़ पानी होकर रो रहा है। घंटों डूबी नाव-सा शोकमग्न बना रहा। अंत में दोनों लाशों के सामने दांत भींचकर किटकिटाकर बोला—"तुम्हारे दूध की शपथ खाकर कहता हूं कि मैं इस जघन्य अपराध का बदला किसी एक रोज ही तमाम गांव के लोगों से लूंगा। मेरे पास पैसा नहीं है कि मैं उसके बल पर सबको चकरघिन्नी खिलाकर ज़ेरबार कर सकूं। किंतु मेरे हाथों में बल तो है और सीने में आग तो है। मैं स्वयं दंड दूंगा और लोगों को मजा चखाऊंगा कि देखो अपने पशुओं की अकाल मृत्यु का क्या आघात होता है दोनों लाशें उठा ले जाने को कहकर पैरों से गांव की मिट्टी को मसलता हुआ अपने घर चला गया।

इसके बाद उसके चेहरे पर कठोरता आ गई और तन और मन दोनों की हंसी ग़ायब हो गई। उसे यह अच्छी तरह महसूस हो गया कि उसके जीने के लिए अब केवल एक ही रास्ता रह गया है और वह यह है कि अपने बल और पौरुष के द्वारा ही अन्याय का बदला अन्याय से ले और किसी एक से नहीं, उन सब लोगों से ले जो ऐसे अन्याय के समर्थक और मौन दर्शक हैं और जो उसे परास्त होते देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होते हैं।

उसने अपने खेत बटाई पर उठा दिए। दोनों बैलों को बेच डाला। बटाई से मिले गल्ले से ही अपना पेट भरने लगा।

ताक़तवर तो था ही। उस अपनी ताक़त को पुलिस के सहयोग से उसने और महत्त्वपूर्ण बनाने की ठान ली। वह थाने का अंग बन गया। उसने दारोगा को मुट्ठी में ले लिया, अपराधियों को मिलाकर—उनसे घूस दिलाकर और

उपन्यास का नाम अशोक त्रिपाठी द्वारा *बैल बाज़ी मार ले गए* प्रस्तावित है।

उल्टी-सीधी तरकीबों से झूठे गवाहों की जमात खड़ी कर ली। दारोगा ने भी उसको प्रोत्साहित किया और उसका साथ पाकर वह मनमानी लूट-खसोट करने पर उतारू हो गया। दारोगा का ख़्याल था कि राज-काज बिना गुंडों की मदद से नहीं चलता। अभी तक जो भी सहयोगी थे वे सब दब्बू और कमजोर किस्म के थे। बिंदा वाक़ई में दारोगा के हाथ की टामीगन-सा बन गया।

गांव के बड़े खेतिहर छोटी जाति वालों से बेगार लेते थे। बिंदा ने बेगार में पकड़े जाने वालों का साथ दिया और उनसे बेगार लेने वालों के ख़िलाफ रपटें कराईं। गवाहों में अपने बस के आदमियों का नाम लिखाया। इसका असर यह हुआ कि खेतिहरों के खेत जुत न पाने लगे और घोर असंतोष फैल गया। इसके जवाब में जब खेतिहरों को गाली गुल्ला दिया या मारा-धमकाया तब उनकी ओर से बिंदा ने नाजायज मजमा कायम कराकर तरह-तरह से उद्यम कराए। उसने इस बात को कुछ लोगों के हृदय में खूब अच्छी तरह भर दिया कि कर्जे की वसूली के डर से वे लोग काम पर न जाएं। अगर उनके ऊपर कोई कर्जा किसी का है तो वह अदालत के ज़रिए वसूल करें। इसका असर इतना पड़ा कि बिंदा के मारे गांव के लोगों का जीवन निर्वाह करना दूभर हो गया। बिंदा जब किसी को सिर पर हाथ धरे परेशान देखता तो उसके पास से, हाथ में पोलहाई लाठी लिए, दो-चार के साथ, इतराता हुआ निकल जाता और बेहद खुश होता कि उसका प्रतिशोध—यज्ञ पूरा हो रहा है।

बेगार के कई चालानी मुकदमे चले। उनमें से कई में वह गवाही भी बोला। कइयों को जुरमाना हुआ और उसकी साध पूरी हुई।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि गांव में दो पार्टियां बन गईं। एक में वे लोग थे जो बिंदा की हरकतों से आजिज आ गए थे। दूसरी में बिंदा था और उसके साथ के वे सब थे जो गांव में दिन-प्रतिदिन क़दम-क़दम पर सताए जाते थे। पहली पार्टी को अपने एका का भरोसा था। दूसरी पार्टी को यानी बिंदा को थाने के सब सिपाहियों का और सबसे ज़्यादा वहां की उस क़लम का भरोसा था जो स्याह को सफ़ेद और सफ़ेद को स्याह करने में सदा से अपराजित रही है और सदा ही अपराजित रहेगी।

अतएव वही हरकतें होने लगीं जो बिंदा के साथ हुई थीं। लोगों के खेत उखड़ने लगे। खलिहानों से गल्ला चोरी जाने लगा। लोगों के जानवर फाटक में बंद जाने लगे और ग़ायब किए जाने लगे। रामनाथ भी बिंदा की विरोधी पार्टी में थे। अतएव उनके साथ भी वही होने लगा और वह भी चिंतित रहने लगे। पैसे वाले थे इसलिए रामनाथ ने दो-चार मुकदमे भी इस्तासा देकर चलाए परंतु महीनों दौड़-धूप के बाद वह भी खारिज हो गए और तब तो उनकी नाक नीची हो गई और वे खिसियाकर बिंदा की जान के पीछे पड़ गए। एकाध बार यह भी सुना गया कि उन्होंने किराए के क़ातिल बुलाकर बिंदा को मरवा डालना चाहा। लेकिन दारोगा साहब की मेहरबानी से वे क़ातिल अपराध होने से पूर्व ही पकड़ लिए गए और हत्याकांड न हो सका। परंतु रामनाथ ने इसे ऐसी ख़ामोशी से संपन्न कराया था कि उनका नाम तक जाहिर न होने पाया। वह परदे के पीछे छिपे रह गए थे।

किराए के क़ातिलों के पकड़े जाने पर बिंदा की रामनाथ से जानी दुश्मनी हो गई। अब तो वह इस पर उतर आया था कि अपने सहयोगियों को लेकर वह रामनाथ के खेत का गल्ला खड़े-खड़े कटा लेता था और उनके जानवरों को जान-बूझकर चुरवा लेता था।

यह बात नहीं है कि रामनाथ ने दारोगा के ख़िलाफ पुलिस कप्तान से शिकायत न की हो। ऐसा उन्होंने स्वयं जाकर किया और जब न जा सके तब पत्र भी भेजे। लेकिन दारोगा इतना खुर्राट था कि पुलिस कप्तान उसका कुछ नहीं कर पाता था। आख़िर बेचारा पुलिस कप्तान करता भी क्या ख़िलाफ जब उस दारोगा से उसे तरह-तरह के लाभ होते रहते थे। वह रामनाथ की सुन लेता था और जांच कराकर सर्किल इंस्पेक्टर की ख़िलाफ रिपोर्ट आने पर रामनाथ को उल्टा डांट पिलाता था। बात यह थी कि सर्किल इंस्पेक्टर खुद ही दारोगा के अनेकों एहसानों से दबा रहता था।

यह सब दो-तीन साल तक बराबर होता रहा। इससे रामनाथ की तथा उनकी पार्टी की ताक़त कमजोर पड़ गई और उन सब की यह दशा हो गई कि वे फिर आफत को चुप-चुप बरदाश्त करने लगे और चुप-चुप बिंदा के विरुद्ध अपमान की साजिशें करने लगे। बिंदा की प्रतिशोध की भावना इतनी तीव्र थी कि वह किसी प्रकार कम न हो सकी और वह इस दशा में पहुंच चुका था कि अब उसे कोई मटियामेट नहीं कर सकता था। वह तो पहले ही मिट चुका था। अब उसके पास कुछ बचा ही क्या था कि उसका अपहरण कर उसे और मेटा जा सके।

इसके बाद फौरन ही एम.एल.ए. के चुनाव की चर्चा छिड़ गई। रामनाथ को दूर की सूझी। वे एम.एल.ए. का चुनाव लड़ने के लिए तत्पर हो गए। उन्होंने गांव-गांव दौड़कर जाति-बिरादरी वालों को समझाया-बुझाया। उनका सहयोग प्राप्त कर पूरी तरह रुपया लगाकर जीतने का स्वप्न देखने लगे। उनके मन में तो यह था ही कि जीतने के बाद वह अपना असर बढ़ाकर तब बिंदा को मिट्टी में मिला देंगे। सिवाय इसके कोई दूसरा उपाय उन्हें नज़र नहीं आया। अतएव उन्होंने अपनी सारी शक्ति इसी ओर केंद्रित कर दी। बिंदा को यह सब मालूम तो हुआ पर उसकी शक्ति सीमित थी और वह इस लायक भी नहीं था कि रामनाथ के चुनाव जीतने के प्रयत्न विफल कर देता। उसका क्षेत्र तो उसका खुद का गांव था। गांव के बाहर बिंदा का कुछ भी प्रभाव न था।

अतएव पैसे के बल पर और बिरादरी के लोगों के सहयोग से रामनाथ चुनाव जीत सके और अब शहर में किराए का मकान लेकर वहां से बिंदा के तथा उसके सहयोगियों के ख़िलाफ़ योजना बनाकर उनको रसातल पहुंचाने का स्वप्न देखने लगे थे।

अपूर्ण उपन्यास का अंश

साक्षात्कार (अगस्त-नवंबर 1986) से साभार

भवदेव पांडेय

7 जुलाई 1925 को गोरखपुर जिले के भस्मा गांव में जन्मे भवदेव पांडेय का 25 फरवरी 2011 को मिरजापुर में निधन हो गया।

के. वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मिरजापुर के प्राध्यापक पांडेय जी संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी के प्रकांड विद्वान थे। आपकी प्रमुख कृतियां हैं—अंधा युग : समीक्षा की अधुनातन दृष्टि, अंधेर नगरी, नई समीक्षा दृष्टि, बंग महिला-नारी मुक्ति का संघर्ष, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचना के नए मानदंड, एवम् निराला, हिंदी कहानी का पहला दशक, हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, भारतेंदु हरिश्चंद्र नए परिदृश्य तथा भारतीय साहित्य के निर्माता बेचन शर्मा 'उग्र'। आप विद्या वाचस्पति (हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग), अज्ञेय सम्मान (उ. प्र. हिंदी संस्थान लखनऊ), साहित्य भूषण सम्मान, विंध्य रत्न सम्मान तथा हिंदी गौरव सम्मान से भी सम्मानित किए गए थे।

आजकल परिवार की श्रद्धांजलि!

काल को चुनौती की परंपरा और केदारनाथ अग्रवाल

बलदेव वंशी

केदारनाथ अग्रवाल एक बड़े और महत्त्वपूर्ण कवि हैं। प्रेम, प्रकृति और काल के तीन मुख्य बिंदुओं पर व्यावहारिक जीवन और यथार्थ को, उसके दंश को सहज बनाने वाले सरल हृदय कवि केदार अग्रवाल जी के लिए काव्य ही जीने की एक शैली बन चुका था। वह कविता को जीते, भोगते और मुक्ति का मार्ग मानते थे। वह आत्म और विराट के अस्तित्व-आयामों को, ऋत-प्रकृत को एक ही अलक्ष्य सत्ता का स्वरूप मानते हैं। यहां नदी, पत्थर, पहाड़, पेड़-पौधे, पक्षी सभी एक ही परिवार के—सगोत्री, जीवंत अस्तित्वधारी प्राणी हैं। यहां प्रकृति के अवयवों का मानवीकरण नहीं है, अपितु समूचा ब्रह्मांड ही जीवंत एक सत्ता का विस्तार-परिवार है। मानवीकरण अलंकार किन्हीं के लिए पाश्चात्य-साहित्य से आया हो सकता है, जो भारतीय जीवन-दर्शन-चिंतन से अनभिज्ञ हैं या आंखें मूंदे हुए हैं, किंतु भारतीयता में आपाद संपृक्त-संतृप्त एवं रोम-रोम नहाए-भीगे अद्वैताभाव कवि के लिए एक ही विराट के स्पंदन-संवेदित स्वरूप का साक्षात्कार है। कवि केदार उस धर्म-अध्यात्म-वृत्त और चक्र को कहीं भी स्वीकार करते नहीं दीखते, जो भारतीय मानस की निर्मिति में अपना सूक्ष्म-व्यापक-गहन प्रभाव बनाए हुए है तथा लक्षित-अलक्षित, जाने-अनजाने भारतीय चेतना-मंडल का हिस्सा बनकर अनुगूंजित है, प्रतिध्वनित है। फिर भी उनके गहरे एहसासों में, कवि की अनुभूतियों में बुद्ध, महावीर के धम्म-आचार-दर्शन के छोर, कोर, किनारे चमकते हुए दिखाई देते हैं। अन्यथा इस जगत को ब्रह्मकृत मानने वालों की शब्दावली में, तथा कबीर, रैदास आदि संतों की वाणी में मुखर अद्वैत-दर्शन के कई रूपाकार साफ देखे जा सकते हैं। कवि केदार स्पष्टतः घोषित रूप में स्वयं को मार्क्सवादी स्वीकार करते हैं और अपनी कविताओं को प्रगतिशील विचारों की वाहक स्वीकार करते हैं। अपने आरंभिक काल की भाववादी, भावुक मन की रचनाओं से पृथकवाद में मार्क्सवाद को स्वीकार करते हैं।

> *अपनी सरल-तरल भाषा और जन-मुहावरे की सहज बोधगम्यता में रचना करने वाला कवि जीवनभर न स्वयं हारा और न अपने लोगों को, देशवासी निर्धन-उपेक्षित-दलित जनों को हारते हुए देखना चाहता है। वह हर समय की क्रूरता को, शोषण एवं अन्याय को चुनौती देता, सामना करता और अभावों में भी गर्व से सिर ऊंचा किए रहता है। किसी से न हारता, न समझौता करता है।*

अपने कविता-संग्रह *अपूर्वा* (यह संग्रह कवि ने—डा. रामविलास शर्मा को समर्पित किया है) की भूमिका में लिखते हैं, ...''वकील होते-होते तक मैं मार्क्सवाद के जीवन-दर्शन से अपनी मानसिकता बनाने लगा। मुझे वर्ग-विभाजित समाज की जीवन-पद्धति अरुचिकर लगने लगी। मेरे भाववादी संस्कार ढीले पड़ने लगे और श्रम और समाज के सिद्धांत प्रिय लगने लगे। पहले की भाववादी आस्था टूटने लगी।'' इतना मानते रहने के बावजूद उनकी दृष्टि, चेतना (और अवचेतन मन पर पड़े हुए परिवेशीय प्रभावों के रहते) जो संस्कार उनकी *अपूर्वा* की कविताओं में देखने को मिलते हैं, उनको कवि स्वयं ही प्रचलित प्रकार की प्रगतिशीलता से अलग और हटे हुए मानता है। कवि केदार का स्पष्ट दो-टूक कथन है कि—''इन कविताओं का स्वर और स्वभाव ऐसा है कि प्रचलित मान्यता के बल पर उन्हें प्रगतिशील रचना होने का सौभाग्य न प्राप्त हो। लोग तो प्रगतिशील कविता में केवल राजनीति की चर्चा मात्र ही चाहते हैं। वे कविताएं जो प्रेम से, सुंदर दृश्यों से, भू-चित्रों से, यथावत चल रहे व्यवहारों से और इसी तरह की अनेकरूपताओं से विरचित होती हैं, प्रगतिशील नहीं मानी जातीं। मेरी प्रगतिशीलता में इन तथाकथित वर्जित विषयों का बहिष्कार नहीं है। वह इन विषयों के संदर्भ में उपजी हुई प्रगतिशीलता है। मेरा विवेक कहता रहा है कि समग्र जीवन में पैठो—भीतर-बाहर का निरीक्षण-परीक्षण करो—वैज्ञानिक दृष्टि से सत-असत को समझो और आदमी को ऐसा कृतित्व दो जो उसे नेक आदमी बनाए—उसको नकली चेहरा दिखाए—उसे दूसरों से अलग कर न गैर बनाए, न देश से बाहर की बौद्धिक गुहा में ले जाए—न स्वयं से अजनबी बनाए—न झूठे मामलों में फंसाए—न बैठे-ठाले, दायित्वहीन व्यक्ति की मानसिकता के तनाव का शिकार बनाए—और हो सके तो उसके भीतर-बाहर को जीवंत, जागरूक और ज्योतित करे।'' (*अपूर्वा* की भूमिका से)

केदार ग्राम चेतना के कवि माने जाते हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि केदार के कवि की ग्राम चेतना लोक चेतना है। वह गांव के बाहरी परिदृश्य तथा उसके परिवेश के बाह्य आयामों तक रुक नहीं जाते, बल्कि उसकी (गांव) चेतना (चिति-अंतर मन) तक को, उसकी पारिवारिक ताब एवं रागात्मकता तक पहुंचकर, उसे आत्मसात करके रचना करते हैं। इस प्रकार लोक के आलोक (केदारनाथ अग्रवाल) को रचते हैं। यह रचाव पुनः गांव की अंतश्चेतना का ही रचाव है। बल्कि गांव की प्रकृति एवं ऋतु का ही सृजन है, जो सुनने-पढ़ने वालों को आनंद के तल पर ऊपर उठाकर (मन-बुद्धि से ऊपर एवं परे) आलोक और अलौकिक सुख से पुरस्कृत करता है। दूसरे शब्दों में केदार की सच्ची प्रवृत्ति-विषयक, प्रकृति-आधृत कविताओं को, जो अंतश्चेतना को संस्पर्श करती हैं, उन्हें आध्यात्म चेतना-संस्पर्शी कविताएं कहा जाए, तो भी अतियुक्ति न होगी। अध्यात्म को धार्मिकता मान लेने की नासमझी न की जाए बल्कि आधि-भौतिक अर्थों में, आधि-आत्मिक अर्थों के यथार्थ संदर्भों में देखा जाए, जहां भौतिक और आत्मिक के सम्मिलित सरोकार रूपाकार ग्रहण करते हैं। इस अवधारणा को संतों के निर्गुण-निराकार, धर्म-प्रपंचों के सभी प्रकार के क्रिया-कलापों-विचारों-झुकावों से रहित शुद्ध मानवीय आत्मीय स्पंदनशीलता के पर्याय-रूप में लें। दुख की बात यह है कि पश्चिम के लिए भी अध्यात्म एक अनूठी-अजनबी अवधारणा तो है ही, भारतीयों ने भी इस अवधारणा की विशेषता अद्वितीयता को बिना समझे-जाने बट्टे खाते में डाल रखा है। ऐसे ही प्रकृत और प्रकृति के आगे हम लोगों ने ऋत को भी फेंक या छोड़ रखा है।

केदार प्रकृत और प्रकृत से भी आगे ऋत की चेतना से संपन्न कवि हैं—*जंगल बोलता है/दिन के विजय-पर्व के बाद/अंतराम (विघ्न-बाधा) से निःसृत/अधिकार के/आदिम बोल/व्याकुल है भूगोल-खगोल!* (*अपूर्वा-91*) जंगल अंधकार के आदिम बोल बोलता है। ऐसे ही, जैसे भूगोल (धरती) और खगोल (आकाश) अपनी आदिमता में सतत व्याकुल हैं। जैसे महासागर बिना किसी प्रकट कारण के दिन-रात स्वतः ही उद्वेलित रहता है। ये ऋत के संदर्भ हैं। प्रकृत जहां जुड़ा हुआ है, किन्हीं और गहरे और बड़े, अटल, अदृश्य नियमों से। यह रहस्य का परिप्रेक्ष्य भी नहीं, न रहस्यवादिता का। यों भी रहस्य अपने-आप में कुछ भी नहीं है। जो ज्ञेय नहीं, या ज्ञेय की सीमा में नहीं आया, उसे रहस्य कह देते हैं। वही, जब कुछ अंतराल के बाद जब ज्ञेय हो जाता है तब हमारे ज्ञान क्षेत्र का हिस्सा बन जाता है, रहस्य नहीं रहता। एक छोटी-सी कविता है, इसी संग्रह में,

(साथ के पृष्ठ 90 पर)—*मां से/पूछ रहा है बेटा :/ मैं क्या? तू क्या मम्मी?/मम्मी कहती है बेटे से/ मैं हूं तेरा प्रश्न/तू है मेरा उत्तर!*

यहां जिज्ञासा की अज्ञयता, ज्ञेयता में बदलते हुए, उत्तर की सापेक्षता में समाधान बन जाती है। अतः केदार समग्रता के कवि हैं। बाहरी परिदृश्य के पीछे की तात्विक सूत्रबद्धता के सहारे चलें, तो पाएंगे कि कवि भारतीय जीवन के, परिवेश के समूचे कार्य-कलाप को, पारिवारिक या परिवेशिक रागात्मकता में देखता और रचता है। यहां सब कुछ चेतन है, जड़ कुछ भी नहीं—*बिस्तर लपेटकर चल दिया अंधेरा/सूर्य की आहट पाकर/मायके से आई/दूर देश की बेटी नदी/शहर के बाहर / शिलाओं की ससुराल में पड़ी लहंगा/ लहराया/ लहरें लेती है।*

यहां प्यार के मुक्त पखेरू पंख फैलाए, चक्कर लगा रहे हैं, ये उसी के भाई भतीजे हैं, उसी के पास आए हैं। यहीं तट पर लगी, उल्लास का उत्सव देखती, उत्सुक नाव है।...*व्याप्त है/विराट की अभिव्यक्ति/नदी के प्राकृत नेह और नाते से।*

उक्त कविता में ऋत-प्रकृत के तत्त्वों-अवयवों के मायके-ससुराल, स्नेह और नाते आदि के एक विराट अस्तित्व की अभिव्यक्ति कवि ने हमें दिखा दी है। वह स्वयं तो उसकी व्याप्ति पर मुग्ध है ही, हमें भी अपने अनुभूत में साझी बना रहा है। यहां आप स्वयं ही बताएं कहां का मार्क्सवाद है। क्या भारतीय जीवन की पारिवारिकता और आत्मीय जीवंत रागात्मकता की 'विराट की अभिव्यक्ति'—(किसने, क्यों की यह अभिव्यक्ति? वह, जो विराट है! प्रकृति-सृष्टि का रचयिता?) भारतीय वैष्णव दर्शन के अनुसार ब्रह्मा ने यह सृष्टि रची। कृत-प्रकृत प्रकृत्ति-संस्कृति-विकृति—क्या इसके अतिरिक्त कोई और अर्थ-चक्र या क्रम भी सामने आता है? आस्तिक दर्शन के अनुसार एक विराट अस्तित्व की अभिव्यक्ति! भले ही कवि ने अनजाने ही इस परिसर को छू लिया है, किंतु अचेतन मन की रचना तो हुई कविता में!

केदार जी का कवि प्रेम और सौंदर्य का बड़ा मुग्धकारी कवि है। अपनी आरंभिक काल की कविताओं में वह बड़ी रोमांटिक कविताएं रचता रहा। बाद में दांपत्य-प्रेम की बेजोड़ कविताएं दीं। एक पूरा संग्रह ही रच डाला अलग से— *हे मेरी तुम!* (पत्नी को संबोधित कविताओं का संकलन, मई 1981 ईस्वी में प्रकाशित) 70 वर्ष की आयु में (कवि का जन्म 1 अप्रैल 1911 तथा मृत्यु 22 जून 2000) काल को ठेंगा दिखाता प्रेम-वृद्धावस्था का दांपत्य-प्रेम—*हे मेरी तुम!/ फूल तुम्हारे लिए खिला है—/लाल-लाल पंखुड़ियां खोले/ग़ज़ब गुलाब/इसे देखकर चूमो; चूम-चूमकर झूमो/झूम-झूमकर नाचो-गाओ/कुटिल काल देखे/मुंह बाए/मुग्ध-मगन हो जाए/नेह-नीर हो बरसे-हरसे/जड़ हो चेतन/चेतन हो/जीवन की धारा/धारा काटे निठुर कगारा/मानव को मानव हो प्यारा/जग हो फूल गुलाब हमारा!*

(*अपूर्वा*, पृ. 18) केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी पत्नी को संबोधित करके लिखी कविताएं एक संग्रह में संग्रहित की हैं और इसे नाम दिया है—*हे मेरी तुम। तुम* इन कविताओं और नामकरण के संबंध में वह कहते हैं—"इस संग्रह का नाम मैंने *हे मेरी तुम* रखा है। मैं अपनी पत्नी को 'तुम' कहकर ही प्यार से संबोधित करता हूं। इसीलिए मेरी पत्नी यानी 'तुम' इन कविताओं में संबोधित होकर 'हे मेरी तुम' हो गई है। भले ही कुछ लोगों को यह नाम विचित्र लगे, मुझे तो बहुत ही सहज और सरल लगता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे मैं अनंत काल तक अपनी पत्नी को पुकारता जीता रहूंगा और अपना मन सस्नेह खोलता रहूंगा। हम दोनों के न रहने पर भी हम दोनों एक-दूसरे से जीते जैसे बातें करते रहेंगे और हमारे घर के ये कुटुंबी पौधे फूल लाते रहेंगे और हमारी आज जैसी याद सबको दिलाते रहेंगे।" (भूमिका) यह जन्म-जन्मांतर की अवधारणा किस देश-समाज-दर्शन से आई है?

मानव द्वारा की गई निर्मम हत्यारी हिंसा का आतंकी प्रभाव कितना व्यापक और घातक प्रभाव छोड़ जाता है समूचे परिवेश पर कि जिन्हें हम जड़ तत्त्व मानते हैं—वे पत्थर तक उदास और भयभीत हो जाते हैं। मानव और पेड़-पौधे तो सहमते-ठिठकते ही हैं। धूप तक कुम्हला कर भयभीत हो पीली पड़ गई लगती है। किंतु मानवीय संवेदना के प्रति अति सजग कवि को लगता है कि जिस चिड़िया को चिड़ीमार शिकारी ने मार दिया है, वह मरी नहीं, कवि के मन में वह जीवित है और सुबक-सुबक रोती हुई चूं-चूं करती अपनी वेदना प्रकट करती रहती है। पूरी कविता इस प्रकार है—*चिड़ीमार ने चिड़िया मारी/नन्हीं-मुन्नी तड़प गई/प्यारी बेचारी।/सहम गई पौधों की सेना/पाहन-पाथर हुए उदास/हवा हाय कर /ठिठकी ठहरी/पीली पड़ी धूप की देही/अब भी वह*

चिड़िया ज़िंदा है/मेरे भीतर/नीड़ बनाए मेरे दिल में/सुबुक-सुबुक कर/चूं-चूं करती चिड़ीमार से डरी-डरी है।

काल-मृत्यु की क्रूरता और अचूकता के सामने अपने दांपत्य के वेग की प्रबलता और सबलता को अजय और सतत बनाए रखने का विश्वास व्यक्त करता हुआ कवि वस्तुतः भारतीय आत्म-अध्यात्म की जन्म-जन्मांतर की निरंतरता को ही सिद्ध-पुष्ट करता है। यहां काल की प्रबलता, स्नेह-सबलता के सामने निरस्त्र हो जाती है—*काल कलूटा बड़ा क्रूर है/उसका चाकू और क्रूर है/उससे ज्यादा/लेकिन अपना प्रेम प्रबल है/हम जीतेंगे काल क्रूर को/उसका चाकू हम तोड़ेंगे/और जियेंगे सुख-दुख दोनों साथ पियेंगे/काल क्रूर से नहीं डरेंगे...*

इतना ही नहीं, जिस भौतिक-स्वार्थी—सोच-शैली के वशीभूत पाश्चात्य समाज में प्रतिदिन दांपत्य संबंध बनते-टूटते हैं, वहां काल को मात देने के ही नहीं काल-रूपी वृक्ष की झूमी-झूली डाल पर ही झूला डाले भारतीय दांपत्य झूलता है, यम का बसूला (कुलहाड़ा) भी व्यर्थ होता है—*झूमी-झूली डाल—काल के खड़े पेड़ पर/डाले झूला/ऊपर बाग—हर्ष का फूला/नीचे/यम का पड़ा बसूला।*

यम के बसूले के भय (मृत्यु-भय) को व्यर्थ कर, ऊपर (आनंद लोक की अमर लोक) की हर्षभरी स्फुर्णों में मग्न है यह दांपत्य! ऐसा दांपत्य किस देश-समाज और मूल्यों में उपलब्ध होता है? यह प्रेम की शाश्वत आश्वस्ति कवि के बड़े और गहन संस्कारों और सरोकारों की देन नहीं है क्या?

कवि समूची सृष्टि को, उसकी प्रत्येक वस्तु को अटूट प्रेम करता है। ऐसा मानवतावादी अपना स्नेह सब पर बराबर लुटाता है, क्योंकि सबको एक विराट अस्तित्व की अभिव्यक्ति मानता है। भारत के जीवन-परिवेश में घुले हुए विचार प्रत्येक सचेत भारतीय के संस्कारों का हिस्सा अनजाने ही बन जाते हैं, फिर केदारनाथ अग्रवाल जैसे अत्यंत संवेदनशील कवि का मन कैसे अछूता रह सकता है। अतः प्रकट सचेत मन से तो उन्होंने मंदिर की पत्थर की मूर्तियों को नकारा, क्योंकि वे समाज में फैली हिंसा-हत्या-निर्ममता को रोकने में कहीं भी सक्रिय सहायक नहीं बल्कि स्वर्ण के सिंहासन पर वैभव की विशाल छत्र-छाया में विराज रही हैं। एक गर्भवती ईश्वर से वरदान मांग रही है कि उसकी कोख की संतान केवल पाषाण हो। एक अत्यंत तीख-तिक्त व्यंग्य प्रहार है—*वैभव की विशाल छत्र-छाया में/स्वर्ण सिंहासन पर/रखी देख मंदिर में पत्थर की मूर्तियां क्षुब्ध हो गर्भवती/ईश्वर से मांगती है वरदान/केवल पाषाण हो, कोख की मेरी संतान* (*जमुन जल तुम*, पृ. 22)

पत्थर तक में न्यूनतम चेतना की स्थिति मानकर, मानवीय संवेदनशीलता का शिरोधार्य करने वाले भारतीय जब पत्थर से भी बदतर निर्ममता का व्यवहार करें तो फिर पथरीली मूर्तियों में सजे बैठे भगवान किस काम के। कवि तो अपने समाज का सर्वाधिक संवेदनशील, न्यायप्रिय, समानता का पक्षधर प्राणी होने में प्रत्येक स्पंदन और धड़कन के लिए जीता-मरता है। केदार का कवि इन अर्थों में बहुत बड़ा और बहुत महत्त्वपूर्ण कवि है, जो सरलता में कुछ भी छुपाता नहीं। वह अपने इन्हीं प्रकृत गुणों के कारण कुछ धाकड़ लोगों की नाराज़गी सहने को भी सहर्ष तैयार होता है। मूल्य चुकाता है और प्रथम श्रेणी का कवि होकर भी दूसरी-तीसरी श्रेणी में डाल दिया जाता है। वह स्पष्टतः उन लोगों की नासमझी के कारण नाम लेता है और उपेक्षा झेलता है। जिस विचारधारा को वह मानवीय पक्ष में स्वीकार कर लड़ाई में उतरता है, उसी विचारधारा के लोग ऐसे निर्मम हो जाएं कि पत्थर की आंख भी शरमा जाए। जिन हत्यारी, निर्मम, संवेदनहीन शक्तियों से लड़ने के लिए कवि ने प्रगतिशीलता, मार्क्सवाद को स्वीकार किया उन्हीं के द्वारा यह बड़ा कवि बड़ी उपेक्षा और मानसिक मार सहता है! उपेक्षा की मार सबसे बड़ी और बुरी होती है। जो कवि काल से भी नहीं डरता, उसे खुली चुनौती देता है, उस कवि को अपने ही वर्ग-विचार से, लोगों से दैहिक हत्या, हिंसा से भी बदतर मानसिक-आत्मिक उत्पीड़न सहना पड़े तब कैसी विडंबनापूर्ण पीड़ा होती है, यह तो कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है। वैसे परंपरा तो यही रही है कि काल को भी चुनौती देने वाले, अमर कवियों को भी सामाजिक उपेक्षा, उत्पीड़न सहना पड़ा या फिर राजशाही यातनाएं, सत्ता-व्यवस्था का रोष झेलना पड़ा है। कबीर काल को चुनौती देते हुए कहते हैं—*हम न मरैं मरिहै संसारा, हम को मिला जियावन हारा,* तो निराला कहते हैं— *योग्य जन जीता है, पश्चिम की उक्ति नहीं, गीता है, गीता है।*

शमशेर बहादुर सिंह कहते हैं—*काल तुझसे होड़ है मेरी।* इसी क्रम में कवि गिरिजा कुमार माथुर भी काल को ललकारते हैं—*मैं काल के हूं सामने* —क्या कर लेगा काल? क्योंकि इन सब कवियों के पास जन-समाज-लोक का अक्षय प्रेम और अपनत्व भाव है, जो काल के पास नहीं है। ऐसे ही कवियों की कड़ी में केदारनाथ अग्रवाल भी आते हैं, जो समग्रता में सोचते, रचते और जीते हैं। उनका संबल जन का विश्वास, प्रेम और आस्था होती है, किन्हीं और किसी दौर की निर्ममता, उपेक्षा उन्हें पीड़ा तो पहुंचा सकती है छोटा नहीं बना सकती।

केदारनाथ अग्रवाल के आरंभिक काव्य के प्रेम-सौंदर्य और प्रकृति-लोक के भावों, रंगों को देखें तथा अंतिम दौर के रंगों-भावों को लें, तो यह कवि का वास्तविक अंतःकरण बनता है। स्वाभाविक। मौलिक। चटख़। मध्य में राजनीतिक कविताओं वाला दौर—प्रगतिशील कविताओं का दौर अर्जित, युगबोध तथा सामयिक-सामाजिक आग्रहों वश निभाया गया दौर है। कवि का विस्फोटक-प्रवाही-प्रबल मानसिकता तो प्रथम और अंतिम की कविताओं में देखने को मिलती है। मनुष्य की शक्ति में गहरा-अटूट विश्वास कवि के स्वर को धार दिए हुए है। वह आद्यन्त मनुष्य को जागृत करने, उठाने, संघर्ष करने की चेतना से सज्जित है। अपने जन्म स्थान बांदा (उत्तर प्रदेश), उसे सींचने वाली केन नदी तथा ग़रीबी—ठेठ देहाती लोगों के स्वभावों, रूपों-स्वरूपों से आत्मिक बंधनों में बंधा बड़ा स्नेह रखता है। लोगों के ठस्स सोच-समझ एवं मूर्खता पर खीझता भी है। अपनी सरल-तरल भाषा और जन-मुहावरे की सहज बोधगम्यता में रचना करने वाला कवि जीवनभर न स्वयं हारा और न अपने लोगों को, देशवासी निर्धन-उपेक्षित-दलित जनों को हारते हुए देखना चाहता है। वह हर समय की क्रूरता को, शोषण एवं अन्याय को चुनौती देता, सामना करता और अभावों में भी गर्व से सिर ऊंचा किए रहता है। किसी से न हारता, न समझौता करता है।

केदार जी की एक कविता को मैंने सन् 1984 में अपने संपादन में *बच्चे की वापसी* में संकलन की प्रथम कविता के रूप में लिया! अट्ठासी कवियों के इस संग्रह में बच्चा विषय पर प्रथम संकलन में यह कविता—'काल और बच्चा' इस प्रकार है—*बच्चे ने कंकड़ से/ताल को कंपा दिया/ताल को नहीं/अनंत काल को कंपा दिया!*

इस छोटी कविता में बच्चा एक कंकड़ से अनंत काल को कंपा देने की क्षमताएं रखता है, तो कवि केदारनाथ अग्रवाल की समूची कविताई अनंत काल की कितनी आवर्त्तनों को कंपाने की सामर्थ्य रखती है, कहने की बात नहीं। केदार काल को चुनौती देने वाली कवि-परंपरा के अत्यधिक विश्वसनीय संवेदनशील और सृजनात्म-उत्स से जुड़े, लोक और आलोक के आस्थाशील कवि हैं। ❑

संपर्क : बी-684, सैक्टर-49, सैनिक कालोनी, फरीदाबाद-121001

जीवन जीता हारी मौत

अशोक त्रिपाठी

केदारनाथ अग्रवाल को बांदा के लोग प्रेम और आदर के साथ 'बाबूजी' कहते थे। 'बाबूजी' कहते हुए यदि कहीं भी बांदा में कोई चर्चा हो तो समझिए की केदारनाथ अग्रवाल की ही चर्चा हो रही है। सामने भी और पीठ पीछे भी कोई उन्हें उनके नाम से नहीं याद करता था—नाम लेता भी था तो या तो 'केदार बाबू' कहता था या फिर 'बाबू' केदारनाथ अग्रवाल। बांदा के लोगों का दिया हुआ प्यार का नाम 'बाबू' उनके नाम के आगे या नाम के पीछे इस तरह उनके नाम का हिस्सा बन गया है जैसे कि कर्ण के साथ सूर्य का दिया हुआ कवच उसके शरीर का हिस्सा बन गया था।

केदार बाबू से मेरा पहला संपर्क किस तिथि और महीने में हुआ यह तो याद नहीं पर इतना जरूर याद है कि सन् 1977 था, महीना शायद—सितंबर या अक्टूबर रहा होगा। मैं बांदा के जवाहरलाल नेहरू पोस्ट ग्रेजुएट कालेज में एक अध्यापक के अवकाश कर जाने के कारण रिक्त हुए पद के लिए अभ्यर्थी था। साक्षात्कार के लिए बांदा जाते समय दूधनाथ सिंह ने कहा था कि 'तुम बांदा जा रहे हो तो केदार बाबू से ज़रूर मिलना।' बांदा पहुंचा तो पता चला कि वे शाम को नियमित बांदा रेलवे स्टेशन के सामने नीलम मेडिकल स्टोर पर बैठते हैं। मैं वहां गया। वह मेडिकल स्टोर के अंदर एक स्टूल पर बैठे हुए थे—सफेद कुर्ता-पायजामा पहने हुए। गर्दन तनी हुई, निगाह सौ गज़ दूर वाले अंदाज में थी। मेडिकल स्टोर ज़मीन से दो-ढाई फुट की कुर्सी पर था। स्टोर के सामने बांदा कालेज के कुछ प्राध्यापक, एक-दो वकील, पत्रकार आदि खड़े थे। कुछ लोग सामने खड़ी स्कूटर की सीट पर आसन जमाए हुए थे। देश और दुनिया की राजनीति आदि पर चर्चा चल रही थी। मौका देखकर दूधनाथ जी के हवाले से अपना परिचय दिया और आने का सबब बताया। मुझे याद नहीं है कि इस पर उन्होंने क्या कहा या क्या प्रतिक्रिया दी। यही मेरी पहली और अति संक्षिप्त मुलाकात थी।

> *कुछ नासमझ लोग नकारने पर तुले हैं। कोई कुछ कहे—करे मुझे ढकेलकर गिरा नहीं सकता। कविता मुझे सिर पर चढ़ाए-चढ़ाए, उठाए-उठाए लोकचेतना में ले गई है। मैं खूब खिलखिला रहा हूं। नकारने वालों को ठेंगा दिखा रहा हूं।*
>
> *—केदारनाथ अग्रवाल*

दूसरे दिन साक्षात्कार हुआ। विशेषज्ञ के रूप में सागर विश्वविद्यालय से डा. कांतिकुमार जैन आए थे (यह बात साक्षात्कार के बाद पता चली)। 9 दिसंबर 1977 को मैंने कार्यभार ग्रहण किया। इसके बाद केदार जी से मिलने का सिलसिला चल निकला। शाम को कभी उनके आवास पर कभी नीलम मेडिकल स्टोर पर लगभग रोज़ ही उनका सान्निध्य पाता रहा। अक्सर शाम को कहीं न कहीं कोई कवि-गोष्ठी होती। बाबू जी भी कभी-कभी विशेष आग्रह पर शिरकत करते। यह सिलसिला 19 जून 1980 तक चला। केदारजी की कविताओं को सुनने और पढ़ने का अवसर इसी दौरान मिला। इसके पूर्व उनकी कविताओं से मेरा परिचय न के बराबर था।

केदारजी की कविताओं पर मेरा पहला लेख प्रतिक्रियात्मक था। 1979 में प्रकाशित केदारजी के संग्रह *पंख और पतवार* पर राजेश जोशी की एक समीक्षा *पूर्वग्रह* में प्रकाशित हुई। समीक्षा पढ़ी और कुछेक बिंदुओं पर मैं उनसे सहमत नहीं हो सका। उन्हीं बिंदुओं पर अपनी असहमति ज़ाहिर करते हुए एक तरह से मैंने एक प्रति-समीक्षा लिखी और *पूर्वग्रह* को भेज दी। उम्मीद के विपरीत वह *पूर्वग्रह* के अंक-37 में 'जहां दूसरे झरे हैं' शीर्षक से प्रकाशित हुई।

लगभग ढाई वर्षों तक मैं बांदा में रहा और केदारजी से मिलता रहा। एक दो साक्षात्कार भी लिए और प्रकाशित हुए। पर मुझे कभी यह एहसास नहीं हुआ कि मैं हिंदी के बीसवीं सदी के निरालाजी के बाद सबसे बड़े कवि से मिल रहा हूं। कभी भी अपने व्यवहार से, बातचीत से, हमें अपने अंदर कमतरी का भान तक उन्होंने नहीं होने दिया, बल्कि उसके बरक्स 'हम भी कुछ हैं' का आत्मविश्वास ही जगाया। पढ़ा-लिखा हो या बे-पढ़ा-लिखा हो, सबको वह समान स्नेह और आदर देते थे। किसी को भी वह अपने 'छोटेपन' का एहसास नहीं होने देते थे। उम्र का, बुजुर्गियत का, विद्वता का, कविताई का आभिजात्य का कोई अहं उनमें लेश मात्र भी नहीं था। क्योंकि उन्होंने अपना बड़प्पन उतार कर धर दिया था—वहां/उस मुरदा अजायबघर में/जहां/मरणोपरांत धर दी जाती है/ बड़े-बड़ों के बड़प्पन की उतारनें। (*केदारनाथ अग्रवाल प्रतिनिधि कविताएं*, पृ. 110, संपादक : अशोक त्रिपाठी)

केदारजी का सरल, सहज और तरल व्यक्तित्व शीशे की भांति पारदर्शी था। अंदर-बाहर सब एक जैसा। कोई बनावटीपन नहीं—दीखावा नहीं। पटरे की जांघिया और बुश्शर्ट में हैं तो उसी वेश-भूषा में बिना किसी कुंठा के घंटों बतियाते थे। बतियाने वाला कोई भी हो—नामी-गिरामी वकील, डिग्री कालेज का प्रोफेसर, बांदा के नौजवान, बाहर से आया हुआ कोई छोटा-बड़ा साहित्यकार, औरतें-बच्चे, रिक्शेवाला, घर के नौकर, मुंशीजी, मजदूर, किसान या मुवक्किल। उनका व्यक्तित्व एक दर्पण की तरह था जिसमें सामने वाला अपनी प्रतिबिंबित छवि भी देख सकता था।

खान-पान, रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा बोली-बानी आदि के बारे में उनकी कोई रूढ़ शैली नहीं थी। घर में अमूमन चेकदार लुंगी-बनियाइन या हाफ बुश्शर्ट या पटरेदार जांघिया के साथ ही उन्हें देखता था। उनके चेहरे की मासूमियत इतनी खूबसूरत लगती थी जैसे वह ताज़ा धुला गुलाब का फूल हो या निहायत खूबसूरत बच्चा। कुदरत ने केदारजी को बला की खूबसूरती दी थी। इसका उन्हें गुमान भी था। अपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के दिनों को याद करते समय कुछ प्रसंग विशेष में वह अक्सर कहते भी थे—'खूबसूरत तो मैं था ही'। बनिया तो वह किसी भी कोने से नहीं लगते थे—सिवाय किफ़ायत के और एक आदत के कि प्रतिदिन अपने मुंशी फ़ैयाजुद्दीन द्वारा लाए हुए सौदा-सुलुफों के दामों को पूरे ब्योरे के साथ तुरंत अपनी डायरी में नोट करते थे—ठेठ बही शैली में। किफ़ायतसारी शायद उनकी आर्थिक मजबूरी थी। अपनी आर्थिक तंगी की चर्चा अपने मित्र रामविलासजी से उन्होंने कई बार की भी है। *मित्र संवाद* के पत्र इसके साक्षी हैं। आर्थिक तंगी के बावजूद मित्रों ने जब भी उनसे अपेक्षा की है उन्होंने कभी निराश नहीं किया। निरालाजी के लिए

रामविलासजी के पत्र, और अपने लिए नागार्जुन और शमशेरजी आदि के पत्र इसके गवाह हैं। लापरवाही केदारजी में बिल्कुल नहीं थी। जीवन में संयम तथा समय की पाबंदी और पकड़ के प्रति वे हमेशा संजीदा रहे हैं। वह जो किताब या पत्रिका जहां से निकालते थे, उसे पढ़ने के बाद फिर वहीं रखते थे। उन्हें पता रहता था—कौन-सी पुस्तक या पत्रिका कहां किस आलमारी के किस खाने में मिलेगी।

बांदा स्थित केदारनाथ अग्रवाल का निवास स्थान

प्रातःकाल जल्दी उठना उनकी प्रिय आदत थी। नौकर द्वारा साफ किए गए घर की सफाई पर उन्हें यकीन नहीं था। प्रातःकाल उठकर पूरे घर की धूल झाड़ना एक तरह से उनका व्यसन बन गया था। इसे ही वे अपना प्रातःकालीन व्यायाम भी मानते थे। घर की एक-एक वस्तु पर उनके अभी-अभी छुए हाथ का स्पर्श महसूस होता था। हो भी क्यों न—केदारजी रोज़ उन्हें सबेरे उठकर प्यार से उसी तरह सहलाते-दुलारते भी तो थे, जैसे कोई मां रोज़ सबेरे अपने बच्चों को नहला-धुलाकर, तेल-फुलेल लगाकर, पाटी संवारकर उन्हें दिन-भर के लिए तैयार कर देती है और फिर अपने दैनिक कामों में निश्चिंत होकर लग जाती है। उनके बैठक खाननुमा अध्ययन कक्ष की किताबें सचमुच जीवंत बच्चे का एहसास जगाती थीं, शोकेस में रखी शो-पीस-सी किसी गुड़िया का नहीं। प्रत्येक किताब या पत्रिका उनके द्वारा पूरी पढ़ी गई होती थी। उनकी किताबें दूसरों पर अपने अध्ययनशील होने का रोब ज़माने का साधन नहीं थीं। वह पुस्तकें-पत्रिकाएं केवल पढ़ते भर नहीं थे—बाकायदा पेंसिल से हाशिए पर अपनी टिप्पणी भी लिखते थे। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता था कि लेखक नया है या पुराना, नामी-गिरामी है या गुमनाम।

केदारजी का आंगन काफी बड़ा था। आंगन के उत्तरी हिस्से में जहां नल था उन्होंने गुलाब, करोटन आदि अनेक पौधे लगा रखे थे। इन्हें वह रोज़ खुद पानी देते थे—इन पौधों की एक-एक पत्तियां पानी के हजारे से खुद धोते थे। केदारजी को गुलाब के फूल बेहद प्रिय थे। गुलाब उनकी कविताओं में कई बार आया भी है—*जल रहा है/जवान होकर गुलाब/खोलकर होंठ/जैसे आग/गा रही है फाग।* (*केदारनाथ अग्रवाल : प्रतिनिधि कविताएं*, पृ. 109)

केदारजी का घर खपरैलों वाला है और दीवालें मिट्टी की लेकिन जब तक केदारजी जिंदा रहे उनका पूरा घर तुरंत की हुई सफाई का एहसास देता था—पूर्णतः धूल रहित रहता था। धूल-धक्कड़ और गंदगी केदारजी को बिल्कुल पसंद नहीं थी—गंदगी चाहे घर की हो, चाहे शरीर की, चाहे विचारों की, चाहे चरित्र की। न तो उनके चेहरे पर कभी दाढ़ी देखी, न कपड़ों में धूमिलपन, न कभी विचारों में उलझाव या गंदलापन और न कभी चरित्र का दोगलापन। हर चीज़ का शीन काफ़ दुरूस्त। रांची से प्रकाशित *प्रभात खबर* के दीपावली 2010 के विशेषांक में वीरेन डंगवाल ने केदारजी से एक मुलाकात का जिक्र करते हुए लिखा है—'दीवार से लगी धुंधले शीशों वाली कुछ आलमारियां थीं जिनमें कानून की मोटी जिल्दें सजी थीं। धूल शायद वहां पर भी थीं। फर्श पर, फर्नीचर पर, कम रोशनी देती ट्यूबलाइट पर।' (पृ. 109) वीरेन जी का यह पर्यवेक्षण कतई सच नहीं है।

केदारजी का आडंबर रहित व्यवहार ऐसा था कि किसी भी समय जाइए, वह अपनी सहज मुस्कान से स्वागत करते थे। 1982 के आसपास केदारजी ने वकालत लगभग छोड़ दी थी। कचहरी नहीं जाते थे...पर शाम को नीलम मेडिकल स्टोर पर जाकर बैठना बदस्तूर जारी रहा। जाकर बैठते थे। चाय पीते थे, खुद देखकर या पूछ-सुनकर पूरे बांदा का हाल-चाल जानना कुछ उसी तरह उनका धर्म बन चुका था जैसे घर का कोई बड़ा बुजुर्ग शाम को घर के सभी छोटे-बड़ों की खोज-खबर लेता है। इन्हीं जानकारियों में से वह कविता का कच्चा माल भी सहेजकर अंधेरा होने पर घर आते थे और फिर कविता प्रिया के साथ रात-रात-भर आंखें चार करते थे। कवि-प्रिया की इस पर क्या प्रतिक्रिया होती थी वह वही जानें। जवानी के दिनों में वह कहती तो कुछ नहीं थीं पर पलंग पर आ विराजती थीं। (*मित्र संवाद* में संकलित रामविलास जी को लिखे एक पत्र के हवाले से)

केदारजी ने अधिसंख्य कविताएं रात के अंधेरे में लिखी हैं, पर वे अंधेरे की कविताएं नहीं हैं—वे दिन के अग्निम प्रकाश की कविताएं हैं। प्रारंभ में बांदा के वरिष्ठ वकील चाचा मुकुंद लाल अग्रवाल के डर के कारण छिपकर कविता लिखने के लिए रात का इंतज़ार जरूरी था, बाद में दिन में वकालत की व्यस्तता के कारण।

पुराणों में कर्णवती के नाम से जाने जानी वाली केन नदी केदारजी के घर से दूर है। लेकिन जब तक कूवत रही केदारजी शाम का या छुट्टियों का समय केन को देते रहे। केन उनके लिए महज एक जल-भरी नदी नहीं है। वह उनके अस्तित्व में रच-बस कर उनके लिए चेतना की नदी बन गई। केन को उन्होंने इतनी बार, इतने विभिन्न कोणों से देखा, उसके क्षण-क्षण नित नूतन परिवर्तित सौंदर्य का अनुभव किया कि वह उनके जीवन-दर्शन का एक अभिन्न हिस्सा बन गई। इसीलिए उन्हें 'केन का कवि' भी कहा जाता है। एक नदी को—वह भी छोटी लगभग स्थानीय नदी को, जिसका अस्तित्व यमुना में विलीन हो जाता है—को विषय बनाकर हर बार एक नई भंगिमा देते हुए, केदारजी ने जितनी कविताएं लिखी हैं शायद ही किसी स्थानीय नदी पर इतनी कविताएं किसी दूसरे कवि ने लिखी हों। यमुना भी उनके घर से बहुत दूर नहीं है, पर सिवाय एक-दो संदर्भों के (रेत मैं हूं जमुन जल तुम आदि) यमुना उनकी कविता में लगभग नहीं है। यही हाल गंगा और दूसरी बड़ी नदियों का भी है। क्योंकि केन एक उपेक्षित-सी नदी है और केदारजी मेहनतकशों, वंचितों, दलितों और उपेक्षितों को वाणी देने वाले कवि हैं।

उन्होंने अपने यहां काम करने वालों को भी कभी डांटा-डपटा नहीं। कोई काम उनके मन-मुताबिक नहीं हुआ—तो भी नहीं। स्नेह से प्यार से ही कहा। रनिया नाम की अपने यहां काम करने वाली एक औरत पर तो उन्होंने

कविता ही लिख मारी—उसे अपनी देस-बहन कहा था—*रनिया मेरी देस बहन है/अति गरीब है—अति गरीब है!/ मैं रनिया का देश-बंधु हूं/ अति अमीर हूं, अति अमीर हूं!* (*गुलमेंहदी*, पृ. 48)। इसी तरह के अन्य कई दलित चरित्रों पर उन्होंने कविता लिखी है।

केदारजी की एक और विशेषता है उनका अगाध पत्नी प्रेम। आज के युग में 'प्रेम' शब्द में परकीया प्रेम की ही बू आती है। एक ज़माने में तो *धर्मयुग* ने एक बहस ही चलाई थी कि रचना के लिए प्रेयसी अनिवार्य है। प्रगतिशीलता—जनवादिता का भी एक गुण धर्म-सा बन गया है—पत्नी के अलावा प्रेयसी या प्रेयसियां पालना। ऐसे में पत्नी के प्रति निःस्वार्थ, उद्दाम कर्त्तव्य बोध की ऊष्मा से आवेशित प्रेम, आध्यात्मिक की शब्दावली का प्रयोग करें तो अलौकिक ही लगता है। पत्नी ही उनकी प्रेयसी भी थीं, सहकर्मिणी भी और सहधर्मिणी भी। कविता में दुनिया-जहान पर बातें करने वाली माध्यम भी थीं—*हे मेरी तुम* शृंखला की कविताएं इसी को साबित करती हैं। इस शृंखला की कविताएं प्रेम की ही कविताएं नहीं हैं— प्रेम तो बहुत कम है— दुनियादारी की बातें ज्यादा हैं।

एक लंबे अर्से से कवि-प्रिया पार्वती देवी जी अस्वस्थ रहती थीं—उनके दोनों हाथों और सिर में लगातार कंपन होता रहता था। वह अपने हाथों से अपना काम तक करने में असमर्थ थीं। जब तक केदारजी स्वस्थ रहे शरीर में ताकत रही पत्नी के काम में हाथ बंटाते रहे—बर्तन साफ करने तक में। वह रोटी नहीं बेल पाती थीं तो कई-कई दिनों तक केदारजी दाल-चावल पर ही गुजारा करते थे—बेटा-बहू तबके मद्रास और अबके चेन्नई में रहते हैं। केदारजी ही उन्हें नित्य-कर्म से निवृत्त कराने से लेकर, भोजन स्नान तक कराते थे और इस कदर संवार कर रखते थे कि जब भी देखिए सद्यः स्नाता-सी लगती थीं। दिप-दिप करता, सहज मुस्कान बिखेरता उनका ममतालु चेहरा केदारजी की ही प्रेम की कर्मठ पवित्रता का यशोगान करता प्रतीत होता था। हो भी क्यों न—पत्नी का 'कांपता हाथ' देखकर केदारजी का 'दिल कांपता' था। वह युवती नहीं प्रेम ब्याह कर लाए थे—*गया ब्याह में युवती लाने/ प्रेम ब्याहकर संग में लाया।*

उनकी पत्नी और उनके हृदय एक थे। एक-दूसरे की धड़कन दोनों बिना बताए महसूस कर लेते थे। वे हमेशा समस्वरित रहते थे। इस बात से मुझे हमेशा आश्चर्य होता था कि जो बात उनके सामने बैठे दो-चार लोग नहीं सुन पाते थे, वह कैसे उसे सुन लेते थे।

उनके बैठक ख़ाने में हम लोग बैठे हैं और बातें चल रही है। केदारजी अपने अंगूठे के नाखून से शेष उंगलियों के नाखून के अगले भाग को कुरेद रहे हैं। यह उनकी आदत थी कि जब वह कुछ सोचने की मुद्रा में होते थे तो अनजाने ही ऐसा करने लगते थे। अचानक वह उठते और 'अभी आया'—कहकर बैठक खाने के बरामदे के बाद आंगन के पश्चिम के अपने शयन कक्ष में चले जाते। अपनी पत्नी को पकड़कर बाथरूम की तरफ ले जाते और फिर उन्हें शयन कक्ष में बिठाकर वापस आ जाते या फिर कभी उनकी कोई और जरूरत पूरी करके वापस आते। हम सबको आश्चर्य होता कि बाबूजी को कैसे पता चल जाता था कि उनकी पत्नी को उनकी जरूरत है। उनकी पत्नी भी उन्हें 'बाबूजी' ही कहती थीं। ऐसा था कवि प्रिया के हृदय का समस्वरण।

केदारजी का पूरा जीवन लगभग सीधी पगडंडी-सा था। इस पगडंडी में कहीं-कहीं दूब की कोमल हरियाली थी कहीं-कहीं कुछ छोटे-मोटे गड्ढे और कहीं निचाट मैदान—वह न तो राजमार्ग था, न ही पेंचदार घुमाववाली गली और न ऊबड़-खाबड़ नदी-नालों वाला रास्ता। दो-चार घटनाओं को छोड़कर उनके जीवन में बहुत अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव नहीं था। पूरे जीवन में महाकाल से दो-चार बार उनकी मुठभेड़ जरूर हुई पर जीत केदारजी की ही हुई। छोटी बेटी किरण का दो बार विधवा होना जरूर उनके जीवन की एक बड़ी त्रासदी थी।

केदारजी को प्रकृति बहुत भाती थी। वह प्रकृति के ओज उल्लास, आह्लाद, मस्ती और बेफिक्री के कवि हैं। उनकी प्रकृति संघर्षशील जिंदगी की सहकर्मिणी, सहधर्मिणी, श्रमरत श्रमिक का पसीना पोछने वाली, ऊष्मा देने वाली धरती को जावक लगाने वाली, प्रिया को प्यार के लिए उकसाने वाली, कपोलों को आरक्त करने वाली, सुख-दुख में साथ-साथ चलने, हंसने, बोलने-बतियाने वाली, छेड़छाड़ करने वाली अल्हड़ मुखरा प्रकृति है।

वह दूसरों के लिए जितने उन्मुक्त और उदार थे, सहृदय और सहज थे अपने लिए उतने ही संकोची। अपने बारे में ज्यादा बात करना, प्रशंसा सुनना उन्हें नहीं भाता था। जब भी ऐसा प्रसंग आता वह बात को तुरंत दूसरा मोड़ दे देते थे। अपने सम्मान वाले समारोहों में भी वह बड़ी मान-मनोवल के बाद ही शरीक होते थे क्योंकि वह मान-सम्मान की राजनीति और खतरों को समझते थे—*मुझे न मारो/ मान पान से/ माल्यार्पण से/ यशोगान से/ मिट्टी के घर से निकाल कर/ धरती से ऊपर उछालकर।* (*प्रतिनिधि कविताएं*, वहीं, पृ. 135)

उनका यह संकोच, एक ऐसे समर्पित कर्मयोग का संकोच था, जो निष्काम कर्मयोग को जीवन में उतार चुका था— तभी तो वह कहते हैं—*सबसे आगे/ हम हैं/ पांव दुखाने में/ सबसे पीछे/ हम हैं/ पांव पुजाने में।/ सबसे ऊपर/हम हैं/ ब्योम झुकाने में/सबसे नीचे/ हम हैं। नींव उठाने में।* (वही, पृ.100) उनकी यही साधारणता उनकी सबसे बड़ी असाधारणता थी। यहां तक कि अपनी कविता सुनाने में भी वह संकोच करते थे और *मांझी न बजाओ वंशी मेरा मन डोलता है।* जैसी कविता की फ़रमाइश करने पर उनका शरमाना देखते ही बनता था—गाल लाल हो जाते थे जैसा कि किसी नई-नवेली दुल्हन का अवगुंठन उठाने पर होता है।

अपने प्रचार के प्रति बाद में, केदारजी कितने अनासक्त हो गए थे उसका एक छोटा-सा उदाहरण परिमल प्रकाशन के स्वत्वाधिकारी स्वर्गीय शिवकुमार सहाय द्वारा बताया गया यह संदर्भ है — 3 अक्टूबर 1954 को लिखी गई उनकी प्रसिद्ध कविता 'मजदूर का जन्म' (*एक हथौड़े वाला घर में और हुआ*) (वहीं, पृ. 65) श्रीकृष्णदास जी के संपादन में प्रकाशित पत्रिका *नयापथ* में छपी थी। *नयापथ* जिस प्रेस में छपता था सहायजी उसमें काम करते थे। यह कविता उन्होंने पढ़ी और पहली ही बार में वह उन्हें कंठस्थ हो गई। कालांतर में जब सहायजी ने 1959 में परिमल प्रकाशन शुरू किया तभी संकल्प लिया कि इस कविता के कवि का संकलन छापना ही है। सन् 1963 में उन्होंने एक पत्र द्वारा अपनी यह इच्छा व्यक्त की। केदारजी ने एक पोस्टकार्ड द्वारा उत्तर दिया कि 'मेरी कविता-पुस्तक छाप कर क्या करोगे। 'कविता पुस्तकें' बिकती हैं नहीं। नए-नए प्रकाशक बने हो, ऐसी पुस्तकें छापो जिससे कुछ पूंजी बने, फिर सोचना।' यह सलाह केदारजी ने अपने अनुभव से दी थी। इस समय तक उनकी तीन पुस्तकें *युग की गंगा, नींद के बादल* तथा *लोक और आलोक* छप चुकी थीं और उन्हें कविता—पुस्तकों की बिक्री की दुर्दशा का ज्ञान हो चुका था। केदारजी का पत्र पढ़कर सहायजी को बड़ा विचित्र लगा कि कहां तो लोग छपास की भूख से पीड़ित हैं और केदारजी हैं कि खुद मना कर रहे हैं। उन्हें लगा कि यह कवि किसी दूसरी माटी का बना है। यह सोचकर सहायजी ने तय कर लिया कि जैसे भी हो इस कवि को छापना ही है।

संयोग से सन् 1964 में उन्हें व्यावसायिक काम से बांदा जाना पड़ा। केदारजी से मिले। यह उनकी पहली मुलाकात थी। सहायजी ने उनसे कविता सुनाने का आग्रह किया, बड़ी मुश्किल से केदारजी ने आग्रह स्वीकार किया

और कविताएं सुनाईं। कविताएं सुनने के दौरान सहायजी को लगा कि इन कविताओं को समझने के लिए किसी ख़ास विद्वत्ता की ज़रूरत नहीं है। ये कविताएं तो सामान्य लोगों के लिए उन्हीं की बोली-बानी में लिखी कविताएं हैं—सहज और सुंदर। रात के नौ बजे काव्य-पाठ बंद करते हुए केदारजी ने—'अब खाना खा लिया जाए' कहकर अंदर भोजन की व्यवस्था करने चले गए। तीन डायरियां जिनसे कविताएं सुनाई गई थीं—बगल की मेज़ पर रख दी गई थीं। सहायजी उठे और चुपके से डायरियां अपने ब्रीफ़केस में रख लीं।

खाना खाकर चलने लगे तो बताया कि "बाबूजी मैं आपकी तीनों डायरियां ले जा रहा हूं। अब ये आपको छपने के बाद ही मिलेंगी।" केदारजी ने चौंककर मेज की ओर देखा। डायरियां गायब थीं। केदारजी ने फिर अपने पत्र वाली बात दुहराई पर सहायजी कहां मानने वाले थे। इन्हीं डायरियों और पूर्व प्रकाशित तीनों संकलनों से चुनी हुई कविताओं का संकलन *फूल नहीं रंग बोलते हैं* सन् 1965 में केवल प्रकाशित ही नहीं किया, वरन् बड़े धूम-धाम से 10 अक्टूबर को उसका प्रकाशनोत्सव भी मनाया। केदारजी इससे बहुत आह्लादित हुए। उन्होंने तुरंत रामविलासजी को कविता में एक पत्र लिखा—

'बांदा
13.10.65
रात 11 बजे

प्रिय डाक्टर

पाई चिट्ठी/ हुआ प्रसन्न/ तुमने तोड़ा मौन/ मैंने खाई खीर/ स्वाद बन गया वक्ष बन गया/ गया इलाहाबाद/ पुस्तक देखी/ आंखें चमकीं/ बहुत समय पर मेरी कविता बाहर आई/ छपने पर वह और हो गई/ सब को भाई/ समारोह भी रहा सुहाना/ सबने मुझको, मैंने सबको जाना/ मन गाता था गाना/ मैं पहने था माला चलता था चौताला/ लेख पढ़े लोगों ने डटकर/सबने काव्य सराहा/पंत, महादेवी के भाषण भाव भरे थे/ दास हुलास भरे थे/ अमरित ने अमरित बरसाया—अब फिर बांदा/ वही कचहरी-वही वकालत/ वही कटाकट।

शेष कुशल है। मैं केदार तुम्हारा (*मित्र संवाद*, भाग-2, पृ. 57, सं. रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी साहित्य भंडार, इलाहाबाद, संस्करण, 2010)

इसके बाद तो केदार जी का समस्त साहित्य परिमल प्रकाशन से ही प्रकाशित हुआ। इस संकलन की व्यापक चर्चा हुई। शमशेरजी ने इस संकलन की एक लंबी समीक्षा लिखी जो नामवरजी ने *आलोचना* में छापी। इस समीक्षा के ज़रिए शमशेर जी ने केदारजी पर 'रूपवादी' होने जैसे आरोपों का तर्कसम्मत ढंग से जोरदार खंडन किया और उनकी कविताओं को पढ़ने और समझने की एक नई दृष्टि दी। वह समीक्षा आज भी मील का पत्थर मानी जाती है।

केदारजी की जब प्रसिद्धि बढ़ी तो दिल्ली के नामी-गिरामी प्रकाशकों ने उनसे उनके कविता संकलन छापने के प्रस्ताव भेजे। केदारजी ने सबको मना कर दिया, हालांकि इससे घाटा केदारजी को हुआ। दिल्ली से प्रकाशित होने पर पैसा और प्रसिद्धि दोनों मिलती, पर केदारजी अवसरवादी नहीं थे। उनका कहना था जब कोई दूसरा उन्हें छापने को तैयार नहीं था तब शिवकुमार सहाय ने जोखिम उठाकर उन्हें छापा, इसलिए नैतिकता यही कहती है कि जब शिवकुमार सहाय मुझे छापने से मना कर दें तभी मैं दूसरों को अपनी पुस्तकें दूं।

केदारजी ने साहित्य और जीविका को कभी गड्मड् नहीं होने दिया। साहित्य उनके लिए मिशन था—वकालत उनकी जीविका थी। उन जैसे साधारण जीवन जीने वाले के लिए वकालत पर्याप्त थी।

अब शिवकुमार जी इस दुनिया में नहीं हैं। लेकिन उनकी विरासत—केदार साहित्य—अभी भी इलाहाबाद में ही है। उनके छोटे भाई जैसे मित्र सतीशचंद्र अग्रवाल ने अपने प्रकाशन संस्थान—साहित्य भंडार' से केदारजी का साहित्य नए कलेवर के साथ पुनः प्रकाशित किया।

केदारजी को अपनी धरती और अपने लोगों से बेहद लगाव था। बांदा की काली मिट्टी से लेकर टुनटुनिया पहाड़ तक, केन नदी से गर्रानाला तक, चंद्रगहना बाग से गुम्मा ईंट तक चित्रकूट के बौड़म यात्रियों से मुल्लो अहिरिन तक, अभियुक्त नं. 110 से लेकर कानपुर के मजदूरों तक, गुलाब से लेकर नीम के फूल तक, फसलों, पेड़ों, हवाओं और मौसमों से लेकर किसानों, मल्लाहों, मुदर्रिसों, क्लर्कों तक—अपने परिवेश की प्रत्येक वस्तु से लेकर जनजीवन तक केदारजी का ऐसा गहरा जुड़ाव था कि बांदा और केदार एक-दूसरे की पहचान और एक-दूसरे के पर्याय बन गए। केदारजी ने बांदा को अपनी रग-रग में पैबस्त कर लिया था। पर उनका बांदा प्रेम किसी संकीर्णता की उपज नहीं है। कभी-कभी वह अपने बेटे अशोक कुमार अग्रवाल के पास मद्रास भी जाते थे। उन्होंने मद्रास पर बहुत-सी कविताएं लिखी हैं। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय घटना-चक्रों पर कविताएं लिखी हैं। 1965 में जब वेलिन्तीना तेरेश्कोवा चांद पर गई तो केदारजी ने मनुष्य की इस विजय यात्रा को इन शब्दों में बांधा—*इकला चांद असंख्यों तारे/नील गगन के/खुले किंवारे/कोई हमको कहीं पुकारे/हम आएंगे बांह पसारे/*

केदारजी पेशे से वकील थे, पर उन्होंने कभी अपने पेशे को अपने मिशन में बाधक नहीं माना जैसा कि अमूमन लोग कहते हैं। इसके बरक्स वे वकालत के शुक्रगुज़ार हैं कि वकालत ने ही उन्हें विश्लेषण करने और आदमी को और उसके अंतर्विरोधों को समझने का गुर सिखाया, वरना औरों की तरह वह भी नकली आदमी को चित्रित करते रहते और अपने अहं में कैद होते। वकालत और मार्क्सवाद इन्हीं दोनों ने उनके चिंतन और उनकी जीवन धारा को पैना बनाया और वह खुद भी सच्चे अर्थों में मनुष्य बन सके और मनुष्यता की खोज करते रहे। वकालत में आने का श्रेय उनके चाचा मुकुंदलाल अग्रवाल को है और मार्क्सवाद से परिचय कराने का श्रेय वे अपने अभिन्न सखा डा. रामविलास शर्मा को देते हैं। 1938 में जब वह वकालत के लिए बांदा आए और मार्क्स का ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद पढ़ा तो ईश्वर के प्रति उनका विश्वास खत्म हो गया और उन्होंने अपनी जनेऊ तोड़कर फेंक दी। हालांकि वे कभी भी किसी राजनीतिक पार्टी के रजिस्टर्ड मेंबर नहीं रहे—कम्युनिस्ट पार्टी के भी नहीं। लेकिन मार्क्सवाद के प्रति जो समर्पित, प्राणवंत कर्ममुखी, ऊर्ध्वचेता आस्था उनमें प्रारंभ से थी वह अंत तक कायम रही—उसमें कोई दरार नहीं आई—सोवियत संघ के टूटने के बावजूद।

सन् 1930-31 से लेकर 1995 का समय उनकी कविताओं में कैद है। पर कविताएं समय-सीमा में कैद नहीं हैं। वे कालजयी हैं। केदारजी अपने पास आए हर एक 'पत्र का जवाब देते थे और जवाब देने वाले पत्र पर जवाब देने की तारीख ज़रूर लिखते थे अपने हस्ताक्षर के साथ। अपने मित्रों पर, कवियों पर—बाल्मीकि से लेकर गोरख पांडेय तक—जितनी कविताएं केदारजी ने लिखी हैं शायद ही किसी ने लिखी होंगी। सबसे अधिक कविताएं निराला पर हैं। रामविलास जी लिखते हैं—'बहुतों ने' निराला पर लिखा है। दूसरे कवियों ने निराला को दूर से देखा है, केदार ने उनसे तादात्म्य स्थापित किया है। निराला मरकर भी केदार की कविता में अमर हैं। (*प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल*, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, संस्करण 2011)

केदारजी इतने अचर्चित रहे हैं कि साहित्यिक अकादमियों और संस्थानों को उनकी कभी याद ही नहीं आती थी कि वह भी कुछ मान्यता लायक लिख रहे हैं। 1986 में बांदा में संपन्न दो दिवसीय सम्मान : केदारनाथ अग्रवाल समारोह

की चर्चा से, साहित्य अकादमी ने उसी साल *अपूर्वा* पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया। म. प्र. साहित्य परिषद का 'तुलसी' और 'मैथिलीशरण गुप्त' पुरस्कार भी इसी के बाद मिला। हिंदी साहित्य सम्मेलन की मानक उपाधि—'साहित्य वाचस्पति' तथा बुंदेलखंड विश्वविद्यालय की मानद उपाधि 'डी.लिट्.' भी इसी के बाद मिली। केदारजी सचमुच में साहित्य की एकांत साधना में लीन रहे।

सन् 2010-2011 केदारजी सहित हिंदी के कई कवियों, लेखकों की जन्मशती वर्ष है। केदारजी विस्मृत होने वाले कवि नहीं हैं। क्योंकि केदार जनकवि हैं। वह घोषणा करते हैं कि—*हम लेखक हैं/कथाकार हैं/हम जीवन के भाष्यकार हैं/हम कवि हैं जनवादी।* (केदारनाथ अग्रवाल, *प्रतिनिधि कविताएं*, पृ. 88)। जनवादी कवि यानी जनता का कवि अमर रहता है क्योंकि—*सब देशों में सब राष्ट्रों में/शासक ही शासक मरते हैं/शोषक ही शोषक मरते हैं/किसी देश या किसी राष्ट्र की कभी नहीं जनता मरती है।*

केदारजी वैसे तो यात्रा से बचने की भरपूर कोशिश करते थे और समारोहों में जाने से कतराते थे, पर यदि किसी दबाववश हामी भर देते थे तो हर कीमत पर उसे निभाते। थे। एक प्रसंग काफी होगा। प्रगतिशील लेखक संघ को पन्ना इकाई के डा. मकबूल अहमद को बाबूजी ने वायदा कर दिया कि वह उनके 10-11 जनवरी 1987 के आयोजन में आएंगे। बांदा से पन्ना के लिए कोई सीधी बस या रेल सेवा नहीं है। डा. मकबूल अहमद ने इन्हें ले जाने के लिए समारोह के एक दिन पूर्व 9 जनवरी को एक मेटाडोर की व्यवस्था की क्योंकि इलाहाबाद से मुझे और सहायजी को तथा बांदा से चंद्रपाल कश्यप सहित एक-दो और लोगों को जाना था। मैं और सहायजी 8 जनवरी की रात को ही बांदा आ गए थे क्योंकि 9 को 11 बजे सबेरे ही बांदा से रवाना होना था। डा. मकबूल जब पन्ना से निकले तभी मेटाडोर खराब हो गई। ठीक होने के बाद बांदा पहुंचते-पहुंचे वह फिर मचल गई। सभी लोग तैयार होकर बाबूजी के घर पर इंतज़ार कर रहे थे। अपराह्न लगभग 3 बजे डा. मकबूल अहमद हांफते हुए बाबूजी के घर पर आए और पूरी दास्तान बयान की। फिर मेटाडोर ठीक कराने मैकेनिक के पास चले गए। रात लगभग 11 बजे वह मेटाडोर ठीक कराकर आए। सब लोग मेटाडोर से चले। कुछ दूर जाकर वह फिर नखरे करने लगी। किसी तरह मंथर गति से चलती हुई वह रात के ढाई बजे नरैनी जाकर फिर अड़ गई। हम लोग पूरी रात नरैनी में उसी मेटाडोर में बैठे रहे। रात का समय, जनवरी का महीना, तेज हवा चल रही थी, ठंड भी लग रही थी, पर बाबूजी हम सबके हंसी मजाक के बीच पूरी जिंदादिली से अड़े रहे और अपने संकल्प पर कायम रहे। नरैनी बांदा की तहसील है जिसके थोड़ा आगे कस्तल नामक कस्बा है। यहीं बाबूजी एक बार एक मुकदमे के सिलसिले में गए थे तो विरोधी पार्टी ने लाठियों से उन पर हमला कर दिया था। उन्हें गंभीर चोट आई थी। लगभग 5.30 बजे सबेरे हम सब नरैनी से रवाना हो सके।

पन्ना में भी एक दूसरा वाकया हुआ जो उनकी सहज उदारता का अपना ही उदाहरण है। आयोजन के दौरान एक महिला कवयित्री ने बाबूजी को अपना एक संग्रह भेंट किया। आवास स्थल पर मैं उसे उलट-पलटकर देख रहा था कि अचानक मैं चौंक उठा—उसमें केदारजी की एक अतिप्रसिद्ध कविता—'आज नदी बिल्कुल उदास थी' कवयित्री ने अपने नाम से छाप रखी थी। मैंने सबको बताया। सहायजी बिफर गए—कहने लगे मैं इसे कानूनी नोटिस भेजूंगा—बाबूजी की कविता उसने अपने नाम से कैसे छापी। बाबूजी ने बीच में ही टोका—'शिवकुमार तुम बेकार की बातें करते हो। कोई नोटिस-फोटिस नहीं भेजनी है। अरे भाई! उसे मेरी कविता इतनी अच्छी लगी कि उसने उसे अपने नाम से छाप ली। बस जो हो गया सो हो गया—कुछ करना-धरना नहीं। 'ऐसे को उदार जग मांही'।

बांदा की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह किसी ऐसे बड़े शहर के रास्ते में नहीं पड़ता जहां यातायात के साधन रेल या बस सहज उपलबध हों और लोगों का आना-जाना लगा रहता हो। बांदा जाने का मतलब है सिर्फ बांदा जाना। इसी कारण इनके मित्रगण, शुभचिंतक चाहते हुए भी अक्सर बांदा नहीं पहुंच पाते थे। केदारजी इसकी शिकायत भी करते थे। कवि प्रिया पार्वती देवी के निधन 28 जनवरी 1986 के बाद चेतना के स्तर पर तो वह हमेशा उनके साथ रहती थीं पर भौतिक रूप से बाबूजी अकेलापन महसूस करते थे। समय काटना भी मुश्किल था।

मैंने 19 अप्रैल 1991 को दिल्ली में दूरदर्शन की नौकरी ज्वाइन की थी। उनके जन्मदिन के अवसर पर पहली अप्रैल या उसके आसपास तो हर वर्ष बांदा जाता ही था। बाद में मेरी पत्नी सावित्री त्रिपाठी और मैंने तय किया कि अक्टूबर के महीने में 2-3 दिन के लिए बांदा जाकर बाबूजी के पास रहना चाहिए, ताकि कुछ दिनों के लिए तो उनका अकेलापन दूर हो सके। पहुंचने की सूचना पत्र द्वारा पहले से ही भेज देता था। बाबूजी के भतीजों के मुनीम पंडित रामसजीवन पांडे पहुंचने पर बताते थे कि मेरी चिट्ठी आने के बाद एक-एक दिन बाबूजी गिनते थे कि मैं कब बांदा पहुंचूंगा। नौकरों को सहेजते थे कि 'महाकौशल' के समय गेट खुला रखें—सो न जाएं। क्योंकि 'महाकौशल' सबेरे के ढाई-तीन बजे बांदा पहुंचती थी। उस समय यही इकलौती रेलसेवा दिल्ली से सीधे बांदा के लिए थी। मैं जब सबेरे पहुंचता तो बाबूजी भोर ही में जगे हुए मिलते थे—पता नहीं रात में सोते भी थे या नहीं। हमारे रहने की व्यवस्था उस कमरे में करते थे जिसमें उनकी पत्नी रहती थीं। 1986 में इसी कमरे में रामविलासजी भी रुके थे। सारी व्यवस्था पहले से ही चाकचौबंद रहती थी। उस समय रामस्वरूप उनके यहां काम करते थे। उनसे भी वही रिपोर्ट मिलती जो पंडितजी से मिलती थी। पूरा समय बाबूजी के साथ ही बिताने की कोशिश करता था। सिर्फ दोपहर या रात को भोजन के लिए बाहर जाता था। बाबूजी का खाना, उनके एक भतीजे के यहां से आता था। हमारे घर परिवार के बारे में उसी तरह पूछताछ करते थे जैसे कोई सरपरस्त करता है। बाबूजी अपने को 'भुक्खड़ शाहंशाह' कहते थे—

हे मेरी तुम!/गठरी चोरों की दुनिया में/मैंने गठरी नहीं चुराई/इसीलिए कंगाल हूं/भुक्खड़ शाहंशाह हूं। (*प्रतिनिधि कविताएं*, पृ. 137)

बांदा से दिल्ली वापसी की भी वही गाड़ी थी—महाकौशल। वापसी में उसका समय था रात के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे। हम चाहते थे कि घर से जल्दी निकल लें, ताकि बाबूजी की नींद खराब न हो, पर वह थे कि जल्दी निकलने नहीं देते थे। उनके घर से उनके अहाते का फाटक कोई सौ-सवा सौ गज़ दूर होगा। जब तक हम दोनों फाटक पार नहीं कर जाते थे, बरामदे में खड़े पनीली आंखों से हमें निहारते रहते थे। ऐसा केवल हमारे ही साथ नहीं था—वह उन सभी के साथ था जो उनसे मिलने आते थे। मतलब कि यह उनके सहज स्वभाव का अनिवार्य हिस्सा था। ऐसा अकुंठ स्नेहिल व्यक्तित्व था केदारजी का। सादगी, सिद्धांतप्रियता, ईमानदारी, सहजता, निस्पृहता और अपनों के प्रति सच्चे दिली सरोकार की साक्षात मिसाल थे केदारजी। ❑

संपर्क : 483 कानूनगो अपार्टमेंट्स, 71 इंद्रप्रस्थ एक्सटेंशन, दिल्ली-110092

पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी हिंदुस्तान में रहूंगा...

कुमुद शर्मा

'मेरी इन कविताओं में अजनबीपन नहीं है, इसलिए कि मैं अपने देश में अजनबी नहीं हुआ। अजनबी होना आदमी न होने की निशानी है। आदमी न होने का मतलब है अपने आदमियों को न समझना, अपने युग के यथार्थ को न समझना और विसंगतियों में रहकर आदमी होने से इंकार करना।' (*आग का आईना*, पृष्ठ 4) प्रगतिशील काव्यधारा के कवि केदारनाथ अग्रवाल का अपनी कविता पर दिया गया यह बयान उनकी रचनाधर्मिता के व्यापक सरोकारों का स्पष्ट संकेत है। उन्होंने कविता को राष्ट्रीय और मानवीय सरोकारों के नए आयामों से संबद्ध कर बिना किसी उलझाव और जटिलता के जनता तक पहुंचाया। हिंदी कविता को सही मायने में आत्मबोध और जगबोध दिया। अपने देश के सामयिक परिवेश की समग्रता को कविता की मनोभूमि में समेटा। राष्ट्रीयता की आनुभूतिक संवेदना से संपृक्त उनकी कविता भारतीय परिवेश की विशदता में उनके आत्मीय भावों की पहचान कराती है। देश की सामयिक स्थितियों और समस्याओं के साथ उनके भावों के रिश्तों तथा उनके राष्ट्रीय आचरण को दर्शाती है।

> *जब मैं अपनी नदी पर लिखता हूं, जब मैं फूल पर लिखता हूं जब मैं नागपंचमी पर लिखता हूं जब मैं पत्नी पर लिखता हूं तो भले ही लोग समझें कि व्यक्तिवादी रचनाएं लिख रहा हूं। मैं और समूह से ही जुड़ता हूं। मैं जब अपनी नदी पर लिखता हूं तो परिवेश से जुड़ता हूं। मैं फूल पर लिखता हूं तो आपको वो सौंदर्य दिखाता हूं जो आपके अंदर राष्ट्रीयता की भावना पैदा करता है।*

कवि केदार महज बुंदेलखंड के बुंदेली कवि नहीं हैं बल्कि चेतन सृष्टि का यह कर्ता पूरे हिंदुस्तान की जमीन पर अपना रचनात्मक विधान फैलाता है—*इसी जन्म में इस जीवन में हमको तुमको मान मिलेगा/गीतों की खेती करने को/पूरा हिंदुस्तान मिलेगा।*

अपनी कविता की आंख से केदारनाथ अग्रवाल अपने अंचल विशेष को ही नहीं देखते, समूचे देश के गांवों, कस्बों, शहरों की पगडंडियों से गुजरकर दिल्ली, कलकत्ता और चेन्नई तक कविता यात्रा करते हैं। उनकी कविताएं हिंदुस्तान की मिट्टी में जन्मती हैं उसी में सुगंधित और सुरभित होती हैं और उसी में उमंग भरती हैं। पीढ़ी-दर-पीढ़ी हिंदुस्तान में रहने और देश के साथ जुड़े रहने का उनका संकल्प देश के साथ उनकी गहरी मानसिक संसक्ति का परिचायक है—*मेरे दोस्त मैं अभी बहुत साल जिऊंगा/मरा भी/तो/तुम्हारी उम्र में लगातार जिऊंगा/पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी हिंदुस्तान में रहूंगा।* (*युग की गंगा*, पृ. 20)

केदार जी की कविताएं देश के प्रति, देश के प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति तथा देश के लोगों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह आस्था और निष्ठा का प्रमाण बनकर गूंजती हैं। यथार्थ की सीमा में सत्यान्वेषण के बौद्धिक धरातल पर वस्तुगत सत्य की उपलब्धि देश की चिंता से जुड़ती है। क्षुद्रता, स्वार्थपरता तथा व्यवस्थाजन्य दुरभिसंधियों से जूझती, संघर्ष करती कवि की चेतना आहत स्वर में कह उठती है—कपड़ा है/मेरा देश/जिसे बुनते हैं कुछ हाथ/फाड़ते हैं बहुत से लोग। (*आग का आईना*, पृ. 77)

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में इंद्रियबोध, भावबोध और विचारबोध का रूपायन वस्तुजगत से पाए हुए मानस का प्रतिबिंब बनकर आता है। लेकिन यह रूपायन वस्तुनिष्ठ विवरण बनने से बच गया क्योंकि केदार जी ने वस्तुनिष्ठता को प्राथमिकता देकर आत्मनिष्ठता की उपेक्षा नहीं की। आत्मनिष्ठ मौलिकता से ही उन्होंने कविता के जरिए जीवन से, मनुष्य से, परिवेश से अपनी संबद्धता बैठाई—*दुःख ने मुझको जब-जब तोड़ा/मैंने अपने टूटेपन को/कविता की ममता से जोड़ा/जहां गिरा मैं/कविताओं ने मुझे उठाया/हम दोनों ने वहां/प्रात का सूर्य उगाया।*

जीवन के ये ठोस और वास्तविक अनुभव देश चेतना से समन्वित हैं। उनकी कविता में सामयिकता का आग्रह उन्हें देश की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों और समस्याओं से जोड़ता है। युगबोध के धरातल पर जब वे तात्कालिक संदर्भों को समेटते हैं तब जीवन का 'सत्य समर्पित बोध' और 'शब्द-अर्थ की शुभ संद्धति का शोध' बनकर उनकी कविताएं सत्यं शिवं सुंदर की परिकल्पना को जीवंत करती हैं—मैं समय को मारता हूं शब्द बेधी बाण/काव्य की नव सृष्टि का मैं लड़ रहा संग्राम/शून्य की हठधर्मिता मैं कर रहा ध्वस्त/सत्य शिव सौंदर्य को मैं कर रहा अभिव्यक्त। (*अनहारी हरियाली*, पृ. 35)

कविता में जुझारू, ठेठ देशी मानवीय संवेदना का प्रयोग करते हुए केदारनाथ अग्रवाल बेहद जानी-पहचानी दुनिया को चित्रित करते हैं।

शमशेर ने केदारनाथ अग्रवाल को 'नार्मल रोमानी संवेदना' का कवि कहा है। 'नार्मल रोमानी संवेदना' का यह कवि भारतीय परिवेश से जुड़कर राष्ट्रीयता की भावना पैदा करता है। हिंदुस्तान की जमीन, मिट्टी और प्रकृति से जुड़े सवालों को सहज और उदात्त मानवीय भूमि पर ग्रहण करते हुए मानव मन की उर्वरता का बीज बिखेरता है। धरती के रंग, केन में प्रवाह, कूल किनारों, धूप की अनगिनत छवियों में केदार भारतीय रूप रस गंध से सराबोर अपने परिवेश को जीते हैं। उनके द्वारा जिया गया यह परिवेश और अनुभूति कविता में सबका परिवेश सबकी अनुभूति बनकर अपनी सार्थकता अर्जित करती है। कवि केदार की दृष्टि में अच्छी कविता की कसौटी भी यही है कि कविता आदमी की रची होकर भी, कवि की होकर भी दूसरों की मानसिकता बन जाए। उसमें व्यक्त मानवीय आत्मवत्ता वस्तुसत्ता से निर्मित होती हुई एक-दूसरे को प्रभावित करे, आदमी को आदमी बनाए, उसे महान जीवन जीने की क्षमता प्रदान करे।

लोकपरकता केदारजी की कविता की बहुत बड़ी शक्ति है। लोक जीवन के संस्पर्श ने उनकी कविता को एक खास रंग दिया है। उनकी लोकोन्मुखता किसी जनांदोलन का अंग नहीं बल्कि जीवन के सहज आवेग का जीवन के संघर्ष का, जीने की क्षमता का प्रतिफलन है। लोकसंस्कृति के तहत उनकी कविता में

गांव-समाज के सुख-दुख, भय-आतंक, राग-रंग, क्रोध-संकोच, हास-विलास, आशा-आकांक्षा सब दिखाई पड़ते हैं।

प्रकृति के वैभव में जीवन के सूत्र तलाशती केदार जी की कविताएं मानवीय धरातल पर रागात्मकता का सुदृढ़ आधार तैयार कर देती हैं। उगते सूरज की धूप, सूर्यातप में खड़े पेड़, वासंती हवा धीर, उदास नदी, पृथ्वी के वंशज के रूप में पेड़ जो फूल-फल लिए मानव के अग्रज बनकर आते हैं, अनगिनत चिह्नों से खास-खास अर्थ देते हैं। धूप उजाले का, खुशी का, उमंग का और उत्साह की लहर बनकर पृथ्वी पर ऊर्जा और शक्ति के चिह्नों से सजती है। ब्रज की बीच गली में रवि की गगरी का बरसना, चांदी की साड़ी पहने धूप का चमकना, चौमासे में चढ़ी जवानी में मदमाती केन नदी का इठलाना, भैया की बांहों से छूटी भौजाई-सी लहरों में लहराती लचती हवा का चलना केदारजी की कविता के ऐसे सुंदर बिंब है जहां प्रकृति और लोकजीवन एक रूप होकर उपस्थित होते हैं। मानवीय संवेदना के तार से प्रकृति का जो अद्‌भुत संयोग केदार जी की कविताओं में होता है वह अत्यंत दुर्लभ है—*आज नदी उदास थी/सोई थी अपने पानी में/उसके दर्पण में/बादल का वस्त्र पड़ा था/मैंने उसे नहीं जगाया/दबे पांव घर वापस आया।*

इसमें आत्मीयता का एक छोटा-सा स्पंदन हृदय को उलट-पलटकर उर्वर बना देता है। मानवीय संवेदना का यह उदाहरण आज उपभोक्तावादी संस्कृति के युग में बहुतों को मानवीय उदारता और ममता का सबक सिखा सकता है। केदार जी की कविताएं जीवन संघर्षों और द्वंद्वों से विचलित होकर परिवेश से किनारा नहीं करतीं बल्कि उन्हीं में रमते हुए वहीं मनुष्यता को खोजती हैं—*मैं उसे खोजता हूं जो आदमी है/और अब भी आदमी है/तबाह होकर भी आदमी है/चरित्र पर खड़ा देवदार की तरह बड़ा।* (*आज का आईना*, पृ. 39)

केदार जी के समूचे रचनाकर्म पर गौर करें तो वे अन्य प्रगतिशील कवियों से कई मायने में अलग नजर आते हैं। उनकी कविता में मार्क्सवादी आग्रह के प्रमाण भले ही जुटा लिए जाएं लेकिन सच्चाई यह है कि वे किसी भी जीवन-दर्शन की सूक्ष्म व्याख्याओं के घेरे में नहीं पड़े उन्होंने किसी निश्चित सिद्धांत को कविता को कसने की कसौटी नहीं माना और न ही कभी प्रखर बौद्धिकता के खांचे में बरबस कविता को बैठाया। वे लेखक के लिए किसी भी हुक्म या हिदायत के हिमायती नहीं थे—*इसलिए एक देह-एक प्राण होकर हम कहते हैं/तुलसी के वंशज के/आज के लेखक को दाम से खरीदो नहीं/राजशाही गुंबद की छाया में लेखक को पालो नहीं/लेखक को हुक्म या हिदायत से बांधो नहीं।*

इस तरह उन्होंने खुले रूप से लेखक की स्वायत्तता को बनाए रखने की अपील की, साफ-साफ कहा कि 'पार्टीवाद से काव्य की उपलब्धि को नहीं परखा जाना चाहिए।' इसलिए उन्होंने स्वयं भी पार्टीवाद के घेरे को तोड़कर आदमीयत के रास्ते कविताओं को 'आदमीयता की परख' से परखा और अपने काव्य फलक पर, अपनी अनुभव संपदा में मनुष्य को बचाने की जद्‌दोजहद की। कविता का मानक गढ़ती कुंवरनारायण की एक कविता है—कविता वक्तव्य नहीं गवाह है/कभी हमारे सामने/कभी हमसे पहले/कभी हमारे बाद/कोई चाहे भी तो रोक नहीं सकता/भाषा में उसका बयान/जिसका पूरा मतलब है सचाई/जिसकी पूरी कोशिश है बेहतर इंसान/उसे कोई हड़बड़ी नहीं/कि वह इश्तहारों की तरह चिपके/जुलूसों की तरह निकले/नारों की तरह लगे/और चुनावों की तरह जीते/वह आदमी की भाषा में/कहीं किसी तरह जिंदा रहे बस।

मनुष्यत्व को खोजती केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं कुंवरनाराण की कविता के इस मानक पर पूरी तरह खरी उतरती हैं। क्योंकि आदमी की भाषा बोलती ये कविताएं आदमी की मानसिकता में बदलाव की संभावनाओं से भरी हुई हैं। इनमें आदमी की जड़ता को तोड़ने की क्षमता है, उसकी निर्ममता को हटाने का जज्बा है। ये कविताएं अमानवीय होती चली जा रही दुनिया में सोए हुए आदमी को मानवीयता के छींटों से जगा सकती हैं।

साहित्य में जहां तरह-तरह के वादों और आंदोलनों के घेरे में जीवन तड़प-तड़पकर जान दे रहा है। वहां केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं भारतीय मौसम, फूलों, वृक्षों, त्योहारों से गुजरकर प्रकृति और लोक संस्कृति का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करती हैं। जहां धूप, हवा, खाद, मिट्‌टी पानी सब कुछ जीवन को ताजगी से भर देते हैं। उनकी 'हवा हूं हवा मैं' कविता की वसंती बयार किसी भी हिंदुस्तानी मन में नई जान फूंक सकती है। एक गर्म चाय के प्याले से ज्यादा ताजगी का एहसास देने वाली इस कविता की गूंज बरसों बरस पाठक की चेतना में बनी रहती है—*हवा हूं हवा मैं/वसंती हवा हूं/चढ़ी पेड़ महुवा/थपाथप मचाया/गिरी धम्म से/फिर चढ़ी आम ऊपर/उसे भी झकोरा/किया कात में मैं/उतरकर भागी मैं/हरे खेत पहुंची—/वहां गेहूंआ में/लहर खूब मारी.../हंसी जोर से मैं/हंसी सब दिशाएं/हंसे लहलहाते/हरे खेत सारे/हंसी चमचमाती/भरी धूप प्यारी/वसंती हवा में/हंसी सृष्टि सारी!*

एक आम भारतीय केदारनाथ अग्रवाल की कविता के ढांचे में अपनी देशी पहचान ढूंढ सकता है, स्वयं को तलाश सकता है। कविता की अंतर्धारा में मौजूद मानवीय संबंधों के विविध स्तरों में उसकी भारतीयता की खोज पूरी हो सकती है। प्रकृति, पत्नी, त्योहारों से जुड़ने और जनजीवन के सुख-दुख में शामिल होने वाले कवि के साथ-साथ वह भी वृहत्तर जीवन संदर्भों से जुड़कर मानवीय अर्थवत्ता को पा सकता है। कविता को वस्तुसत्ता का 'मानवीय संस्करण' बनाने वाले कविता की नदी को, कविता के फूल को आम नदी और आम फूल से ज्यादा सुंदर और अच्छा मानते हैं क्योंकि 'इसमें कोई लाशें नहीं फेंक सकता। आम नदी में तो लोग लाशें फेंक देते हैं। आम फूल मरझा जाता है कवि का गेंदे का फूल-गुलाब का फूल हमेशा जिंदा रहता है। यह मृत्यु पर विजय है।'

जनता के बीच कल-कल ध्वनि के साथ प्रवाहित कवि केदार की कविता नदी वासंती हवा के झोंके, कोयल की कूक, आम के बौर के साथ देश की चेतना से समन्वित होकर शास्त्रीयता की मनोभूमि को निर्मित करती हैं—'जब मैं अपनी नदी पर लिखता हूं, जब मैं फूल पर लिखता हूं, जब मैं नागपंचमी पर लिखता हूं, जब मैं पत्नी पर लिखता हूं तो भले ही लोग समझे कि व्यक्तिवादी रचनाएं लिख रहा हूं। मैं और समूह से ही जुड़ता हूं। मैं जब अपनी नदी पर लिखता हूं तो परिवेश से जुड़ता हूं। मैं फूल पर लिखता हूं तो आपको वो सौंदर्य दिखाता हूं जो आपके अंदर राष्ट्रीयता की भावना पैदा करता है।' (*मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल*, पृ. 37)

हिंदुस्तान में रची-बसी आदमीयत को ढूंढती कवि केदार की कविताएं लोक में मानवीय मूल्यों को रोशनी से आलोकित कर मानवीय सार्थकता को सिद्ध करती हैं। यह पथरीली जमीन पर संवेदना को हरी-भरी दूब उगाने की आकांक्षा रखती हैं। आत्मीयता की पुकार की अनंत संभावनाओं को ज़गाती हैं। आदमी को टूटने से बचाकर मानवीय न्याय प्राप्त करने का विवेक जगाती हैं। अनास्था से आस्था और अंधेरे से उजाले की यात्रा करती हुई जीवन को वसंत के आगमन का संदेश देती हैं। जीवन को प्रेरणा देती हैं कि उसकी विसंगतियों को मिटाओ, आत्मीयता का अलाव जलाओ शांति और सौहार्द के मंत्र से मानवता का सृजन करो। आस्था, सौंदर्य और मानवता में विश्वास अर्जित करते हुए इस विश्वास तथा आश्वस्ति के भाव से भरे रहो क्योंकि—रात-सी इस जिंदगी को प्रात-सा खिलना पड़ेगा/भूल-सी इस जिंदगी को फूल-सा खिलना पड़ेगा। ❑

संपर्क : 188 नेशनल मीडिया सेंटर, नेशनल हाइवे-8 (शंकर चौक के निकट) गुड़गांव (हरियाणा)

जनकवि केदारनाथ अग्रवाल : संक्षिप्त जीवन परिचय

नाम : केदारनाथ अग्रवाल; **जन्मतिथि** : 1 अप्रैल 1911; **जन्म स्थान** : कमासिन (गांव), बबेरू (तहसील), जिला-बांदा (उत्तर प्रदेश); **पिता** : हनुमान प्रसाद अग्रवाल (किसान, वैद्य और कवि); **माता** : घसिट्टो देवी; **पत्नी** : पार्वती देवी; **पुत्र** : अशोक कुमार अग्रवाल; **पुत्रवधू** : ज्योति अग्रवाल; **पुत्रियां** : श्याम और किरण।

शिक्षा : प्रारंभिक शिक्षा कमासिन गांव की पाठशाला में 1921 तक; कक्षा 3 से कक्षा 6 तक रायबरेली के गवर्नमेंट हाईस्कूल में; सातवीं कक्षा कटनी (म. प्र.) के म्यूनिसिपल स्कूल में; आठवीं, जबलपुर में जून 1927 तक; माध्यमिक शिक्षा इलाहाबाद के क्रिश्चियन कालेज में—नवीं, दसवीं और इंटरमीडिएट; इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. जुलाई 1932 से सन् 1935; 1935 नवंबर से 1937 तक डी.ए.वी. कालेज, कानपुर से एल.एल.बी. (कानपुर में रहते हुए ही केदार बाबू मजदूरों के नजदीक आए, उनके जीवन को नजदीक से देखा, जिसका प्रभाव उनकी रचनाओं में बहुत गहराई से पड़ा।) कानपुर में वकालत पढ़ने के दौरान ही वह निरालाजी से मिलने के लिए साइकिल से लखनऊ गए। निराला जी उन दिनों लखनऊ में भूसामंडी में रहते थे, यहीं उनकी मुलाकात निराला जी ने डा. रामविलास शर्मा से कराई।

आजीविका/अनुभव व अन्य गतिविधियां : सन् 1937 में कानपुर से वकालत पास करने के बाद 1938 में बांदा आए। केदारजी के चाचा बाबू मुकुंदलाल शहर के नामी वकीलों में से थे। इलाहाबाद उच्च न्यायालय से फरवरी 1938 में वकालत का पेशा शुरू किया और सन् 1945 में बांदा आकर वकालत करने लगे। शेष जीवन यहीं बीता। 16 मार्च 1963 से 6 जुलाई 1970 तक सरकारी वकील (फौजदारी) रहे। सरकारी सेवा से निवृत्त होने के बाद भी कई वर्षों तक दीवानी और फौजदारी की वकालत करते रहे। वकालत केदार जी के लिए कभी पैसा कमाने का जरिया नहीं रही। कचहरी ने उनके दृष्टिकोण को मार्क्स के दर्शन के प्रति और आधारभूत दृढ़ता प्रदान की। इलाहाबाद में रहते हुए ही प्रगतिशील आंदोलन से संबंध बना। *हंस* पत्रिका में बराबर रचनाएं प्रकाशित होती रहीं। 1938 से सीधे प्रगतिशील राजनीति से संबद्ध रहे। सन् 1972 में बांदा में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन का आयोजन किया। आर्य कालेज (कमासिन) के प्रबंधक- संरक्षक भी रहे।

सृजन-यात्रा : केदार जी ने अपनी कविता-सृजन की प्रेरणा एवं विकास की चर्चा करते हुए लिखा है—"मेरे पिता स्व. हनुमान प्रसाद खड़ी और ब्रजभाषा में कभी-कभी कविताएं लिखते थे। उनके पास हिंदी साहित्य की पुस्तकें थीं, उन्हें सुनता था एवं पुस्तकें उलटता-पलटता रहता था। मुझे कविता लिखने की रुचि सन् 1926-27 ई. से हुई और मैं कविता से निरंतर जुड़ता चला गया और मुझे अपनी प्रतिभा को निखारने का अवसर मिलता गया। संसार में कविता ने ही मुझे आदमी बनाया और मैं भी मार्क्सवादी जीवन दर्शन से प्रेरित होकर नेक मानवीय बोध और विचार की कविताएं लिखने लगा। मुझे द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन ही सर्वोत्तम मानवीय बोध का दर्शन लगा। पुरानी भ्रांत धारणाएं समाप्त हो गईं। इसके सामने प्राचीन समस्त जीवन दर्शन के सिद्धांत अर्थहीन लगे। यही कारण था कि मैं न तो किसी परम शक्ति या ईश्वर में विश्वास करता हूं न आदमी से बढ़कर किसी देव-दानव को मानता हूं। मनुष्य है, उसकी चेतना ही सृष्टि है, दूसरी एक सृष्टि प्रकृति की है वह चेतन नहीं है। मनुष्य के श्रम करते-करते चेतना अर्जित की और स्वयं को, देश को, विश्व को मानवीय बोध का बनाने का द्वंद्व और संघर्ष करने लगा, यही सत्य है—चिर सत्य है।"

प्रकाशित कृतियां (कविता संग्रह) : युग की गंगा (1947), नींद के बादल (1947), लोक और आलोक (1957), फूल नहीं रंग बोलते हैं (1965), आग का आईना (1970), गुलमेंहदी (1978), आधुनिक कवि-16 (1978), पंख और पतवार (1980), हे मेरी तुम (1981), मार प्यार की थापें (1981), बंबई का रक्त स्नान (1981), कहें केदार खरी-खरी (1983 सं. अशोक त्रिपाठी), जमुन जल तुम (1984 सं. अशोक त्रिपाठी), अपूर्वा (1984), बोले-बोल अबोल (1985), जो शिलाएं तोड़ते हैं (1986 सं. अशोक त्रिपाठी), आत्म-गंध (1988), अनिहारी हरियाली (1990), खुली आंखें खुले डैने (1993), पुष्पदीप (1994), वसंत में हुई प्रसन्न पृथ्वी (1996 सं. अशोक त्रिपाठी), कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह (1997 सं. अशोक त्रिपाठी), प्रतिनिधि कविताएं (2010 सं. अशोक त्रिपाठी)। **अनुवाद** : देश-देश की कविताएं (1970)। **गद्य साहित्य** : **उपन्यास** : पतिया (1985), बैल बाज़ी मार ले गए (अधूरा उपन्यास) 'साक्षात्कार' पत्रिका में प्रकाशित; **निबंध संग्रह** : समय-समय पर (1970), विचार बोध (1980), विवेक विवेचन (1981); **यात्रा संस्मरण** : बस्ती खिले गुलाबों की (रूस-यात्रा का वृत्तांत : 1975); **पत्र-साहित्य** : मित्र-संवाद (1991सं. —रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी); **साक्षात्कार** : मेरे साक्षात्कार (2009); **प्रकाश्य** : केदारनाथ अग्रवाल रचनावली, (संपादक-अशोक त्रिपाठी)।

पुरस्कार और सम्मान : सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार—कविता संग्रह 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' (1973), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ द्वारा दीर्घकालीन सेवाओं के लिए 1979-80 का विशिष्ट पुरस्कार, साहित्य अकादेमी पुरस्कार—कविता संग्रह 'अपूर्वा' के लिए (1986), म.प्र. साहित्य परिषद, भोपाल का तुलसी सम्मान (1986), म.प्र. साहित्य परिषद, भोपाल का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान (1990)। **मानद उपाधियां** : हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' उपाधि (1989), बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झांसी द्वारा डी. लिट्. उपाधि (1995)। **यात्रा** : 1974 में रूस की यात्रा।

निधन : 22 जून, 2000 (गुरुवार, प्रातः 8:30 बजे), बांदा, उत्तर प्रदेश।

प्रस्तुति : **शिप्रा सिंह**
ए-13, दैनिक जनयुग अपार्टमेंट्स, वसुंधरा एन्क्लेव, दिल्ली-110096

ओ जन-मन के सजग चितेरे!

नागार्जुन

हंसते-हंसते, बातें करते
कैसे हम चढ़ गए धड़ाधड़
बंबेश्वर के सुभग शिखर पर
मुन्ना रह-रह लगा ठोकने
तो टुनटुनिया पत्थर बोला–
हम तो हैं फ़ौलाद, समझना हमें न तुम मामूली पत्थर
नीचे है बुंदेलखंड की रत्न-प्रसविनी भूमि
शीश पर गगन तना है नील मुकुर-सा
नाहक नहीं हमें तुम छेड़ो...
फिर मुन्ना कैमरा खोलकर
उन चट्टानों पर बैठे हम दोनों की छवियां उतारता रहा देर तक

नीचे देखा :
तलहटियों में
छतों और खपरैलोंवाली
सादी-उजली लिपी-पुती दीवारोंवाली
सुंदर नगरी बिछी हुई है
उजले पालोंवाली नौकाओं से शोभित
श्याम-सलिल सरवर है बांदा
नीलम की घाटी में उजला श्वेत कमल-कानन है बांदा!
अपनी इन आंखों पर मुझको
मुश्किल से विश्वास हुआ था
मुंह से सहसा निकल पड़ा–
क्या सचमुच बांदा, इतना सुंदर हो सकता है
यूपी का वह पिछड़ा टाउन कहां हो गया ग़ायब सहसा
बांदा नहीं, अरे यह तो गंधर्व नगर है...

उतरे तो फिर वही शहर सामने आ गया!
अधकच्ची दीवारोंवाली खपरैलों की ही बहार थी
सड़कें तो थीं तंग किंतु जनता उदार थी
बरस रही थी मुस्कानों से विवश ग़रीबी
मुझे दिखाई पड़ी दुर्दशा ही चिरजीवी
ओ जन-मन के सजग चितेरे
साथ लगाए हम दोनों ने बांदा के पच्चीसों फेरे
जनसंस्कृति का प्राणकेंद्र पुस्तकागार वह
वयोवृद्ध मुंशीजी से जो मिला प्यार वह
केन नदी का जलप्रवाह, पोखर नवाब का
वृद्ध सूर्य के चंचल शिशु भास्वर छायानट
सांध्य घनों की सतरंगी छवियों का जमघट

रॉड ज्योति से भूरि-भूरि आलोकित स्टेशन
वहीं पास में भिखमंगों का चिर-अधिवेशन
काग़ज़ के फूलों पर ठिठकी हुई निगाहें

बसें छबीली, धूल भरी वे कच्ची राहें
द्वारपाल-सा जाने कब से नीम खड़ा था
ताऊजी थे बड़े कि जाने वही बड़ा था
नेह-छोह की देवी, ममता की वह मूरत
भूलूंगा मैं भला बहूजी की वह सूरत?
मुन्नू की मुस्कानों का प्यासा बेचारा
चिकना-काला मख़मल का वह बटुआ प्यारा
जी, रमेश थे मुझे ले गए केन नहाने
भूल गया उस दिन दतुअन करना क्यों जाने
शिष्य तुम्हारे शब्दा-शिकारी
तरुण-युगल इक़बाल-मुरारी!
ऊंचे-ऊंचे उड़ती प्रतिभा थी कि परी थी
मेरी ख़ातिर उनमें कितनी ललक भरी थी
रह-रह मुझको याद आ रहे मुन्ना दोनों
तरुणाई के ताज़ा टाइप थे वे मोनो

बाहर-भीतर के वे आंगन
फले पतीतों की वह बगिया
गोध बांधकर सबका वह 'दुखमोचन' सुनना
कड़ी धूप, फिर बूंदाबांदी
फिर शशि का बरसाना चांदी...
चितकबरी चांदनी नीम की छतनारी डालों से
छन-छनकर आती थी
आसमान था साफ़, टहलने निकल पड़े हम

मैं बोला—केदार, तुम्हारे बाल पक गए!
'चिंताओं की घनी भाफ में सीझे जाते हैं बेचारे'—
तुमने कहा—'सुनो नागार्जुन
दुख-दुविधा की प्रबल आंच में
जब दिमाग ही उबल रहा हो
तो बालों का कालापन क्या कम मख़ौल है?'
ठिठक गया मैं, तुम्हें देखने लगा ग़ौर से...
गौर-गेहुआं मुखमंडल चांदनी रात में चमक रहा था!

फैली-फैली आंखों में युग दमक रहा था
लगा सोचने—
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे बांदावाले!
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे साहब काले!
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे आम मवक्किल!
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे शासन की नाकों पर के तिल!
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे ज़िला-अदालत के वे हाकिम!
तुम्हें भला क्या पहचानेंगे मात्र पेट के
बने हुए हैं जो कि मुलाज़िम
प्यारे भाई, मैंने तुमको पहचाना है
समझा-बूझा है, जाना है...

केन-कूल की काली मिट्टी की, वह भी तुम हो!
कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो!
ग्रामवधू की दबी हुई कजरारी चितवन, वह भी तुम हो!
कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहें, वह भी तुम हो
खड़ी-सुनहली फ़सलों की छवि-छटा निराली, वह भी तुम हो!
लाठी लेकर कालरात्रि में करता जो उनकी रखवाली
वह भी तुम हो!

जनगण-मन के जाग्रत शिल्पी
तुम धरती के पुत्र : गगन के तुम जामाता!
नक्षत्रों के स्वजन कुटुंबी, सगे बंधु तुम नद-नदियों के!
झरी ऋचा पर ऋचा तुम्हारे सबल कंठ से
स्वर-लहरी पर थिरक रही है युग की गंगा
अजी, तुम्हारी शब्दशक्ति ने बांध लिया है
भुवनदीप कवि नेरूदा को
मैं बड़भागी, क्योंकि प्राप्त है मुझे तुम्हारा
निश्छल-निर्मल भाईचारा
मैं बड़भागी, तुम जैसे कल्याण मित्र का जिसे सहारा
मैं बड़भागी, क्योंकि चार दिन बुंदेलों के साथ रहा हूं
मैं बड़भागी, क्योंकि केन की लहरों में कुछ देर बहा हूं
बड़भागी हूं, बांट दिया करते हो हर्ष-विषाद
बड़भागी हूं, बार-बार करते रहते हो याद।

(1956)

(*नागार्जुन रचनावली*, भाग-1 से साभार)

चाहे तुम हमको गरियाना

केदारनाथ अग्रवाल

(श्री भवानीप्रसाद मिश्र को कविता में पत्र)

14.1.61

पत्र मिला— मैं धन्य हो गया
द्रव्य अधिक तुम मांग रहे हो,
इतना देना बहुत कठिन है—
कम है धन, इससे कम देंगे—
चाहे चिवड़ा—पापड़ खाना—
चाहे तुम हमको गरियाना—
रेल-किराया तो देंगे ही
ऊपर से भी हम कुछ देंगे—
काम तुम्हारा है—तुमको पूरा करना है
चूक न हो—वर्ना हम पर जूते बरसेंगे
कवि-भाई हो—कवि-साथी हो
कवियों के कर्मठ प्रतीक हो—और हमारे
हृदय कमल की सुरभि-गंध हो
देखो शीष खुला है मेरा
भरी भीड़ में मुझे बचाकर मेरे सिर की रक्षा करना
वही आठ तारीख़ माह फरवरी याद रखना है भाई
भूल न जाना—बहुत प्रयास किया पर इसको बदल न पाए
सुविधा और असुविधा का अब ध्यान न रखना मेरी ख़ातिर
आने का अब वादा करना— खूब सुनाना जी भर कविता
शेष न रह जाए बांदा में जड़ता-शठता—
हे मेरे कवि! नव वसंत का
नमस्कार लो, फूलों की रंगीन
जवानी की मस्ती में स्वर
संवार लो और मुझे
हंसकर उबार लो

सस्नेह तुम्हारा—
केदार

(प्रस्तुति : अशोक त्रिपाठी)

पाब्लो नेरुदा की कविता

अनुवाद : **केदारनाथ अग्रवाल**

आज रात मैं लिख सकता हूं

आज रात मैं लिख सकता हूं उदास से उदास पंक्तियां
लिख सकता हूं उदाहरण स्वरूप, 'चकनाचूर है रात
और दूर वहां कांपते हैं नीचे सितारे'

आकाश में परिभ्रमण करता और गाता है नैश पवन
आज रात मैं लिख सकता हूं उदास से उदास पंक्तियां
मैंने उसे प्यार किया था और कभी-कभार उसने मुझे भी प्यार किया था।

इस रात जैसी रातों में आबद्ध किए रहा मैं उसे अपनी बाहों में
बार-बार मैंने उसे चूमा अनंत आकाश के नीचे
उसने मुझे प्यार किया, कभी-कभार मैंने भी उसे प्यार किया।
कैसे न कोई उसकी निश्छल बड़ी आंखों को प्यार करता।

आज रात मैं लिख सकता हूं उदास से उदास पंक्तियां
यह सोचते हुए कि मैं उसे प्यार नहीं करता
यह महसूसते हुए कि मैंने उसे गंवा दिया है।
यों ही अछोर है रात और भी अधिक अछोर है उसके बग़ैर
और कविता है कि आत्मा पर पड़ रही है ओस जैसे
चारागाह पर पड़ती है।
क्या फर्क़ पड़ता है इससे कि मेरा प्यार न अपनाए रह सका उसे
चकनाचूर है रात और वह नहीं है मेरे साथ।

यही है सब कुछ। कोई गा रहा है दूर वहां दूर।
मेरी आत्मा संतुष्ट नहीं है उसे खोकर

मेरी आंखें तलाशती हैं उसे उस तक जाने के लिए जैसे
मेरा दिल ढूंढता है उसे और वह नहीं है मेरे साथ।

वही रात उन्हीं पेड़ों को विरंजित किए हैं
हम, उस समय के, अब न रहे वही।

अब मैं उसे प्यार नहीं करता, निश्चय ही
किंतु कैसा प्यार करता था मैं उसे।
मेरी आवाज़ हवा को खोजने की कोशिश करती थी कि
उसके सुनने में आ जाए।

दूसरों की—दूसरों की हो जाएगी वह—मेरे चुंबनों के समान पहले
उसकी आवाज़, उसकी दमकती देह, उसकी बड़ी आंखें।

अब मैं उसे प्यार नहीं करता, निश्चय ही
किंतु हो सकता है कि मैं उसे प्यार करता हूं।
प्यार अल्पकालिक है, विस्मरण दीर्घकालिक
क्योंकि इस रात जैसी रातों में आबद्ध किए रहा मैं
उसे अपनी बाहों में
मेरी आत्मा संतुष्ट नहीं है उसे खोकर।

भले ही यह अंतिम दर्द हो जो वह मुझे दे रही है
और ये कविताएं अंतिम कविताएं हों जो मैं उसके लिए लिखता हूं।

माझी ! न बजाओ वंशी : केदार की कविता का स्थापत्य

ओम निश्चल

लगभग तीस बरस के पहले के दौर को याद करता हूं तो पाता हूं कि जब से गाने गुनगुनाने का शौक पैदा हुआ, कुछ गीतों से मन का ऐसा अटूट नाता बना कि आज भी वे गीत या उनके मुखड़े गाहे-ब-गाहे याद हो आते हैं। इन गीतों में *बांधो न नाव इस ठांव बंधु तथा आज मन पावन हुआ है* (निराला), जैसे गीत थे तो *महुआ के नीचे मोती झरे, महुआ के* (बच्चन), *मन का आकाश उड़ा जा रहा, पुरवैया धीरे बहो* (शम्भुनाथ सिंह), *पिया आया बसंत फूल रस के भरे* (गिरिजा कुमार माथुर), *झरने लगे नीम के पत्ते बढ़ने लगी उदासी मन की* (केदारनाथ सिंह) तथा *अगर डोला कभी इस राह से गुजरे कुबेला* (धर्मवीर भारती) जैसे सुमधुर गीतों की छटा भी कुछ कम न थी। वंशी और मादला (ठाकुर प्रसाद सिंह) के बहुतेरे गीत एक दौर में ख़ासा चर्चित रहे। लोक जीवनचर्या के उल्लास और उदासियों से भरे ये गीत आज भी अपने चाक्षुष बिंबों के कारण चित्त को आकर्षित करते हैं। 'पांच जोड़ बांसुरी' गीत का स्मरण होते ही लगता है, सचमुच कोई पर्वत के पार से बांसुरी बजा रहा है—और बासंती रात के आखिरी पल अत्यंत बेसुध, विह्वल और निर्मल हो उठे हैं। बाद के दिनों में गीतों की इस विकल खोज यात्रा में *रात न माने सपने मैंने बहुत उन्हें समझाया* (राजेंद्र किशोर), एक पेड़ *चांदनी लगाया है आंगने, फूले तो आ जाना एक फूल मांगने* (देवेंद्र कुमार), *मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार पथ ही मुड़ गया था* (शिवमंगल सिंह सुमन), जैसे गीत मिले। एक दौर नीरज, रामावतार त्यागी और रामानंद दोषी के गीतों का भी रहा है और उमाकांत मालवीय के ताज़े टटके बिंबों वाले नवगीतों का भी, किंतु नवगीत विधा का कोई ऐसा संपूर्ण कवि याद नहीं आता जिसमें जीवन की सभी हलचलों की आमद हो। वीरेंद्र मिश्र गीत के होकर ही रह गए तथा आखिरी वर्षों में उन्होंने *नदी की धार कटेगी तो नदी रोएगी* जैसा मर्मस्पर्शी गीत हिंदी को दिया—रोमान और अवसाद की गलियों में ले जाने वाले किशन सरोज के कुछ गीत भी भले लगे और हाल ही में प्रकाशित सूर्यभानु गुप्त का गीत—*शाम के वक्त कभी घर में अकेले न रहो*—भी, जो हर अकेले शख़्स का जैसे अपना गीत बन गया। गीत की इस लंबी परंपरा में एक ऐसा कवि भी हमारे बीच रहा है जिसने एकाधिक गीत लिखकर ही संतोष नहीं किया, बल्कि अपने पूरे जीवन को ही छंदमय बना दिया और एक संपूर्ण कवि की प्रतिष्ठा पाई। *माझी न बजाओ वंशी—मेरा मन डोलता* ऐसे अनेक प्रिय गीत रच कर केदारनाथ अग्रवाल हमारे बीच से चले गए पर उनका यह गीत जब भी होठों की नमी पाकर अठखेलियां करता गुनगुनाहट की बंदिशों में तब्दील होता है, एक मद्धिम नीली सुरीली आंच समूचे वातावरण को अपने सांगीतिक लालित्य में अंतर्भुक्त कर लेती है। कविता में ऐसे गोचर और मूर्त बिंबों का सृजन करने वाले कवि कम होंगे जो देखते ही देखते अपने शब्दों, पदावलियों और अंदाज़े-बयां से जीवन की हलचलों का ताना-बाना बुन दें।

केदारनाथ अग्रवाल ऐसे ही कवियों में हैं जो उत्तर प्रदेश के बांदा जनपद के कमासिन गांव में जन्मे और जीवन भर बांदा से बाहर नहीं गए। इलाहाबाद और कानपुर से शिक्षा ग्रहण कर लौटे तो जीविका के लिए अथवा कविता में यश पाने के लिए साहित्य और कला के सत्ता केंद्रों की ओर रुख नहीं किया, दुनियावी प्रलोभन उन्हें खींच न सके। वे बांदा में वकालत करते रहे और अपने कस्बाई मिज़ाज के होने के बावजूद साहित्य की धुरी पर प्रतिष्ठित कवियों की रुढ़िवादी, कलावादी और सौंदर्यवादी प्रवृत्तियों से लोहा लेते रहे। ये वही केदार हैं जिन्होंने कभी *तार सप्तक* में सम्मिलित होने का अज्ञेय का प्रस्ताव ठुकराया और भरसक उनकी जमात से अलग होते हुए भी कविता माधुरी के सृजन-संवर्धन में संलग्न रहे। निराला से नैकट्य के कारण रामविलास शर्मा के भी प्रिय बने और जीवनपर्यंत मैत्री का निर्वाह किया। यह कहना अतिशय नहीं कि रामविलास शर्मा जैसे दिग्गज से उनकी मैत्री न होती तो केदार के कवि का श्रेय और प्रेय प्रायः अलक्षित ही रह जाता। जिस दौर में किसी भी युवा कवि के लिए अज्ञेय के प्रस्ताव की अनदेखी कर पाना संभव न था, यहां तक कि रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध और शमशेर तक सप्तक में शामिल थे, अपरिग्रह की मिसाल बनकर उससे अलग रहना अपने-आपमें सत्ता केंद्रों को चुनौती देना है। सप्तक में न शामिल होकर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन ने अपनी प्रगतिशीलता के चरित्र पर आंच नहीं आने दी, स्वयं को किसी भी सत्ता के प्रति भवदीय नहीं बनने दिया। यही नहीं, बार-बार उन्होंने दुहराया भी कि मैं कतई प्रयोगवादी नहीं हूं।

> *जन्मशती के अवसर पर चर्चा में बराबर बने हुए केदारनाथ अग्रवाल हिंदी की प्रगतिशील काव्य-धारा के उन चुनिंदा कवियों में हैं जिन्होंने औपनिवेशिक और स्वातंत्र्योत्तर भारत में शोषण और वर्चस्व के पाटों में पिसती आम जनता के हक में आवाज़ उठाई है। केदार की कविता की सच्ची प्रासंगिकता यही है कि कविता में उनकी साहसिकता को सलीके से रखने वाली कवि-पीढ़ी उनसे प्रेरणा ले, मौलिक रूप से आगे बढ़े और शमशेरियत की तरह ही केदारियत को भी अपना पाथेय बनाए।*

केदारनाथ अग्रवाल को पढ़ते हुए अक्सर मन में यह बोध जाग्रत होता है कि चाहे जैसे भी हो, केदार ने अपना कवि-कद स्वयं निर्मित किया है। किसी का दिया हुआ नहीं है। *हज़ार ग़म सही दिल में मगर खुशी ये है, हमारे होठों पे मांगी हुई हंसी तो नहीं।* केदार का कवि बुंदेलखंडी ज़मीन और मिज़ाज का कवि है। बुंदेलखंड की धरती की छाती पानी के लिए दरक जाती है, बादल निहारते जनता के कंठ सूख जाते हैं, स्त्रियां गहरे कुंओं और जल के स्रोतों की तलाश में मीलों लंबा सफर कर सिर पर पानी ढोकर लाती हैं फिर भी उफ् नहीं करतीं। केन नदी, जिसका सबसे ज्यादा वर्णन केदार ने अपनी कविताओं में किया है, उससे उनका इतना सख्य भाव है कि उसकी तनिक भी उदासी उन्हें विचलित कर देती है। वे केन किनारे उसका सौंदर्य, उसकी चपलता, उसकी लहरें निहारते घंटों बैठे रह सकते थे।

केदार और नागार्जुन ने एक-दूसरे पर कविता लिखकर अपने नैकट्य का परिचय दिया है। केदार पर लिखते हुए नागार्जुन ने अपने को बड़भागी

और आभारी माना है कि उन्हें केदार जैसा मित्र मिला। आज संपर्कवाद का युग है, मैत्री का मान रखने वाला समाज नहीं रहा। अतिशय स्वार्थ ने मैत्री की बलि चढ़ा दी है और कवियों में मैत्री तो आज लगभग असंभव-सी है। एक कवि दूसरे की सराहना तो कर ही नहीं सकता। आफ् द रिकार्ड और आन द रिकार्ड में काफी अंतर आ गया है। अक्सर कवि अपने समकालीनों पर लिखने या कुछ कहने से बचना चाहते हैं, बेशक पीठ पीछे की टिप्पणियों से बाज़ नहीं आएं। ऐसे दौर में नागार्जुन-केदार और रामविलास-केदार मैत्री अचरज में डाल देती है। मात्र चार दिनों के बांदा प्रवास में नागार्जुन ने वह सब देख लिया जो केदार और उनके इर्द-गिर्द व्याप्त था—समूचा परिवेश, फौलादी पत्थर, बुंदेलखंड की रसप्रसविनी भूमि, गंधर्व नगर जैसा दिपदिपाता बांदा, मुस्कानों से बरसती ग़रीबी, केन का प्रवाह, भिखमंगों का चिर अधिवेशन, धूल भरी राहें, प्रशस्त आंगन, पपीतों की बगिया, चितकबरी चांदनी, नीम की छतनार डालें और केदार के गेहुएं मुखमंडल पर फैली आंखों में दमकता युग। बांदा से लौट कर नागार्जुन लिखते हैं—*तुम्हें भला क्या पहचानेंगे बांदा वाले/तुम्हें भला क्या पहचानेंगे साहब काले/तुम्हें भला क्या पहचानेंगे आम मुवक्किल/तुम्हें भला क्या पहचानेंगे शासन की नाकों पर के तिल/तुम्हें भला क्या पहचानेंगे जिला अदालत के वे हाकिम/तुम्हें भला क्या पहचानेंगे मात्र पेट के बने हुए हैं जो कि मुलाज़िम/प्यारे भाई, मैंने तुमको पहचाना है/समझा-बूझा है, जाना है.../केन-कूल की काली मिट्टी, वह भी तुम हो/कालिंजर का चौड़ा सीना, वह भी तुम हो/ग्रामवधू की दबी हुई कजरारी चितवन, वह भी तुम हो/कुपित कृषक की टेढ़ी भौंहें, वह भी तुम हो/खड़ी सुनहली फ़सलों की छवि छटा निराली, वह भी तुम हो/लाठी लेकर कालरात्रि में करता जो उनकी रखवाली/वह भी तुम हो।* (*ओ जन मन के सजग चितेरे*, नागार्जुन)। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन और त्रिलोचन लगभग एक ही भावधारा के कवि हैं। कविता कला में कौन कितना गहरा है, यह बात अलग है, किंतु मिज़ाज तीनों कवियों का लगभग एक-सा है। केदार कहते हैं—*मर जाऊंगा तब भी तुमसे दूर नहीं हो पाऊंगा/ मेरे देश तुम्हारी छाती की मिट्टी हो जाऊंगा।* नागार्जुन भी अपने आखिरी दौर में अपने खेत को याद करते हैं। *अपने खेत में* उनका संग्रह उनके आखिरी दिनों में ही आया था, जो अपनी ज़मीन से जुड़ने के इसी भाव-बोध से भरा है। अपने अंतिम दिनों में त्रिलोचन के भी दो संग्रह आए। *जीने की कला* और उससे पहले *मेरा घर*। *जीने की कला* में वे प्रकृति और खेती-किसानी से जुड़कर लिखी कविताओं में जैसे लोगों को जीने की कला सिखा रहे हों। किंतु *मेरा घर* में उनका यह कहना कि "मुझे अपने मरने का थोड़ा भी दुख नहीं, मेरे मर जाने पर शब्दों से मेरा संबंध छूट जाएगा"—जैसे कवि की आात्मिक कचोट का परिचायक है। कवियों का शब्दों से अटूट नाता होता है। ध्यान से देखें तो शब्द त्रिलोचन की कविता का बीज शब्द है—श्लेष से भरा। इस शीर्षक से उनका एक संग्रह भी है। उनके शब्द—लोक के, समाज के, जनपद के बोले-बरते हुए शब्द हैं—"उस धरती से उपजे हैं जो ताप से ताई हुई है, जो चैती और अमोला की धरती है।"

इस तरह तीनों ही कवि अपनी धरती, अपने समाज, परिवेश और प्रकृति से गहरा नाता रखने वाले कवि हैं, शब्दों के मर्म, कथ्य और उस जन-संस्कृति के सद्भावी कवियों में हैं। उन्होंने अपनी कविता-यात्रा में लोक के मिज़ाज को, गंवई गांव की धूल-मिट्टी से जन्मी भाषा को आंतरिकता से सहेजा है। नागार्जुन बांग्ला, मैथिली, संस्कृत, पालि और हिंदी के ज्ञाता व छंदों के मर्मज्ञ थे तो त्रिलोचन अवधी, हिंदी और उर्दू के निष्णात रसिक, रचनाकार, वाग्गेयकार व छंदों के सम्यक साधक। केदारनाथ अग्रवाल में बुंदेलखंड की धरती का सत्व, तत्त्व बोलता है, उनका निर्झर जैसा मन केन के जल की उत्ताल तरंगों-सा प्रवाहित होता है। वे धुर देहात, गांव और कस्बे की संवेदना के कवि तो हैं ही, औपनिवेशिक भारत में जनता की बदहाली से परिचित कवि भी जिन्होंने अपने कवित्व को कला की कारीगरी में न बदल कर उसे जनता की बोली बानी के सांचे में ही ढाला, जिससे वह वक्त ज़रूरत कविता के साथ-साथ निर्बल मनुष्य के जीने का संबल बन सके, नारों और रोजमर्रा के काम आने वाले मुहावरे में भी ढल सके और जीवन के आड़े वक्त काम आए। कहना न होगा कि जन जीवन में सबसे ज्यादा उद्धृत और मौके पर काम आने वाले तुलसी और कबीर के बाद कदाचित निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन और केदार जैसे कवि ही हैं जिनकी रचनाओं में जीवन की बहुवस्तुस्पर्शी गतिविधियों के चित्रण और सुभाषित मिलते हैं, निराशाओं और हताशाओं से लड़ने-जूझने की प्रेरणा भी। हिंदीभाषी समाज ऐसे कवियों की तरफ उम्मीद से देखता है।

जन्मशती के अवसर पर चर्चा में बराबर बने हुए केदारनाथ अग्रवाल हिंदी की प्रगतिशील काव्य-धारा के उन चुनिंदा कवियों में हैं जिन्होंने औपनिवेशिक और स्वातंत्र्योत्तर भारत में शोषण और वर्चस्व के पाटों में पिसती आम जनता के हक में आवाज उठाई है। प्रगतिशील हलक़े के कवियों में उनसे कोई तुलनीय हो सकता है तो वह नागार्जुन हैं। निराला के बाद कविता को एक तरफ शिल्प-सजग और प्रयोगवादी कविता की राह पर ले जाने वाले अज्ञेय जैसे आधुनिकतावादी और शमशेर जैसे ऐंद्रिय बोध के सौंदर्यग्राही कवि थे तो दूसरी तरफ जनता के बीचोंबीच रहकर उनके शोषण, पीड़ा, ग़रीबी और ग़ुलामी की ज़ंजीरों में जकड़े देश के स्वाभिमान को स्वर देने वाले प्रकृति के अनुगायक केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन तथा त्रिलोचन जैसे कवि थे जिनकी रचनाएं आत्मनिमग्न और निज के राग-रंजन में दत्तचित्त होकर नहीं रह जातीं बल्कि जनता से सीधा संवाद करती हैं। उनकी कविताओं में वैसा ही आवेग है जैसा आम जनता के भीतर पाया जाता है। खरी-खरी और दो टूक लहजे में कहने वाले केदार की अनगढ़ कविता काव्य-रसिकों को तो लुभाती ही है, वक्त ज़रूरत उसे नारे के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। केदारनाथ अग्रवाल पेशे से वकील होने के कारण जैसे जनता के हितों के पैरोकार नजर आते हैं। अकारण नहीं कि अपनी इसी साफ़गोई और सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण रामविलास शर्मा जैसे दिग्गज आलोचक ने निराला के बाद यदि किसी को अपनी आलोचना में ऊंचा आसन दिया है तो वह केदारनाथ अग्रवाल ही हैं। यों उन्होंने शमशेर के गद्य की भी भूरि-भूरि सराहना की है। पर उनके पद्य के प्रति कदाचित संशयी थे। उनके लेखे, शमशेर के लेखन में जो पद्य में नहीं है, वही सबसे महत्त्वपूर्ण है। चाहे वह गद्य उनके निबंधों में हो, चाहे उनकी कविताओं में। (*शमशेर बहादुर सिंह की कुछ गद्य रचनाएं*, भूमिका)

प्रगतिशील कवियों में उनसे अग्रतर स्थिति में नागार्जुन और त्रिलोचन थे किंतु रामविलास शर्मा ने केदारनाथ अग्रवाल पर केंद्रित पुस्तक *प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल* लिखकर जताया कि प्रगतिशील साहित्य और वामपक्ष, जनवादी क्रांति, पूर्ण स्वाधीनता, यथार्थवाद और नई प्रगतिशीलता तथा कविता की सामाजिक प्रासंगिकता के आईने में केदार का अपना महत्त्व है। उन्होंने *घन गरजे जन गरजे, आग लगे इस रामराज में, एक हथौड़े वाला घर में और हुआ, दीन-दुखी यह कुनबा, धूप धरा पर उतरी, मैं घूमूंगा केन-किनारे, मेड़ पर इस खेत की बैठा अकेला, जिंदगी की भीड़ में, रेत मैं हूं जमुन जल तुम, तथा मैं लड़ाई लड़ रहा हूं*—इन दस शीर्षकों में केदार की प्रिय कविताओं का अपना चयन भी प्रस्तुत किया और कहना न होगा कि केदार की कविताओं का विषय-वस्तुवार इतना सटीक और समावेशी चयन कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस चयन से केदारनाथ अग्रवाल के कवि की शख्सियत और कृतित्व के वे सभी पहलू रोशन होते हैं जिनसे प्रगतिशील कविता की चारित्रिक पहचान की

जा सकती है।

केदारनाथ अग्रवाल उस धरती के कवि हैं जो त्रिलोचन की धरती से थोड़ा अलग है—लगभग पठारी क्षेत्र, जहां वर्षा के अभाव में धरती का सीना दरक उठता है, किसानों का श्रम नियति के भाग्यलेख के आगे निष्प्रभ हो उठता है। ऐसे परिवेश से होकर निकले केदार के यहां बादलों की तनिक भी गरज कवि की संवेदना को प्राणवायु से भर देती है। जलाभाव से ग्रस्त इस इलाके में कदाचित नदी के लिए कवि के मन में इसीलिए इतना प्रेम भरा है (मैं घूमूंगा केन किनारे) कि उसे नदी की उदासी (आज नदी बेहद उदास थी) और तेज धार का कर्मठ पानी विचलित करता है तो केन के तड़पने और काल के कगार पर खड़े पेड़ों की पीड़ा कचोटती है।

रामविलास शर्मा भारत में प्रगतिशील साहित्य के संगठित आंदोलन की शुरुआत 1936 के लखनऊ के प्रगतिशील लेखक सम्मेलन से मानते हैं। क्योंकि लंदन में 1935 में मुल्कराज आनंद और सज्जाद ज़हीर द्वारा स्थापित भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खात्मे या पूर्ण स्वाधीनता का कहीं कोई जिक्र नहीं था। विडंबना यह कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों के पोषण में लगी शक्तियां हिंदुस्तान की पूर्ण स्वाधीनता में बाधक थीं। रामविलास जी ने भारत में प्रगतिशील आंदोलन के विकास में बाधक वजहों की सम्यक् मीमांसा की है और यह बताया है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध जनवादी चेतना का पहला बड़ा आह्वान केदार के संग्रह *युग की गंगा* में मिलता है जो मार्च 47 में प्रकाशित हुआ था। क्या संयोग है कि 1953 में आया नागार्जुन का संग्रह *युगधारा* स्वाधीनता की स्वातंत्र्योत्तर परिणति पर प्रहार करते हुए केदार की परंपरा को ही आगे बढ़ाता है। निराला के *नए पत्ते* पर भी इस युगीन विक्षोभ की छाया है। बेशक अज्ञेय की प्रयोगवादी-धारा ने प्रगतिशीलता के पाले में खड़े कुछ लेखकों, कवियों को अपनी ओर आकर्षित किया किंतु अंततः जनाकांक्षाओं के बलबूते प्रगतिशील कविता धारा को व्यापक जनसमर्थन मिला। यहां तक कि शमशेर जैसे महीन संवेदना के कवि तक अज्ञेय की सुरुचि के कायल होते हुए भी यही कहते रहे कि कवि-दृष्टि उन्हें नागार्जुन और त्रिलोचन से ही मिली। केदारनाथ अग्रवाल शहरी आधुनिकता के कवि नहीं हैं। बेशक, उनके यहां कला की बारीक बीनाई न हो, भाषा की भंगिमा नई न हो, पर जनकवि होने के नाते वे काव्यभाषा के लिए कोशीय कवायद नहीं करते, अनावश्यक बेल-बूटे नहीं टांकते—लोक के पास जाते हैं, सानी-पानी और गांव के गलियारों की धूल-धक्कड़ के बीच से भाषा उठाते और बरतते हैं। इसीलिए वे इस विश्वास से कह पाते हैं—'जरा-मरण से हार न सकते मेरे अक्षर/ मेरी कविताएं गाएगी जनता सस्वर।'

किसानों, मजदूरों के लिए गीत लिखने वाले, उनके संघर्षों के चित्र उकेरने वाले केदार को कविवर राजेश जोशी ने नगरीय संवेदना का कवि माना है। *एक कवि की नोट बुक* में उन्होंने केदार पर लिखते हुए लिखा है कि 'मुझे लगता है केदार मूलतः नागरीय संस्कार के ही कवि हैं। उनकी संवेदना किसानी नहीं है, वह नागरीय है। उनका कहना है कि केदार जी ने लोकगीतों का जो स्वाद ग्रहण किया है, वह लोकजीवन या लोक साहित्य से प्राप्त नहीं है। वह वस्तुतः साहित्य या कला न होकर मात्र मनुष्य की गतिविधि, एक जीवन प्रक्रिया का हिस्सा है।' मुझे राजेश जोशी का यह कथन मान्य नहीं लगता। कौन कहेगा कि इन 'धनहा खेतों के ऊपर' जैसा खेती-किसानी में रमा गीत लिखने वाला कवि नागरीय होगा। इस कविता की पंक्तियां देखें और निर्णय करें कि केदार की कवि संवेदना गंवई है या नगरीय, वे किसानी चेतना के कवि हैं या शहराती भावबोध के—*आए हो तो उमड़-घुमड़कर, नीचे आकर/और निकट से इन धनहा खेतों के ऊपर/अनुकंपा का झला मारकर जी उंड़ेलकर/झम-झम, झम-झम बरसो/गिरे दौंगरा गद-गद, गद-गद/लिए हौसला झड़ी न टूटे/भरे खेत, उफनाएं, लहरें/हरसें, हहरें/रोपे धान बढ़ें बल पाएं, पौरुष पाएं/हरी-भरी खेती हो जाए, सुख सरसाए।* (*प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल*, पृष्ठ 263)

उनके इसी तेवर को देखकर शमशेर ने 'एक बिल्कुल पर्सनल ऐसे' में अपने इंप्रेशंस दर्ज करते हुए लिखा है—किसान और मजदूर के हाथ और रग-पुट्ठे कहीं हमारे हाथों और रग-पुट्ठों को रगड़ते हुए से लगते हैं और अपना वेग और सहज शक्ति बरबस ही हमें महसूस कराते हैं। उनके यथार्थ वातावरण की गृहिणी, उनके किसान, युवक और युवती और खेतों की सजीव हरियाली और भोली-भाली रंगीनी अपना परिचय हमेशा के लिए हमसे दृढ़ कर लेती है। (*कुछ और गद्य रचनाएं*, शमशेर बहादुर सिंह, पृष्ठ 20) कोई किसानी चेतना का कवि ही आषाढ़ की पहली झमाझम बारिश के लिए दौंगरा का इस्तेमाल कर सकता है, नगरीय कवि नहीं। शमशेर ने अपने उक्त इंप्रेशन्स के अलावा, *फूल नहीं रंग बोलते हैं* पर विस्तृत समीक्षा लिखी है। कदाचित रामविलास शर्मा के बाद उस दौर में शमशेर ने ही केदार की कविता की मौलिक रंगतों को बारीकी से पकड़ा है। शमशेर का उनके बारे में यह कहना उनका सटीक मूल्यांकन है कि 'उसकी वाणी में एक कस-बल है जो बुंदेलखंड का ही नहीं, उसका तो है ही, हर स्वस्थ मेहनतकश नौजवान का भी है। उसके शिल्प में बारीकियां न होते हुए भी, उसके अंदाज में ज़ोर और असर है और एक अजीब-सी ताजगी। इधर की उसकी कविताएं प्रेम और प्रकृति से संबंधित, अपने ढले हुए सौंदर्य में हजार शिल्पगत बारीकियों को शर्माती हैं' (वही, पृष्ठ 213)। इस मूल्यांकन में उनकी सीमाएं भी बताई गई हैं। ताज़गी तो है पर अजीब-सी ताज़गी। दूसरे, शिल्प में बारीकियां न होते हुए भी अंदाज में ज़ोर और असर। और फिर जैसा भी उनकी प्रेम और प्रकृति की कविताओं का ढला हुआ सौंदर्य है, वह हजार शिल्पगत बारीकियों पर भारी पड़ता है। कहने का अर्थ यह कि केदार उस कवि परंपरा के कवि हैं जिनकी वाणी में ओज है, तेज है, शिल्प की बारीक बीनाई न होते हुए भी उसमें एक ताज़गी है और सच तो यह कि सादगी में रची-बसी उनकी कविताएं शिल्प-सज्जा की कमी के बावजूद असर करती हैं।

रामविलास शर्मा ने ही *अच्छे गद्य की पहचान* शीर्षक भूमिका में लिखा है कि 'याद रहे कविता केवल जनगान नहीं, उसमें जनसंघर्षों की गूंज के अलावा और बहुत कुछ है। उसमें व्यक्तित्व की उलझनों के लिए जगह है, लेकिन सामाजिक दायित्व और जन आंदोलनों से कटकर कविता केवल व्यक्तिगत कुंठाओं के दायरे में घुमड़ती रहे, यह भी एक अस्वाभाविक क्रिया है।' —हमें यह देखने की ज़रूरत है कि केदार अपनी कविताओं में कहां तक इन अपेक्षाओं पर खरे उतरते हैं। क्या उनकी कविताएं केवल जनगान हैं या वे कविता-कला की दूसरी कसौटियों पर भी खरी उतरती हैं। कितनी विडंबना है कि कभी केदार जी ने भरोसे और आशावादी तेवर के साथ लिखा था—'वह जन मारे नहीं मरेगा।' आज राज्य व्यवस्था का सबसे ज्यादा प्रहार इसी जनता पर है। करों के बोझ से दबी, दैवी आपदाओं, लालफ़ीताशाही से ग्रस्त, पानी, बिजली और मूलभूत सुविधाओं के लिए त्राहि-त्राहि करती जनता आज भी किस तर्क से जीवित है, यह अचरज का विषय है।

केदार के भीतर एक क्रांतिकारी कवि का तेवर है, लोक कवि का अंदाज़े बयां है, रोमानी अनुभूति से भीगी संवेदना है और समाज के शोषित, दलित तबके से गहरी सहानुभूति भी तथा मेहनतकशों, किसानों से हार्दिक संवेदना भी। वे प्रकृति से गहरा संपर्क रखने वाले कवियों में हैं। कविताओं में कल्पना में उड़ान भरने वाली तितलियों के चित्र उन्होंने नहीं आंके हैं बल्कि धरती की सोंधी महक, उसके रंग-बिरंगे फूलों, पशु-पक्षियों, हल, बैल, दीन-दुखियों के बीच गुज़र-बसर करने वाली जनता की व्यथा दर्ज की है। लोग उन्हें कचहरी में ढूंढ़ते, पर केदार तो लुटी-पिटी जनता की लड़ाई कचहरी में नहीं, कविताओं में लड़ते थे। लिहाज़ा, कचहरी के फुलस्केप वाटरमार्क पेपर में हलफ़नामे के बजाय उनकी कविताएं दर्ज होतीं, जैसे प्रसाद रसीद बहियों में कविताएं टांकते। मानो, वे जनता जनार्दन से कबीर के लहजे में कहना चाहते हों—*मोको कहां ढूढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।* केदार की कविताओं से गुजरते हुए लगता है, हां! यह कवि सच्चे अर्थों में भारत का कवि है, भारत की जनता का कवि है, जनता जो निरक्षर है, अल्प साक्षर है, निम्नवर्गीय है—दो जून की रोटी के लिए जिसका सारा संघर्ष है, और वही मुहाल है, जो लालफ़ीताशाही, राजनीतिक चालों, किसान-मजदूर विरोधी नीतियां बनाने वाली सरकारों और जनता की कमाई हड़पने वाले पूंजीपतियों, नवधनाढ्यों, बहुराष्ट्रीय निगमों की मिलीभगत से त्रस्त है जो न्याय पाने की क्रूर और कुटिल प्रक्रियाओं का भुक्तभोगी है, जो जंगली जनतंत्र में लोकतंत्र की पवित्र आस्था की पोटली संभाले गरबीली ग़रीबी में दिन गुजार रहा है। केदार जीवन-भर इसी जनता को जागरूक बनाने का काम करते रहे।

उनमें गंवई अक्खड़ता थी तो कवि सुलभ मस्ती भी। केन के किनारे बैठकर उन्हें मछलियों की उछल-कूद और बगुलों की श्वेतपंक्ति निहारते हुए देखा जा सकता था तो यह अनुनय करते हुए भी कि *माझी न बजाओ वंशी, मेरा मन डोलता।* परकीया प्रेम से आच्छादित हिंदी कविता में उन्होंने दांपत्य प्रेम की विरल दुनिया रची और *हे मेरी तुम, जमुन जल तुम तथा मार प्यार की थापें* जैसे उदात्त प्रणय में भीगे संग्रह हिंदी को दिए। कमीज़ की बटन टूटती तो उन्हें पत्नी याद आतीं। खुद को रेत और पत्नी को जमुन-जल बताते तो सजल संवेदना में स्नात स्त्री की बांकी छवि आंखों में तिर उठती। प्रिय पत्नी को रेत पर बैठने का आमंत्रण देते, हाथों में हाथ लिए जीवन-भर साथ निभाने का संकल्प लेते, अपनी हार, अपनी व्यथा-कथा सुनाते, एक-दूसरे को निहार कर सुख पाते, लोचनों, कुंतलों, बाहुओं में वैसे ही डूबा महसूस करते जैसे सदियों से पहाड़ सिंधु में डूबे हैं मगर आज तक नहीं ऊबे। रागानुराग की जैसी अनूठी संवेदना उन्होंने उकेरी है, वैसी शाश्वत सनातन संवेदना कदाचित अन्यत्र न दिखे। दांपत्य में ही प्रेम के अलौकिक सुखों की अनुभूति पाने वाले केदार ने अनुराग और स्नेह की जैसी निर्झरिणी बहाई है, वैसी अन्यत्र नहीं दिखती। पत्नी प्रेम तो सभी विवाहितों को सुलभ है। लोग प्रेम भी करते हैं पर दांपत्य को वह गौरव नहीं देते जो गौरव केदार ने दिया है। मैं जानता हूं कि दुनिया-भर की अमर प्रेम कथाओं के पीछे किसी दांपत्य का बड़ा आधार नहीं है। प्रेमियों ने तो सदैव दांपत्य को जैसे बंधन ही माना है। प्रेम निर्बंध, स्वच्छंद प्रिया व्यापार है। इसकी कोई सीमाबद्धता नहीं है, यहां नैतिक-अनैतिक का कोई द्वंद्व नहीं है। फिर भी केदार ने प्रेम की उत्ताल तरंगों में जीवन के चरम सुख की अनुभूति की है जो उन्हें काम्य और प्राप्त रहा है। उनके प्रेम में देह की उत्सवधर्मिता भी है, देह से पार जाने का प्रयत्न भी। संभवतः रामविलास जी जैसे सुहृद उन्हें न टोकते तो प्रेम की और भी कितनी दिव्य झांकियां वे प्रस्तुत करते। उन्हें पता भी होता कि प्रेम एक गोपन क्रिया व्यापार है, विज्ञापन की वस्तु नहीं, तो भी उनका नेह-निर्झर कहां थमने वाला था। फिर भी केदार जी का एक रुचित रम्य प्रेमगीत द्रष्टव्य है—*डाल दे दो मुझे अपनी/जहां छोटी लगी पत्ती की तरह हिलता रहूं मैं/और जीवित बांह में हिलता रहूं मैं/हर हवा के हौसले में—होश में जीता रहूं मैं/धूप सूरज की गरम से भी गरम पीता रहूं मैं/जुगनुओं की आग पतले ओठ से छूता रहूं मैं/डाल दे दो मुझे अपनी —बांह दे दो मुझे अपनी।* (*प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल,* पृष्ठ 292) केदार की कविता स्वाधीनता की पुकार है। वह भारत में ब्रिटिश पूंजी के हितुआ कांग्रेसी नेताओं की नीयत पर प्रहार करती है। समाजवाद नहीं, जनवाद का सपना देखती है। पसीना बहाकर शिलाएं तोड़ते श्रमिकों का यह कह कर स्तवन करती है कि जिंदगी को वह गढ़ेंगे जो शिलाएं तोड़ते हैं, जो भगीरथ नीर की निर्भय शिराएं मोड़ते हैं। निराला ने कभी इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती युवती का एक मार्मिक चित्र आंका था। निराला के लिए यह दृश्य सह पाना कठिन था। केदार पत्थर तोड़ने को कोई हेय काम नहीं मानते, बल्कि इसके विपरीत इसे मजदूर के भाग्य की सौगात मानते हुए सरकार को सुनाते हुए कहते हैं—*सुन ले री सरकार/ कयामत ढाने वाला और हुआ/ एक हथौड़े वाला घर में और हुआ।* केदार उस रामराज की मुख़ालफ़त करते हैं जिसमें ग़रीबों की चमड़ी से अमीरों की ढोलक मढ़ी जाती हो। ठीक ही तो कहते हैं वे, *जहां ग़रीबों की रोटी रूठे, कौर छिने, थाली अन्न बिना सूनी रहे, ऐसे रामराज को आग लगे।* याद आता है एक लोक कवि का यह कथन कि *तोहरे सोने कै तिलरिया हमरे काहे लागै हो।*

रामविलास शर्मा ने केदार जी को किसानी चेतना का कवि कहा है। कविता में राजनीतिक पत्रकारिता की छवि प्रस्तुत करने वाले कवि के रूप में स्मरण किया है। भारतीय जनता की अस्मिता का कवि माना है, आस्था और प्रतिश्रुति का कवि माना है, जनजागरण का कवि माना है तथा इस बात से वे आश्वस्त हैं कि केदार का जीवन वाक्य-संसार को क्रिया, कर्ता, कर्म से भर रहा है। रामविलास शर्मा का कहना है कि केदार की कविता में उदात्तता और सादगी का साहचर्य है—विरुद्धों के सामंजस्य जैसा। यहां तक कि उन्होंने उनकी प्रेम कविताओं का भी सामाजिक महत्त्व कम नहीं माना है। उनकी प्रेम कविताओं में रीतिवादियों का-सा उद्दीपन विभाव नहीं, जीवन की परस्परता और समरसता है। 'बसंती हवा' जैसी अल्हड़ कविता लिखने वाले केदारनाथ अग्रवाल के लिए छंद कविता के स्थापत्य का ज़रूरी तत्व है, किंतु वे छंद के बंदी नहीं दिखते, गद्य की गति और यति का कविता में अंतर्भाव करते हुए लोक की समस्त जानी-पहचानी भंगिमाओं का रूपांतरण करते हैं। इस हद तक कि उसका गुस्सा, उसका प्रेम, उसकी करुणा, उसकी त्रासदी, उसका शोषण, उसकी अस्मिता, उसकी गरबीली ग़रीबी (दैन्य नहीं) सब कुछ कविता की शिराओं और धड़कनों में प्रतिबिंबित हो। केदार से रामविलास जी की गहरी मैत्री थी। इसलिए अचरज

नहीं कि रामविलास शर्मा के केदार अनुशीलन में उनका सख्य-भाव प्रकट है।

संयोग से यह वर्ष चार बड़े कवियों का शताब्दी वर्ष है—अज्ञेय, शमशेर, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल। कवि अपने लिए तो लिखता ही है, आने वाली पीढ़ियों के लिए भी लिखता है। यदि उसका लिखा आज के साथ-साथ कल भी प्रासंगिक है तो पीढ़ियां खुद उसे तलाश कर पढ़ेंगी। शमशेर एक कवि के रूप में अज्ञेय की ही तरह शिक्षित समाज के कवि हैं। अपनी संवेदना, तराश, संश्लिष्टता और शिल्प में अपने समकालीनों से अलग और अनूठे। उन्हें समझने के लिए पाठक का एक बौद्धिक और संवेदी स्तर होना चाहिए। जैसे जे. कृष्णमूर्ति को हृदयंगम करने के लिए उस चिंतन के स्वीकार्य स्तर पर व्यक्ति का होना लाजिमी है। तभी अंतःसंप्रेषण और पारस्परिक संवाद संभव है। शमशेर को समझने-सराहने वाला समाज कितना कम है। अभी भी उपलब्ध टीकाओं के बावजूद उन्हें कितना समझा जा सका है, कहना कठिन है। नागार्जुन राजनीतिक-सामाजिक चेतना के बड़े कवियों में हैं। मैथिली और हिंदी भाषी समाज दोनों पर गहरी पकड़ रही है उनकी। उनकी कविता आजादी के बाद भारतीय राज्य व्यवस्था की विडंबनाओं का आलोचनात्मक जायज़ा लेती है। लोकतांत्रिक प्रहसन पर प्रहार करती है। उनकी कविता से जनता का गुस्सा, उल्लास और उसका आत्मगौरव प्रकट होता है। बोली-बानी, छंद, रूप, भाषा और अंदाज़ेबयां के जितने प्रयोग और स्तर उनके यहां मिलते हैं, उतने औरों के यहां नहीं। सच कहें तो कबीर-सी अक्खड़ता आधुनिक कवियों में पहली बार नागार्जुन के यहां ही चरितार्थ होती है। वे एक ऐसे कवि हैं जिनके व्यंग्य और कटाक्ष से न इजारेदार बच पाए हैं न हाकिम-हुक्काम और न राजनीतिक सत्ता की पारिवारिक फसल उगाने वाले। उनके उपन्यासों के चरित्रों को देखें तो हिंदुस्तान की आधी से ज्यादा आबादी का कच्चा-चिट्ठा सामने आ जाता है। नागार्जुन की सरणि पर चलने वाले केदारनाथ अग्रवाल कवि तो उम्दा हैं। छोटे-छोटे गीत और कविताएं लिखने में उन्हें महारत हासिल है पर उन्होंने न तो ऐसी दुनिया देखी जैसी नागार्जुन ने, न ऐसे आत्मसंघर्ष से गुजरे जहां चार दिनों तक चूल्हे के रोने और चक्की की उदासी का सन्नाटा व्याप्त हो। केदार को वह परिदृश्य भी सुलभ न हुआ, जिस परिदृश्य से गुजर कर *हरिजनगाथा* जैसी कलंकित कविताएं जन्म लेती हैं या निराला की *सरोज-स्मृति* जैसी शोकगीतिका का उद्भव होता है। नागार्जुन किसी दल या विचारधारा के पिछलग्गू न थे, वे शत-प्रतिशत आम आदमी के दुखदर्द के कवि हैं। हर इल्म-ओ-फ़न के उस्ताद। केदारनाथ अग्रवाल के प्रति उपेक्षा का जो आलम है, वह इसलिए नहीं है कि उनकी जन्मशती मनाने में लोगों की रुचि नहीं है या कुछ ही लोग हैं जो मना रहे हैं। आज भी निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन और केदार से प्रेरणा लेने वाली पीढ़ी का कविता में वर्चस्व है। अज्ञेय तो मानते ही थे कि उनकी कविताएं आम आदमी के लिए नही हैं, लेकिन जिनकी कविताएं आम आदमी के लिए हैं, मजदूर-किसानों के लिए हैं, उनकी कविताओं को ही जनता क्यों भुला बैठी है। दरअसल ऐसा समाज ही हम बनाने में अब तक कामयाब नहीं हो पाए हैं जिसमें कवियों, कलाकारों के प्रति लोगों में दीवानगी पैदा हो। एक ज़माना था, बच्चन ने इलाहाबाद में साइकिल पर चलते हुए *मधुशाला* की प्रतियां बेचीं। लोगों में कविता के लिए बेचैनी पैदा की। उसके प्रति लोगों में आज भी क्रेज़ है। गांव-कस्बे के मेलों-ठेलों में लोक-कवि आज भी ऐसा ही करते हैं। मजदूरों, किसानों के एक अन्य प्रगतिशील कवि शील की कुछ कविताओं की प्रशंसा शमशेर ने भी की है। पर आज क्या स्थिति है? कविता मंचों पर या तो वीर रस के कवियों का चीत्कार है, या हास्यरस के कवियों का हा! हा! कार। सच्ची कविता तो पाठ्यपुस्तकों में दबकर रह गई है या कुछ गुणग्राहकों के अंतःकरण में विराजती है। भूमंडलीकरण और भौतिकतावाद ने सांस्कृतिक अनुष्ठानों को भी उत्पाद में बदल दिया है। ऐसी स्थिति में किसानों, मजदूरों के सुख-दुख, प्रकृति के उल्लास और आत्मप्रेम की गाथा गाने वाले कवि केदार की उपेक्षा हो रही हो तो अचरज नहीं।

एक बात और केदारनाथ अग्रवाल की कविता में वाचिक कविता के अनन्य गुण हैं। चाहे वे औपनिवेशिक सत्ता के विरोध में लिखी कविताएं हों, या आजादी के बाद के परिदृश्य पर, प्रकृति पर या किसानों, मजदूरों को लेकर—उनकी कविताओं में गेयता है। वाचिक सरसता है। कविताओं-गीतों के शीर्षक भी सुगठित और लुभावने हैं। इस तरह हम उन्हें वाचिक परंपरा का कवि भी मान सकते हैं। इसीलिए उनकी कविता के पाठ्य रूप में आते ही जब हम उसे कविता की अन्य कसौटियों पर कसते हैं, तब लगता है, यह कविता तो है, पर शमशेर कहीं इससे आगे के कवि हैं, या अज्ञेय की बात कुछ और ही है और नागार्जुन, त्रिलोचन की कविताओं का पाठ्य संसार ज्यादा समृद्ध और बहुवस्तुस्पर्शी वक्रताओं और अंतर्ध्वनियों से लैस है। केदार की कविता में सरलता को भी गुण, धर्म के रूप में देखा जाता रहा है। पर हर सरल सहज कवि अच्छा भी हो, यह ज़रूरी नहीं। अजय तिवारी भी सरलता की बात करते हुए मानते हैं, 'सरलता गुण है तो दोष भी। सरलता यदि इस अर्थ में है कि सहज हूं अति कठिन—तो और बात है। किंतु सरलता—सपाटबयानी में बदल जाए तो काव्य मूल्यों की कसौटी पर कविता कमतर मालूम होती है। केदार की कविता युगीन आवश्यकताओं की उपज है। उस समय ऐसे ही जुझारु, सरल, सहज और दो टूक कहने-लिखने वाले कवियों की ज़रूरत थी, जिनकी कविता, भाषा जनता की ज़बान पर उतर सके। वक्त ज़रूरत उसकी लाठी, उसका संबल, उसका नारा बन सके, जीवन में मुहावरे की तरह काम आए। केदार की कविता ये सब काम करती है। वह साम्राज्यवाद और पूंजीवाद की मुखालफ़त तो करती है, किसानों, मजदूरों में हिम्मत भी जगाती है, वह जीवन के उल्लास और उत्सवता की कविता है। वह पूंजीपतियों, शोषकों के धिक्कार की कविता भी है। वह जनवाद के आह्वान की भी कविता है। वह प्रेम, रोमान और एकांतिक विलास की कविता भी है। वह अपनी खुराक भारतेंदु हरिश्चंद्र, बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन, पद्माकर, मतिराम, बिहारी, रत्नाकर, हरिऔध—सभी से लेती है। किंतु वह फार्मलिस्ट होने से बचती है और अपने को सर्वथा मौलिक और ऋजु रूप में सामने रखती है। विचारधारा के मोर्चे पर कहीं समझौते नहीं करती और एक आलोचक की तरह व्यवस्था की ख़ामियों पर उंगली भी रखती है। वह प्रगल्भ और स्वाभिमानी जनता के मन की बात कहती है। कविता में शमशेरियत की चर्चा काफी हुई है। शमशेर के दीवानों को उनकी प्रेम कविताओं के आगे अज्ञेय, केदार, नागार्जुन सबकी कविताएं फीकी लगती हैं। तब भी केदार की सरलता और वक्रता को देखते हुए उनके स्वाभिमानी कवि-मिज़ाज की बानगी मिल जाती है। उनकी कविता आम आदमी की कविता है, इससे उसकी महत्ता कम नहीं होती। उनसे नारे बनाने का काम लिया जा सकता है, इससे भी उनका महत्त्व कम नहीं होता। उसने अपने होने की चरितार्थता सिद्ध की है। केदार की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कवियों की ज्यादा ज़रूरत है। सारे जनांदोलन एक पड़ाव पर आकर ठहर-से गए लगते हैं, मनुष्य, पारिस्थितिकी और जीवन के पक्ष में आवाज उठाने वाली कविता की मुहिम को अबाध रूप से आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। केदार की कविता की सच्ची प्रासंगिकता यही है कि कविता में उनकी साहसिकता को सलीके से रखने वाली कवि-पीढ़ी उनसे प्रेरणा ले, मौलिक रूप से आगे बढ़े और शमशेरियत की तरह ही केदारियत को भी अपना पाथेय बनाए। ❑

संपर्क : जी-1/506 ए, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

प्राकृत सौंदर्य के चितेरे कवि केदारनाथ अग्रवाल

नरेंद्र पुंडरीक

व्यक्ति की प्रकृति के प्रति जागरूकता और उसके प्रति सौंदर्य दृष्टि की उपज प्रकृति के साथ उसके आत्मीय रिश्तों पर अंतःक्रिया कर आकार देती है। केदारनाथ अग्रवाल की प्रकृति आत्मीयता रोमानी होते हुए भी इतनी उदात्त है कि उसका रोमानीपन टिक नहीं पाता है। क्योंकि केदार जितने ही अधिक सृजन में संवेदनशील हैं, उतने ही सचेत हैं, और जागरूक भी। केदारनाथ अग्रवाल की कविता में प्राकृतिक रूपों की अनुभूति का सहजपन और उसको व्यक्त करने का जो सरलपन है, वह इनकी कविता को ऊंचा उठाए हुए है। वरिष्ठ आलोचक चंद्रबली सिंह लिखते हैं–"मैं केदारनाथ अग्रवाल का नाम लेना चाहूंगा, जिनकी इधर की कविताओं का एक छोटा-सा संग्रह *लोक और आलोक* के नाम से पिछले साल प्रकाशित हुआ है। केदार का प्रारंभ रोमानी कवि के रूप में हुआ था, हालांकि रोमांस में मिट्टी अधिक थी और पराग कम। उसके बाद उनकी प्रगतिशील कविताओं का संग्रह *युग की गंगा* के नाम से प्रकाशित हुआ। *लोक और आलोक* को कुछ लोग प्रयोगवादी कविताएं कहते हैं, लेकिन यदि कट्टर प्रयोगवादी दृष्टिकोण से देखा जाए तो इन कविताओं की आत्मा और उनके धरातल और प्रयोगवाद में कोई संगति नहीं मिल सकेगी। *लोक और आलोक* में छायावाद युग की रोमानी प्रवृत्ति के स्वस्थ तत्वों को ग्रहण करके ही केदार में वह शक्ति आई है, कि वर्तमान की ज़मीन पर खड़े होकर भविष्य को उसके सहज सुंदर रूप में उतार सकें। *लोक और आलोक* के कवि की तरह हुलस कर युग अपने युग को अंक में भर देने वाला दूसरा कवि नहीं। केदार की अनुभूति और अभिव्यक्ति की सरलता का यही रहस्य है और इसी विशेषता के कारण कविताओं की बड़ी से बड़ी भीड़ में भी केदार की कविताएं बोलती है। केदार के अटपटे बैन भी हैं और वे इस बात के सबूत हैं कि वीर की तरह केदार के लिए अनुभूति की सच्चाई बड़ी चीज है, इसलिए केदार की कविताओं में प्रयोग अनुभूति के माध्यम से आता है कोई भी ऐसा वाद जो केदार के शिल्प को उनकी अनुभूतियों से अधिक महत्त्व देता है। केदार के कवि व्यक्तित्व का सही रूप नहीं हो सकता, रूप के मोह को छोड़कर ही केदार की कविता रूपवती हो सकी है।

> *केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बिंबों का संश्लिष्ट रूप ही नहीं भाषा का वह फोटोजनिक सौंदर्य भी है कि एकदम से आंखें टंकी-सी रह जाती हैं। तुलसी के बाद निराला और निराला के बाद केदार। नदी, पेड़, फूल, घास, हवा, चिड़िया आदि के जितने सादृश्य और गतिशील काव्य बिंब केदार की कविता में दिखाई देते हैं उतने प्रगतिशील हिंदी कविता में कम ही देखने को मिलते हैं।*

केदार की दूसरी विशेषता यह है कि वे अक्सर क्षण की अनुभूतियां और चित्र प्रस्तुत करते हैं लेकिन उनका समर्पण क्षण को नहीं बल्कि युग को है क्षण को प्रस्तुत करते हुए भी क्षण का मोह छोड़ने में ही केदार का व्यक्तित्व विशद और अर्थ से भरा हुआ है। सरलता में संश्लिष्टता, सहजता में रूप, बिंब में अर्थ, यथार्थ में कल्पना क्षण में युग और वर्तमान में भविष्य की अन्विति से समृद्ध केदार के स्वर आधुनिक हिंदी कविता की बहुत बड़ी उपलब्धि हैं, (दैनिक *आज*, 12 जनवरी 1958 साहित्य विशेषांक चंद्रबली सिंह) केदारनाथ अग्रवाल की प्राकृत सौंदर्य की कविताओं में बिंबों का संश्लिष्ट रूप ही नहीं भाषा का वह फोटोजनिक सौंदर्य भी है कि एकदम से आंखें रुक और टंकी-सी रह जाती हैं। तुलसी के पास भाषा ही शब्दों की क्षमता थी, भाव प्रवणता थी, ओज था, सो वह अपने सृजन में ढेरों जड़ाऊ सौंदर्य बिंब दे सके, तुलसी के बाद निराला और निराला के बाद केदार। नदी, पेड़, फूल, घास, हवा, चिड़िया आदि के जितने सादृश्य और गतिशील काव्य बिंब केदार की कविता में दिखाई देते हैं उतने प्रगतिशील हिंदी कविता में कम ही देखने को मिलते हैं देखिए–*मैंने उसको जब-जब देखा/ लोहा देखा/ लोहे जैसा/ तपते देखा/ गलते देखा/ ढलते देखा/ मैंने उसको/ गोली जैसा चलते देखा* (*फूल नहीं रंग बोलते हैं*) दूसरी कविता देखिएं–*धूप/ नहीं यह बैठा है/ खरगोश / पलंग पर उजला/ रोंयेदार मुलायम/ इसको छूकर ज्ञान हो गया/ है' जीने का/ फिर से मुझको* (वही) एक कविता और देखें–*आज नदी बिल्कुल उदास थी/ सोई थी/ अपने पानी में/उसके दर्पण पर/ बादल का वस्त्र पड़ा था/ मैंने उसको नहीं जगाया/ दबे पांव घर वापस आया* (वहीं) एक अन्य कविता देखें–*जल रहा है। जवान होकर गुलाब/ खोलकर होंठ / जैसे आग/ गा रही है फाग* (वही) प्राकृतिक सौंदर्य के किसी भी कवि की कविता में जीवन की उष्मा का यह ताप नहीं मिलता है, इन कविताओं में सौंदर्य की ओजपूर्ण तरंगें उठ रही हैं, जो केदार जी के इन सौंदर्य बिंबों को अनूठा सौंदर्य प्रदान करती है, केदारनाथ अग्रवाल की इन सौंदर्यधर्मी कविताओं की चर्चा करते हुए वरिष्ठ आलोचक धनंजय वर्मा कहते हैं–"एक सौंदर्य होता है ताजमहल का, हमें वह आकर्षित करता है, उसकी पच्चीकारी की हम तारीफ़ करते हैं, उसके कलावस्तु हमें मोह लेते हैं। उसकी कारीगरी और स्थापत्य के हम कायल हैं। लेकिन हम वहां रह नहीं सकते। रहना हमें अपने ही घरों में पड़ता है, और केदार जी की कविता और उसका सौंदर्य हमें ऐसा ही अपना घर लगता है, जहां हम अपने छोटे दुख-सुख के साथ रहते हैं, अपने आत्मीय परिजन के साथ, आस-पास और चौतरफा के माहौल का हिस्सा बने हुए।"

(धनंजय वर्मा : *जिऊंगा ज़िंदगी अभी और अभी और*)

केदारनाथ अग्रवाल इंद्रिय बोध के कवि कहे जाते हैं, सामान्य लोगों की तरह इनका देखना आंख से देखना भर नहीं। केदार अपने गहन इंद्रिय बोध के रूप, रस, गंध में डूबने वाले कवि हैं। और युगबोध के कारण सामाजिकता को इंद्रिय बोध का विषय बनाने वाले कवि हैं। डा. विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं–"केदार में बिंब-विधान की जो शक्ति है वह अन्यत्र दुर्लभ है। वे समकालीन कवियों में सबसे सक्षम बिंब-विधायक हैं। कम-से-कम शब्दों में वे ऐसा चित्र खींच देते हैं कि विशिष्ट में अतीत, वर्तमान और भावी तीनों समाहित हो जाते हैं। भावी का अर्थ काव्य में नैतिकता से होता है। आकर्षण को इतना कालव्यापी एवं बोधमय चित्रित करना प्रगतिशील संस्कृत का वर्तमान बन जाता है। (*जिऊंगा ज़िंदगी अभी और अभी और*)

केदारनाथ अग्रवाल अपने धरती के नदी, फूल, हवा, धूप, आकाश सारे प्राकृतिक बिंबों का उपयोग अपनी कविताओं में खुलकर किया है, उदात्त भाव से किया है। भाषा की सहजता में इन बिंबों की उदात्तता को उसके वेग को इस तरह से रखा है कि उनका उमड़ा फेनिल वेग संश्लिष्ट होकर उत्कृष्ट बिंब का रूप धारण करके आ जाता है—*तेज धार का कर्मठ पानी/ चट्टानों के ऊपर चढ़कर/ मार रहा है घूसे कसकर/ तोड़ रहा है चट्टानी* (*फूल नहीं रंग बोलते हैं*) केदार के सौंदर्य बिंबों में एक भी बिंब ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें जीवन के प्रति उद्दाम ललक न हो, जीवन होगा और जीवन से जुड़े श्रम का सौंदर्य अनिवार्य रूप से उसमें परिलक्षित होगा—*छोटे हाथ/ सवेरा होते/ लाल कमल-सा खिल जाते हैं/ करने-करने को उत्सुक हो/ धूप/ हवा में हिल उठते हैं।* (*छोटे हाथ;* अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद)

कवि केदारनाथ अग्रवाल को माल्यार्पण करते हुए आनंदस्वरूप श्रीवास्तव

केदार अपनी इन कविताओं में अपने समय से जूझते दिखाई देते हैं। वे लिखते हैं—"हिंदी की कविता न रस की प्यासी है न अलंकार की इच्छुक और न संगीत की न तुकांत पदावली की भूखी है, भगवान अब उसके लिए व्यर्थ है। अब वह किसान और मजदूर की वाणी चाहती है।" केदार प्राकृतिक दृश्य को देखकर बिंब में बदलकर संश्लिष्ट रूप देने में अपना सानी नहीं रखते हैं—*मोती जैसी बूंदें बरसी/ धरती पर जलधारा बरसी/ झाग-भरे लाखों मटमैले/ फन फैलाए/ अहिगन सरके* (*गुलमेंहदी,* पृ. 22)

केदार जी की कविताओं पर रामकृष्ण पांडेय लिखते हैं—"केदार जी आवेगधर्मी कवि नहीं हैं, क्योंकि इनकी कविता का संसार भावनाओं से नियंत्रित नहीं होता है, जीवन को जोतकर काफी ठिकाने से कठिनाई से फ़सल उगाई है इन्होंने इसलिए अक्सर इनकी कविता वर्तमान की घटनाओं पर तत्काल कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करती, (*जीउंगा ज़िंदगी अभी और अभी और*) केदार की कविता प्रथमतः ही यह एहसास करा देती है कि पाठक शुरू से ही मानवीय गरिमा से जुड़ता हुआ महसूस करने लगता है क्योंकि इनका संपूर्ण कविता परिदृश्य मानवीयता के साथ समय, सामाजिक एवं आर्थिक अंतर्विरोध को व्यक्त करते हैं—*मैं उसे / खोजता हूं/ जो आदमी है/ और अब भी आदमी है/ तबाह होकर भी आदमी है/ चरित्र पर खड़ा/ देवदार की तरह बड़ा।*

केदार जब ज़िंदगी को उसकी संपूर्ण मानवीयता और उसकी गरिमा के साथ हमारी चेतना में प्रतिष्ठित करने का प्रयास करते हैं तब वह अपने इस प्रयास में पूंजीवादी तंत्र के मानवीकरण की प्रकिया के विरुद्ध सार्थक भूमिका निभाते नज़र आते हैं और चेतना के स्तर पर मनुष्य की मुक्ति का प्रयास करते हैं। केदार की यह चिंता निश्चय ही बड़ी है। केदार जी ने पत्नी पर केंद्रित कविताओं के संकलन *जमुन जल तुम* की भूमिका में लिखा है—"मैं मूलतः पत्नी प्रेमी रहा हूं। मेरी प्रेम और सौंदर्य की कविताएं उन्हीं के प्रेम और सौंदर्य की कविताएं हैं। कहीं-कहीं कुछ कविताएं ऐसी झलक दे जाती हैं जैसे कि मैं उनके अलावा दूसरी नारियों से घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहा हूं जो मैं ऐसा लिख गया हूं वह केवल पारंपरिक काव्य संस्कार का परिणाम है जो कि घर की चारदिवारी से बाहर पहुंच गया है।' केदारनाथ अग्रवाल की प्रेम-कविताएं स्वकीया गीति परंपरा की कविताएं हैं। स्वकीया प्रेम पर बहुत कम लोगों ने कविताएं लिखी हैं। केदारनाथ अग्रवाल एकमात्र अकेले कवि हैं जिन्होंने स्वकीया प्रेम पर लगातार कविताएं लिखी हैं, और जीवन के अंत तक लिखते रहे हैं। नैतिकता की रेखा अनंत में नहीं होती है, सामाजिक यथार्थ के बीच व उसके छंद के बीच ही निर्धारित होती है।

केदार जी की प्रेम कविताओं का मूल्यांकन करते समय यह बात ध्यान देने की है कि इनका उद्भव और विकास किस ज़मीन पर हुआ है। जान लेने से काम नहीं चलेगा, केदार जी की एक कविता दे रहा हूं—*जाओ लेकिन आत्म गंध दे जाओ/ जाते-जाते फिर मुस्काओ/ कुंदुदास का सुख दे जाओ/ लेकिन दृष्टि-दीप्ति दे जाओ/ जाते-जाते द्वैत मिटाओ /जाओ लेकिन व्यक्तिबोध दे जाओ, जाते-जाते मृत्यु /विजेता, चुंबन लेकर देकर जाओ।*

इस कविता में जिस सहज उल्लासित प्रेम का प्रकाश फूट रहा है वह ही केदार जी की प्रेम कविताओं का मूल रूप है। केदार जी की प्रेम कविताओं के संबंध में डा. विश्वनाथ त्रिपाठी की यह टिप्पणी ग़ौरतलब है—"केदार ने नारी शरीर को अकुंठ भाव से उभारा है। उसमें पत्नी का पारिवारिक रूप झलकता है। केदार ने पत्नी को अपने ही संदर्भ में देखा है। वह मां, बहन, सास, समधिन भी होगी, यह नहीं दिखाई पड़ता। नारी की शारीरिक काम्यता केदारनाथ अग्रवाल के यहां नई मर्यादा से संबद्ध है। केदार की कविताओं में कुंठा, हीनता एवं निर्बंध सौंदर्य स्वीकृत नारी स्वातंत्रय एवं सामाजिकता से जुड़ी है।"

केदार जी उस प्रेम के कवि हैं जो मात्र दैहिक सौंदर्य पर ही अवलंबित नहीं है बल्कि भीतर ही लौ की तरह अबुझ होकर जलता रहता है जिससे उनका अंतर पककर लगातार रस बुद्धि को प्राप्त करता रहता है। कार्य व्यवहारों में निरंतर अलग-अलग सौंदर्य रूपों के साथ एक विशिष्ट भाव लेकर प्रगट होता है, उनके प्रेम का यह विशिष्टपन आम जन का विशिष्ट है, सुपर मानसिकता वाले लोगों का विशिष्टपन है, 'हे मेरी तुम हाड़ बुढ़ाए रूखे-सूखे डगमग डोले'। आगे देखिए, 'हे मेरी तुम आओ बैठो दिन का जंगल कटते देखो नए पंख के नए पखेरू बिना नीड़ के उड़ते देखो'।

जीवन में सच को सीधे-सीधे सरल और सहज शब्दों में व्यक्त करने का साहस केदार की ख़ासियत है, भाषा अभिव्यक्ति की सहज एवं वक्र भंगिमाएं यह व्यक्त करने के कला के भिन्न स्तर हैं। केदार के स्वकीया प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए डा. रामविलास शर्मा लिखते हैं—"केदार की प्रेम संबंधी कविताओं का सामाजिक महत्त्व कम नहीं है, इनमें युवकोचित काम चेतना की सहज अभिव्यक्ति हुई है। प्रसाद जी ने जिस आनंदवाद की चर्चा की थी उसका प्रसार इन कविताओं में है, यही प्राकृतिक परिवेश का उल्लास नर-नारी के मिलन का उल्लास घुल-मिलकर एक हो गए हैं।" (*प्रगतिशील कविता और केदारनाथ अग्रवाल*)

केदार पति-पत्नी के घरु प्रेम को ऊर्जावान बनाने वाला, संघर्षों में ताकत देने वाला मानते हैं। उसे सर्वांग और सुंदर रूप में प्रस्तुत करने में विश्वास करते हैं, वह विवाह करके पत्नी को नहीं लाते वरन् वह साक्षात प्रेम को ही व्याह करके ले आते हैं—*मैंने प्रेम अचानक पाया/ गया ब्याह में युवती लाने/ प्रेम ब्याह/ कर संग में लाया* (*जमुन जल तुम*)। केदार जी द्वारा बिल्कुल अकुंठ भाव से अपने को नारी प्रेमी घोषित करना स्वकीया प्रेम के प्रति स्वस्थ मानसिकता का द्योतक है—*मैं नारी का प्रेमी/ मेरी प्रीति अपावन/ भावराशि सब गंधी / मेरे गीत अपावन* (*गुलमेंहदी*)

केदार *जमुन जल तुम* की भूमिका में लिखते हैं, मैंने अपने प्रेम को इस प्रकार के परकीया प्रेम के उदात्तीकरण से अलग रखकर सरल सहज और खुले रूप में स्वकीया प्रेम को मानवीय प्रेम के रूप में प्रस्तुत किया है, मुझे यह बराबर महसूस होता रहा है कि मेरे ऐसा करने से कोई अपराध नहीं होगा बल्कि जिसके प्रति मैं अपना प्रेम व्यक्त कर रहा हूं वह मुझसे घनिष्ठ से घनिष्ठतर होती हुई पूर्णरूपेण मेरी आत्मीय बन जाएगी, 'हम दोनों का प्यार रहे/ जिस दूब पर हम तुम लेटे/ कोमल रहित उदार रहे।' (*गुलमेंहदी*)

केदार की स्वकीया प्रेम पर लिखी कविताएं, जो प्रेम के नाम पर सिर्फ व्यभिचार को प्रश्रय देते हैं उनके विरुद्ध उनका विरोध है, इनका सामाजिक महत्त्व तो है ही और साथ-साथ जीवन निर्वाह करने का एक आशय भी है, जो प्रेम के नाम पर सिर्फ चुहलबाज़ी करते हैं उनका भी ये कविताएं जवाब हैं। ऐसे लोग घर-बाहर कहीं भी अपने प्रेम को प्रतिष्ठा नहीं दे पाते स्वकीया प्रेम के गहनाभूति से ही ऐसी कविताएं रची जा सकती हैं—*हम जीते हैं/ बिना जिए ही/ जीने के एहसास में/ जैसे फल के भीतर/ फल के पके स्वाद में* (*हे मेरी तुम*)। इस संबंध में एंगेल्स ने एक जगह लिखा है कि—"हमारी आधुनिक काम चेतना पुराने लोगों की काम चेतना से भिन्न है। अब स्त्री और पुरुष समान रूप से, समान धरातल में एक-दूसरे से प्रेम करते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल की प्रेम कविताओं के संदर्भ को लेकर डा. शर्मा की यह बात ग़ौरतलब है—"केदार उस प्रेम के कवि हैं जो कुछ देर की आतिशबाज़ी न होकर बरसों तक अपना प्रकाश आनंद बनाए रहता है। यह बरसों तक साथ रहने वाले प्रेमी का प्रेम है जो बराबर परिपक्व होता है और अधिकाधिक सुकुमार और मानवीय बनता जाता है। वह निरंतर नए-नए रूपों में अभिव्यक्त होता है। केदार की निजी विशिष्ट बोध की चेतना जितना प्रेम संबंधी कविताओं में व्यक्त होती है उतना अन्यत्र नहीं। हिंदी कविता के मानवतावाद को यहां उन्होंने नई बुलंदियों तक पहुंचा दिया है। विशेष और सामान्य एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। केदार का प्रेम जितना विशिष्ट है उतना ही सामान्यजनों के लिए महत्त्वपूर्ण है"।

(*प्रगतिशील कविता और केदारनाथ अग्रवाल*) ❑

संपर्क : 'केदार शोधपीठन्यास', सिविल लाइंस, बांदा-210001 (उ.प्र.)

फूल नहीं रंग बोलते हैं!

पृष्ठ 12 से आगे

की प्रारंभिक पंक्तियां मुझे अच्छी लगती हैं—मार हथौड़ा/कर कर चोट/लाल हुए काले लोहे को/जैसा चाहे वैसा मोड़/मगर जब कहते हैं—*थोड़ा नहीं—अनेकों गढ़ ले/फौलादी नरसिंह करोड़।* तो मैं 'अनेकों' और 'करोड़' को रेखांकित करता हूं—और देखता हूं कि 'करोड़' 'अनेकों' की परिभाषा में आया है। बात नहीं जमती। ऐसी लापरवाही का सबूत अंतिम पंक्ति है—*जल्दी छवि से नाता जोड़!*

कोई आठ साल हुए *कृति* के कविता-विशेषांक में मैंने नागार्जुन के संबंध में लिखा था—'भावनाओं का सामाजिक परिवेश में विश्लेषण, हृदय को छूने वाला स्वर, उसके स्वर की निर्भीकता, उसका दो-टूकपन और पूरे नाटकीय 'फोर्स' के साथ अनेक चरित्रों के संग-संदर्भ चित्रण...यही कुछ है जो नागार्जुन की तगड़ी चीजों को मेरे लिए अत्यंत प्रिय और महत्त्वपूर्ण बना देती है।'

और फिर—'केदारनाथ अग्रवाल भी शायद मुझे इसीलिए प्रिय हैं।...मैं उसकी कविताओं में उसका दिल जैसे आर-पार देखता हूं और वह दिल कितना हर तरह के 'हम्बग' और 'स्नॉबरी' से पाक है! वह सहज ही किसी जादूगरी में फंसता नहीं...जो बात को उक्ति समझ में नहीं आती, वह ख़ामखाह ही गूढ़ नहीं लगती। एक होता है कविता का अपना मर्म, शब्द जिसका माध्यम मात्र होता है—वह मर्म जैसे चमकती हुई आंखें रखता हो—स्पष्ट, गंभीर और सहज-तरल! केदार उसी को खोजता है।

'उसके छंद में एक ठेठपन मिलेगा, जो ठोस अनुभवों का तेवर लिए हुए होता है। उसकी वाणी में एक कस-बल है जो बुंदेलखंड का ही नहीं, उसका तो है ही, हर स्वस्थ मेहनतकश नौजवान का भी है। उसके शिल्प में 'बारीकियां' न होते हुए भी, उसके अंदाज में ज़ोर और असर है, और एक अजीब-सी ताज़गी। इधर की उसकी कविताएं प्रेम और प्रकृति से संबंधित, अपने ढले हुए सौंदर्य में हजार शिल्पगत बारीकियों को शर्माती हैं।

'केदार जिस खोज की तरफ बढ़ा है वह है, समाज का सत्य और प्रकृति का खुला नैसर्गिक सौंदर्य। अन्याय के ख़िलाफ और मेहनत के पक्ष में वह बेझिझक बोलता है। उसके व्यंग्य में दोहरी-तिहरी धार नहीं, सीधी एक धार। मगर वही बहुत काफी होती है। ऐसा खुले हृदय का उन्मुक्त साहसी कवि सौंदर्य और प्रेम की सुषमा और सौष्ठव पर दृष्टि डालता है तो सहज ही अपनी अनुभूतियों से हमें मोह लेता है। इतना खुला प्यारापन जिसमें दिखावट और बनावटीपन का नाम नहीं, साथ ही इतना गंभीर और मर्यादित जितना कि गहरा प्रेम वास्तव में होता है; एक ऐसा उघरापन भी, जैसा कि प्रकृति के खुले-फैले प्रांगण में सब ओर मिलेगा।...नदी, पेड़, पत्ती, फूल, टहनी, चट्टान, हवा वातावरण-विशेष—सब हमारी आंखों में खुब-सा जाता है। किसान और मजदूर के हाथ और रग-पुट्ठे कहीं हमारे हाथों और रग-पुट्ठों को रगड़ते हुए से लगते हैं और अपना वेग और सहज शक्ति बरबस ही हमें महसूस कराते हैं। उनके यथार्थ वातावरण की गृहिणी, उनके किसान, युवक और युवती, और खेतों की सजीव हरियाली और भोली-भाली रंगीनी अपना परिचय हमेशा के लिए हमसे दृढ़ कर लेती हैं। क्यों न फिर यह कवि मुझे विशेष प्रिय हो—सादगी की कुछ लगाजिशों और कहीं-कहीं (कुछ पहले तक की कविताओं में) सपाटपन के भी बावजूद।'

साभार : *कुछ और गद्य रचनाएं* से
संपादक—**रंजना अरगड़े**

कविता ने मुझे आदमी बनाया : केदारनाथ अग्रवाल

आनंदस्वरूप श्रीवास्तव

उत्तर प्रदेश के बांदा शहर की एक बड़ी पहचान प्रगतिशील काव्य धारा के प्रमुख स्तंभ बाबू केदारनाथ अग्रवाल के कारण भी है। इस शहर के किनारे-किनारे केन नदी बहती है। और केदार ने केन पर कविताएं भी लिखी हैं। इस नाते साहित्य में केदार जी को केनकूल का कवि भी कहा जाता है। इसी बांदा जनपद से लगा हुआ आल्हा-अदल की नगरी महोबा का जनपद है। 1972 के जनवरी माह में लखनऊ से स्थानांतरित होकर महोबा स्टेट बैंक नौकरी करने गया था, उन्हीं दिनों मैंने वहां केदार की एक कविता 'समय का शव' पढ़ी थी, जहां तक याद है यह कविता उनके संग्रह *आग का आईना* में 1970 में छपी थी। इस कविता ने मुझे प्रभावित किया और केदार को पढ़ने और जानने की इच्छा प्रगट हुई। समय के महत्त्व को इस कविता ने पहचान दी, समय कितना मूल्यवान है, इस बात को यह कविता बड़ी बखूबी प्रकट करती है। कविता की पंक्तियां हैं—*समय का शव/ न आसमान उठाता है/ न ज़मीन उठाती है/ न वायु न उसका बेटा आज उठाता है/ मगर इंसान का मारा समय इंसान उठाता है/ पीठ पर लिए/ न फेंकता है। न फेंकने देता है/ कातिल किसी और को कातिल बताता है।* इन कविताओं को पढ़कर मेरी बड़ी इच्छा बांदा जाकर केदार जी से मिलने की हुई। यद्यपि उस वक्त मैं केदार जी के बारे में बहुत ज्यादा नहीं जानता था। महोबा के लोग कहा करते थे केदार जी बुंदेलखंड के बड़े कवियों में हैं और वह आधुनिक कविताएं लिखते हैं। उस वक्त बैंक शाखा में मेरे एक सहयोगी थे रामजीतलाल श्रीवास्तव। वह बांदा के कटरा मुहल्ला के रहने वाले थे। उनसे जब मैंने केदार जी के बारे में पूछा तो वह बोले कि केदारनाथ अग्रवाल तो वकील हैं और कचहरी के पास ही रहते हैं। वह केदार की काव्य कला से विशेष परिचित नहीं थे। मैंने जब एक दिन उनके साथ बांदा जाकर केदार जी से मिलने की बात कही तो वह बोले अप्रैल-मई में वहां कोई साहित्य सम्मेलन होने वाला है। उसी में चलो तो ठीक रहेगा। मैंने बांदा जाने की बात अपने साथी से तो कर दी लेकिन मन में बड़ा संकोच था कि साहित्य में मेरी कोई उपलब्धि तो है नहीं केदार जी जैसे बड़े कवि से किस विधि मिलूंगा? जहां तक मुझे याद है अखिल भारतीय प्रलेस का प्रांतीय सम्मेलन अप्रैल 1972 में बांदा में आयोजित हुआ था। इसके आयोजकों में बाबू केदारनाथ अग्रवाल व डा. रणजीत प्रमुख थे। डा. रणजीत उन दिनों डिग्री कालेज बांदा में हिंदी प्रवक्ता थे। जिस दिन सम्मेलन का उद्घाटन सत्र था उसी दिन मैं अकेले बांदा चला गया। गर्मी के दिन थे। गर्मी के दिनों में बांदा ही नहीं पूरे बुंदेलखंड में पीने के पानी का संकट पैदा हो जाता है। महोबा से बांदा पहुंचते ही प्यास इतनी जबर्दस्त लग गई कि पानी की खोज प्राथमिकता बन गई। पानी न स्टेशन पर न कहीं सड़क चौराहे पर। वहां मेरा कोई परिचित भी नहीं था। सम्मेलन रेलवे स्टेशन के समीप ही आर्य कन्या इंटर कालेज के विशाल परिसर में था। तब कालेज के चारों तरफ पक्की बाउंड्री नहीं थी। मैं पानी के लिए इधर-उधर भटक रहा था तभी मेरे वय का एक गौरवर्ण युवक ने मेरे पास आकर कहा 'आप यहां अधिवेशन में आए हैं?' मैंने कहा हां, यहां पास में पानी की कोई व्यवस्था है? मैंने कहा यहां पानी की खोज में तो मैं भी भटक रहा हूं चलो कहीं चाय की दुकान पर पानी पीते हैं और फिर चाय। हम दोनों ने एक दुकान पर जब चाय-पानी पी लिया तो कुछ स्थिर हुए और सम्मेलन की ओर बढ़े। बांदा के सम्मेलन में मैंने उस दिन महादेवी वर्मा तथा उनके साथ कई महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विभूतियों को बैठे हुए देखा। इसी सम्मेलन के मंच पर प्रथम बार केदार बाबू के दर्शन हुए। केदार बाबू उस दिन कमीज के ऊपर ढीला-ढाला काला कोट पहने थे। आंखों पर काले मोटे फ्रेम का चश्मा लगा हुआ था। साहित्यकारों से विचार-विमर्श करते हुए वह काफी व्यस्त दिखाई पड़ रहे थे। सभा में बहुत पीछे खड़े होकर मैं थोड़ी देर साहित्यकारों के विचार सुनता रहा फिर बस से महोबा वापस चला आया क्योंकि महोबा जाने वाली आखिरी बस का समय हो गया था। सम्मेलन में जाने तथा केदार जी के वहां दर्शन पाने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इससे मुझे नई कविताएं लिखने की प्रेरणा भी मिली। महोबा में रहकर मैंने जो नई कविताएं लिखीं, उसका एक संग्रह कुछ वर्षों बाद मैंने *कूड़े घर का आदमी* नाम से तैयार किया जब यह संग्रह तैयार हो गया तो मेरा बड़ा मन हुआ कि इसकी कुछ कविताएं कभी बांदा जाकर केदार बाबू को सुनाऊं और उनका आशीर्वाद लूं, लेकिन यह बात सोच कर ही रह जाता था कभी हिम्मत नहीं पड़ती थी। एक दिन मेरा यूं ही बांदा जाना हुआ और वहां जाकर मैंने हिम्मत बांधी कि आज यहां आया हूं तो केदार बाबू से जरूर मिलूंगा। केदार बाबू का घर बस स्टेशन की बाउंड्री से लगा हुआ है। एक तरह से यह घर बस स्टेशन और रेलवे क्रासिंग के बीच में पड़ता है। बांदा शहर की विशेषता है कि यहां रेलवे स्टेशन, कचहरी, बस स्टेशन और बाजार पास-पास हैं। मेन सड़क से एक गली मुड़ती है। इसी गली के अंत में एक गेट लगा है और उसके अंदर एक बड़ा कंपाउंड है। उसी में बाईं ओर केदार जी का घर है। कंपाउंड में सामने की ओर एक पक्की इमारत है जिसमें केदार का परिवार रहता है लेकिन केदार बाबू जिस मकान में रहते हैं वह कुछ कच्चा कुछ पक्का पुराना साधारण मकान है। ऊपर खपरैल है और नीचे लंबा चबूतरा और बरामदा। बरामदे में दो खंभे हैं। खपरैल पर झरी हुई पेड़ की सूखी पत्तियां तेज हवा में खड़खड़ाती हैं। बरामदा कुछ धूल-धूसरित-सा। आंगन में तुलसी का पेड़ और दीवारों पर चढ़े बेतरतीब कुछ बेल-बूटे—यह है केदार जी के घर का एक नज़ारा। इसी घर के बरामदे में एक बार नागार्जुन जब केदार बाबू से मिलने आए थे तो सर्दी और रात अधिक होने से चुपचाप एक कोने में लेट गए थे। बरामदे से जुड़ा एक हालनुमा कमरा है। कमरे की छत लकड़ी की है। छत के बीचों-बीच एक सफेद चादर तनी हुई है। इसी कमरे में केदार जी की कानून व साहित्य की पुस्तकें अलमारियों में बड़े करीने से लगी-सजी हैं। सभी अलमारियों में ताले लगे हैं। बीच कमरे में उनका तख्त पड़ा है और तख्त के किनारे-किनारे बैठने की हत्थेदार कुर्सियां हैं, तख्त पर कुछ किताबें, डायरी और पेन तथा छोटा-सा पुराना रेडियो है। केदार को रेडियो से समाचार सुनने की नित्य-प्रति की आदत है। वह रेडियो बिना नहीं रह सकते। बाबू जी इसी तख्त पर रेडियो सुनते और कुछ लिखते-पढ़ते सो जाते हैं। वह इस घर में बिलकुल अकेले हैं। नौकर खाना-नाश्ता देकर चला जाता है। खाना-नाश्ता पास के मकान से आता है। मैंने देखा जीवन के एकाकीपन में भी वह प्रसन्नचित हैं और असीम जिजीविषा से भरे हुए हैं। वह निरंतर कविताएं लिखे जा रहे हैं। यह केदार बाबू की बहुत बड़ी ताकत और उपलब्धि है जो मुझे आश्चर्यचकित करती है। कहते हैं बाबू जी का घर कचहरी के समीप होने से उनके मुवक्किलों को पेशी के वक्त कहीं ढूंढने नहीं जाना पड़ता था। उधर इजलास पर पुकार हुई और इधर मुवक्किल बाबू जी को घर से बुला ले गया।

जितने दिन उन्होंने वकालत किया उसे बड़ी ईमानदारी से निभाया। कविता के कोर्ट में ही अपना शेष जीवन खपा दिया। गर्मी के मौसम में भी बांदा की सुबह हल्की ठंड लिए हुए होती है। दोपहर या शाम की अपेक्षा मैंने सुबह-सुबह ही केदार बाबू के घर जाना उचित समझा। बाबू जी आंगन के चबूतरे पर बैठे मंजन कर रहे थे। मुझे देखते ही मेरा परिचय पूछा फिर यह जान प्रसन्न हुए कि मैं रायबरेली का रहने वाला हूं और स्टेट बैंक में नौकरी करता हूं। फिर वह मुझे कमरे में बिठाने के लिए कहते हैं। जैसे ही कमरे में आए कहने लगे रायबरेली तो मेरा पुराना शहर है। मैंने वहां शिक्षा पाई। रायबरेली में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हुए जिन्होंने *सरस्वती* पत्रिका का कई वर्षों तक संपादन किया। युग प्रर्वत्तक के रूप में उनकी चहुं ओर ख्याति हुई। मेरे जमाने में तो द्विवेदी जी के गांव दौलतपुर जाना बड़ा मुश्किल काम था। साधन और सड़कें नहीं थीं। अब क्या हाल है वहां का? मैंने कहा 'अब तो वहां तक पक्की सड़कें बन गई हैं और बसें भी चलने लगी हैं लेकिन बसें सिर्फ भोजपुर तक ही जाती हैं और वहां से दूसरा साधन लेना पड़ता है। वह फिर बोले वहां द्विवेदी जी का कोई स्मारक वगैरह बना कि नहीं मैंने कहा स्मारक तो अभी नहीं बना लेकिन लोग प्रयास कर रहे हैं। हां शहर में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी स्मारक बना है जिसमें एक इंटर कालेज चल रहा है। शहर में यह स्मारक किस जगह बना है? मैं बताता हूं, जहां डा. मुखर्जी का अस्पताल है यह अस्पताल कहां है? बेलीगंज से थोड़ा आगे अच्छा-अच्छा बेलीगंज वहीं जिसमें बड़ा फाटक लगा है। अरे तब तो मेरे जमाने में वहां उसके आगे कुछ भी नहीं था। अब तो रायबरेली बहुत बदल गया होगा। मेरा स्कूल टाउनहाल में था। टाउनहाल के टावर में एक बड़ा घंटा लगा रहता था। अब वह है कि नहीं? मैंने कहा नहीं और वह जो वसंत तमोली की दुकान जो कैपरगंज में हुआ करती थी वह है कि नहीं? उसके सामने एक बहुत पुराना पेड़ था। मैंने कहा दुकान तो है। पर वह पेड़ कट गया है। इस तरह से थोड़ी देर में रायबरेली के बारे में बहुत-सी बातें पूछ डालीं, उनकी बातचीत से मैंने पाया कि बाबू जी की स्मृति बड़ी तेज है और बचपन की छोटी-बड़ी बातें उन्हें याद हैं, मैंने जब उनसे पूछा वकालत अब आप क्या करते हैं। तो बोले वकालत अब क्या करूंगा, वकालत छोड़े अर्सा हुआ। अब तो बस घर पर ही थोड़ा बहुत लिखना-पढ़ना रहता है, आप तो कविता में रुचि रखते हैं और कविता लिखते भी हैं यह अच्छी बात है। जीवन में कविता ने मुझे बहुत साथ दिया। कविता न होती तो मैं तो वकील ही बना रह जाता। एक तरह से कविता ने मुझे आदमी बनाया और इस बात की मुझे बड़ी खुशी रहती है। प्रथम बार केदार जी से मिलकर और उनसे बातें कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे नहीं मालूम था कि प्रगतिशील विचारधारा के इतने बड़े कवि इतने सरल और सहज भी हैं। मैंने उस वक्त उनके अंदर जो आत्मीयता और स्नेह देखा वह आज तक मुझे भूलता नहीं। मेरे अंदर जो एक झिझक और संकोच बहुत दिनों तक रहा वह एकदम खत्म हो गया। मैंने उस दिन यह भी जाना कि सादगी और शाकाहारी जीवन जीने वाले केदार बाबू जीवन और कविता एक साथ जीते हैं। उनमें कोई छल-प्रपंच और दुराव-छिपाव नहीं, जो अंदर वही बाहर, वह मुझे कुंठा, हताशा, संत्रास से बहुत दूर दिखे। उनमें कोई ऊब नहीं, कोई क्षोभ नहीं, जीवन की ठोस वास्तविकता से टकराने और उस संघर्ष में रस लेने की जो प्रकृति है वह उनकी कविता में देखी जा सकती है—*जी कहता है/ इस दुनिया का सत्य समझकर /जी भर इसे जियो/ इसके नखरे/ इसके रूठन/इसकी तेजी/ इसकी गर्मी/ इसकी धड़कन... /* केदार जी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर और उन्हें अपने प्रति आत्मीय देखकर मैंने पक्का इरादा बनाया कि एक दिन बांदा जाकर मित्रों को अपनी नई कविताएं सुनाऊंगा और उन्हें पांडुलिपि भी दिखाऊंगा, बांदा के कुछ मित्रों ने मुझे बताया था कि बाबूजी किसी की पांडुलिपि पढ़ते नहीं हैं और न उस पर कोई भूमिका आदि लिखते हैं, मैंने कहा चलो देखा जाएगा। बड़े कवि हैं कुछ तो भला-बुरा कहेंगे ही। 1993 में मैंने *कूड़े घर का आदमी* कविता-संग्रह की पांडुलिपि अपने मित्र योगेश श्रीवास्तव को दे दी। वह बाबू जी के निकट संपर्की थे। एक दिन वह बाबू जी के पास गए और मेरी पांडुलिपि उन्हें दे आए। बाबू जी ने उसे उलट-पलटकर देखा और फिर कहा छोड़ जाओ देखूंगा लगभग दो माह बाद चंद पंक्तियों में अपना आर्शीवाद लिख दिया और कहा प्रयास अच्छा है कविताएं मन को छूती हैं, उनका आशीष पाकर मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रही। मुझे बाबू जैसे विशिष्ट और विराट व्यक्तित्व का यह व्यवहार उनकी सरलता और सहजता का प्रतीक लगा। महोबा शहर से स्थानांतरित होकर दूर चले जाने पर भी बाबूजी से संपर्क बना रहा। कभी-कभी जब कोई नई कविता लिखता तो उन्हें भेज देता। उस पर उनका पोस्टकार्ड आता जिस पर कविता की संक्षिप्त प्रतिक्रिया होती। 'लकड़बग्घा' कविता पर उन्होंने अपनी संक्षिप्त प्रतिक्रिया जो लिखी वह मेरे लिए बड़ी प्रेरक रही। उनके अंदर अपने से छोटों को भी प्रोत्साहित करने का बहुत बड़ा गुण था।

1996 से बांदा में नरेंद्र पुंडरीक के प्रयासों से केदार सम्मान समारोह का आयोजन शुरू हुआ। परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद के शिवकुमार सहाय बांदा के महेश अग्रवाल तथा स्थानीय साहित्यकारों एवं मित्रों के सहयोग से यह आयोजन लगभग दस वर्षों तक चलता रहा। इसमें प्रगतिशील विचारधारा से जुड़े कवि एवं लेखक बराबर आते रहे। मैं भी प्रतिवर्ष इस आयोजन में जाता रहा। मुझे याद है आर्य कन्या इंटर कालेज बांदा के हाल में समारोह शुरू होने से पहले केदार बाबू सफेद धोती-कुर्ता पहने हाथ में पतला बेंत लिए मंच पर आकर आसीन हो जाते उनके आंखों में बड़ी चमक और चेहरे पर बड़ी शांति रहती थी। वह बाहर से आए सभी साहित्यकारों से बड़ी आत्मीयता से मिलते थे तथा हाल में बैठे सभी अतियियों को बड़ी एकग्रता से निहारते थे। वह अपने अगल-बगल मंच पर बैठे साहित्यकारों का कुशलक्षेम पूछते और यह जानने की कोशिश करते कि कौन कहां से आया है। कार्यक्रम शुरू होने से पहले माल्यार्पण का दौर शुरू होता तो उनका गला कंधा मालाओं से भर उठता। वृद्धावस्था के कारण वह उठ न पाते सम्मान देने के लिए उन्हें सहारा देकर उठाया जाता फिर बैठ जाते प्रथम सत्र के बाद जब लंच होता हाल खाली हो जाता लेकिन बाबू जी उसी तरह गावतकिया लगाए अधलेटे से बैठे रहते लोग उन्हें विश्राम करने के लिए घर जाने के लिए कहते लेकिन वह साहित्यकारों का सानिध्य छोड़कर जाने को तैयार न होते, मैंने उनके अंदर अपने से छोटे-बड़े सभी रचनाकारों के प्रति बड़ा प्यार, सम्मान और आदर का भाव देखा।

केदार जीवन-भर अपनी जगह जमीन से जुड़े रहे ग्रामीण जीवन से उन्हें गहरा लगाव था। उन्होंने श्रमिकों और किसानों को अपनी रचनाओं में भरपूर स्थान दिया साथ ही सौंदर्यबोध की श्रेष्ठतम कविताएं लिखी। अपने 21 कविता संग्रहों की जो फुलवारी उन्होंने तैयार की वह विलक्षण हैं 2006 में डा. कृजवालासिंह ने केदार की कविता पर बोलते हुए कहा था—"केदार की कविता मंत्रमुग्ध हो जाने वाली कविताएं हैं।" डा. जीवन सिंह (अलवर) ने भी कहा था—"केदार संकट में भी कहीं किसी के पास नहीं गए वह कविता के पास ही गए और उसने उन्हें संकट से उबारा।आज केदार को प्रगतिशील कविता के दायरे में मार्क्सवादी विचारधारा के खांचे में समेटकर देखा जाता है लेकिन इससे निकलकर उन्हें देखा जाए तो वह कविता से भी बड़े एक नेकदिल इंसान थे। अपनी कविता से निर्मित एक बड़े आदमी थे, जिसकी मिसाल आज दुर्लभ है। ❑

संपर्क : कवितांगन, एम II/85 जवाहर विहार कालोनी, रायबरेली (उ.प्र.)

बहुत धूप खायी है मैंने

केदारनाथ अग्रवाल *से* *मजीद अहमद* की बातचीत

मुझे प्राप्त है/जनता का बल/वह बल मेरी कविता का बल
मैं उस बल से/शक्ति प्रबल से/एक नहीं/सौ साल जिऊंगा।

जिस जनता के बल पर केदारनाथ अग्रवाल सौ बरस जीने का दावा करते थे, वह आज साकार हो रहा है—जब हम उनकी जन्मशती मना रहे हैं। आज भले ही उनका भौतिक शरीर हमारे बीच न हो, उनकी काव्य-देह आज भी पूर्ववत् जीवित और स्पंदित है। शमशेर ने अपनी ही कविता को अपनी काया कहा था, इसी तरह केदार भी अपने काव्य की काया में आज जी रहे हैं।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में भारतीय मनुष्य की और उसमें भी विशेषकर बुंदेलखंड के किसान की, वहां के जन-जीवन की गतिविधियों और वहां के लोगों की भाषा की अंतर्ध्वनियां पूरी स्पष्टता में सुनाई देती हैं। मूलतः वह परिवार, प्रेम और प्रकृति के कवि हैं लेकिन जहां भी उन्होंने अपनी कविता को राजनीतिक रंग दिया, वहां भी वह अपनी मौलिकता और विश्वसनीयता के साथ हैं।

प्रश्न : **कविता के लिए आप संवेदन-अनुभूतियों को किस तरह ग्रहण करते हैं?**

उत्तर : जो चीज मुझे छूती है, उसे वैज्ञानिक दृष्टि से एनालाइज़ करूं और ये देखूं कि यह क्या आगे ले जाती है या नहीं, रोकती है या पीछे ले जाती है? इनको अगर मैं देख लूं कि इससे यह परिणाम निकलता है, इसमें जीवन का कोई सत्य है, कोई चीज़ है जिसको मैं पकड़ना चाहता हूं, जो कोई नहीं पकड़ता है, इसमें ये चीज़ मिलती है, तो मैं उसे ले लेता हूं। मुझको कोई सारतत्व, सत्य मिलेगा, जिसको वह उद्घाटित करे या उसको नंगा कर दे या मुझे नंगा कर दे या समाज का अच्छा रूप बना दे तो मैं उससे 'मूव' होता हूं, तो जरूर लिखता हूं। और अगर 'मूव' नहीं कर पाती तो ऐसी तो घटनाएं रोज़ होती हैं, हम नहीं लिखते उन पर। हम रोज़ डकैत-पुलिस देखते हैं, लाठी चलती है, कत्लेआम में भी चल जाती है, वह हमें नहीं 'मूव' कर सकती, क्योंकि दोनों पक्षों को हम जानते हैं कि एक से एक बेईमान हैं, ईर्ष्या-द्वेष से जल रहे हैं। इसका निदान हमारी कविता थोड़े ही है!

आजकल यथार्थवाद के नाम पर एक आग्रह चल पड़ा है कि जीवन का यथार्थ अत्यंत सामान्य है, इसलिए जीवन की बहुत साधारण घटनाओं, अनुभूतियों पर ही कविता लिखनी चाहिए?

जीवन बहुत जटिल, द्वंद्वमय, अंतर्विरोधों से भरा हुआ और व्यापक है। घटनाएं हरेक के जीवन में होती हैं। घटनाएं हरेक देखता है। लेकिन ये घटनाएं जो दैनिक जीवन वाली हैं, वे हमारे जीवन के व्यापक क्षेत्र को प्रभावित नहीं करतीं। किसी ने किसी को अपशब्द कह दिए, लड़ाई हो गई, थप्पड़ मार दिया, तब भी सिम्पैथी मिलनी चाहिए। लेकिन रोज के देखते-देखते आदमी इससे प्रभावित नहीं होता। यह आपको 'मूव' नहीं करतीं। अगर कोई भिक्षुणी बैठी है, युवती है और उसे कोई यंगमैन लड़का छेड़छाड़ करता है, उसको परेशान करता है, तो आपकी प्रतिक्रिया दूसरी हो जाएगी। जहां एक दूसरे को तंग करता है और वह बिल्कुल निर्दोष है, अपना सहज जीवन जीता है, आप नहीं जीने देते तो हम को 'मूव' हो जाना चाहिए। यह बहुत आवश्यक है। लेकिन समर्थ रचनाकार आजकल उपन्यास में हर तरह की घटनाएं लिखने लगे हैं। अगर कोहनी छू गई तो लेखक उस पर कई पृष्ठ लिख जाते हैं। हर यथार्थ काव्य का नहीं होता। मैं उन्हीं को काव्य में या उपन्यास में लाना चाहता हूं, जो मेरे जीवन में, दूसरे लोगों के जीवन में विकृति लाता है, जिसे तोड़ना आवश्यक है। इस यथार्थ को चुनना और बिंबित करना चाहिए, मेरा यह अभिमत है।

भावात्मक सत्य के अंतर्गत कि जैसे 'वसंती हवा' क्या है, उसके आने पर क्या होता है.....

देखिए, पेड़ों पर कविता लिखिए। पेड़ बोलते हैं नहीं, पेड़ तो अपनी बात कह नहीं सकते। आप जो कविता लिखते हैं, उसमें एक वस्तु को दूसरी वस्तु से संबद्धता प्रदान करते हैं और अपने जीवन से उसे जोड़कर आप देखते हैं, तब जाकर कविता उभरती है, उस परिवेश को व्यक्त करती है। अगर आप यही कहने लगे, अमूर्त ढंग से कि बहुत सुंदर है, बड़ा भोला चेहरा है, तो कोई वासना नहीं जाग्रत होती। समझे आप? बड़ा मलाई जैसा बदन है—यह कहें तो, यह तो नहीं 'टच' करेगी। यह कविता नहीं है। जो लिखने वाला है, उसे सोचना चाहिए कि हम क्या दे रहे हैं, कहां है संबद्धता। 'धूप' हमने लिखी है—*धूप-धरा पर उतरी/ जैसे शिव के जटाजूट से गंगा उतरी/क्या धूप का वर्णन है? और—/धूप—बैठा है खरगोश पलंग पर/उजला रोंयेदार मुलायम/इसको छूकर जीने का एहसास हो गया।*

(उत्साह के साथ) टचिंग! आप जीवन में देखिए तो। महामुनि की तरह बैठ गए आप, योगिराज की तरह आपने कह दिया, इससे नहीं होगा। हमारा कहने का तात्पर्य है कि आपका इंद्रिय-बोध जगे। जैसे कवि का बोध जागता है। फिर मानसिक चिंतन, मानसिक लगाव होता है शब्दों का, पूरी रचना-प्रक्रिया चलती है। न चाक्षुष है, न कुछ है सुंदर है, सुंदर है, सुंदर है। यह क्या सुंदर है मेरे बंधु! मैंने बहुत धूप खायी है...

आज कविता में अभिव्यक्ति की जटिलता का प्रारूप इतना बढ़ गया है कि वह जनतंत्रीकरण से दूर हट रही है?

आज की पूरी की पूरी हिंदी कविता अभिव्यक्ति की जटिलता से ग्रसित नहीं है। कुछेक व्यक्तिवादी कवियों को छोड़कर शेष कवि जैसी कविता लिखते हैं, वह जटिल नहीं कही जा सकती। यदि उसे गद्य-पद्य की मिली-जुली आम आदमी के संस्पर्शों की साधारण अभिव्यक्ति कहा जाए, तो ठीक होगा। इन कविताओं में न स्थापत्य है, न काव्य की परंपराओं का निरूपण है, न शिल्प है और न मानसिक एकांत की अजूबी आंतरिक अभिव्यक्ति होती है। इन सबसे बची रहकर ऐसी कविता उत्कृष्ट कविता न होकर आदमी के दैनिक जीवन की लघु अभिव्यक्ति होती है। ऐसी अभिव्यक्तियों का न कोई मानवीय मूल्य होता है, न महत्त्व। इसलिए वे पढ़ी जाने के बाद बिसर जाती हैं और कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ पातीं। इधर तथाकथित वैयक्तिक विशिष्टता की निजता की कविताएं भारी और जटिल मालूम होती हैं। जटिलता भी कविता में कई तरह से प्रवेश कर जाती है। एक तो यही कारण है कि आम पाठक विशिष्ट बोध का पाठक नहीं होता। दूसरा कारण, ऐसी कविताओं में शब्द-संयोजन

गुंफित होता है और अपरिचित लय-गति से इसका निर्माण होता है, तभी वे संप्रेषणीय नहीं हो पातीं। केवल बौद्धिकों की रुचियों की होती हैं। आज के कवि अपनी बात कहते हुए दूसरों के मन की बात कहें, गद्य-पद्य विशिष्ट होते हुए भी पाठकों की अपनी कविता हो। कलात्मकता और विशिष्टता जन-जीवन के संसर्ग से प्राप्त की जाएं और जनजीवन को रुचिर बनाएं, तभी दोनों को मानवीय गरिमा प्राप्त हो सकती है।

आज की कविता, कविता की अपनी पहचान खोती चली जा रही है, और यही हाल कवि की अपनी पहचान का भी है। यदि कविता अपनी पहचान खो देगी तो कवि अपनी पहचान कैसे बनाए रख सकता है?

प्रत्येक कविता अपने कृतिकार की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति में उसके व्यक्तित्व की इकाई प्रतिष्ठित होती है तथा इकाई का अपना रूप होता है। इस रूप के द्वारा ही कविता की पहचान होती है। इसीलिए प्रत्येक कवि की कविता को दूसरे कवि की कविता के अस्तित्व से अलग होना चाहिए। आजकल आमतौर से जो कविताएं प्रकाशित होती हैं, वह लगभग एक प्रकार के काव्य और शिल्प से रची गई होती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि लगभग सभी कवि कविता का जनतंत्रीकरण करने में लगे हुए हैं। आजकल व्यक्तिवादी कवि मौलिकता का यह अर्थ लगाते हैं कि वह केवल कवि की निजता को व्यक्त करें, जिसका कोई संबंध सामाजिकता या जनजीवन से प्रत्यक्षतः न हो और जहां तक हो सके ऐसा कुछ कहा जाए जो अप्रत्यक्षतः रहकर, दूर की झलक दे सके। सारा विवाद जीवन-दर्शन का है। कवियों के पास वैज्ञानिक जीवन-दर्शन का अभाव है और कृतित्व वैज्ञानिक-बोध के अभाव में विशिष्ट नहीं बन पाता। यही है वह युगीन साहित्यिक परिप्रेक्ष्य जिसमें जो कुछ लिखा जाता है, वह लगभग एक ही तरह का होता है। कृति का विशिष्ट होना कदापि जन जीवन को नकारना नहीं है, वरन् जीवन की वास्तविकताओं को, उसके यथार्थ को एक स्थापत्य देना है, जो अपनी संप्रेष्णीयता से पाठक को जागरूक और चेतन बना सके। कविता को वही संघर्ष करना पड़ता है, जो आदमी को जीवन जीने के लिए करना पड़ता है। जो कवि द्वंद्व को भेदकर सत्य के पास पहुंचता है, वही कवि विशिष्ट रचना दे सकता है। इसके विपरीत घिसे-पिटे आचरण में रहकर कोई भी उपलब्धि नहीं दे सकता। लेकिन ऐसा कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि साहित्य का अपना कोई अलग से शाश्वत शास्त्र-विधान है। साहित्य भी आगे भविष्य की ओर बढ़ता है और इस क्रम में अपनी परंपरा को जोड़ता-तोड़ता है, चाहे वह कथ्य की पकड़ की परंपरा हो या शिल्प के सृष्टि की परंपरा हो। ऐसा नहीं, है कि अच्छी कविता न लिखी जा रही हो। निश्चय ही ऐसी कविताओं की संख्या कम हो सकती है, लेकिन आज भी कविता, विशिष्ट होकर जनमानस को प्रभावित करती है।

काल-परिवर्तन के साथ-साथ रचनाकारों की विचारधारा में उनका दृष्टि-परिवर्तन होता देखा गया है। क्या ऐसा परिवर्तन आपकी रचनाओं में भी आया है?

मैं भी देश काल की परिस्थितियों में जीता हूं। काफी लंबे अरसे से मैं जीवन से टक्कर लेता रहा हूं। सत्य की तलाश में असत्य से भिड़ता रहा हूं—प्रगतिशील कविता के लिए भी मैं संघर्ष करता रहा हूं। हां, जब तक मैं मार्क्सवाद के जीवन-दर्शन से परिचित नहीं हुआ था, तब तक मैं भी परंपरागत काव्य के लेखन में लीन रहा हूं। पहले का मेरा सामाजिक परिवेश मेरे जीवन को उसी तरह बनाता रहा, लेकिन जब मुझे ऐतिहासिक द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के जीवन-दर्शन से लगाव हो गया, तब से मेरा पहले वाला कृतिकार बदल गया और मुझे इसी जीवन-दर्शन से लगाव हो गया। मैं इसी जीवन-दर्शन से दृष्टि प्राप्त कर जगत को देखने-समझने लगा। मेरी कविताएं भी पहले से बदलकर दूसरी तरह की हो गईं। बदली हुई कविताओं में जीवन के विविध पक्ष उद्घाटित होने लगे और मेरी भाषा उसी के अनुरूप अपनी सारगर्भित यात्रा करने लगी।

द्वितीय विश्वयुद्ध में सैनिक थोड़ी-सी मोहलत में मैक्सिम गोर्की, लिए टॉलस्टाय के उपन्यास और मायकोव्स्की की कविताएं पढ़ते थे, अपनी पत्नियों के नाम अच्छे-अच्छे पत्र लिखते थे, उसमें क्या साहित्य की कोई प्रेरणा, कोई भूमिका नहीं थी?

वहां के बारे में, मैं अधिक नहीं जानता। हां, वहां के लोग अधिक समझदार थे, यही मैं कह सकता हूं। यहां के लोग इस योग्य नहीं हैं कि इनका साहित्य लिखा हुआ—सैनिक जो लड़ रहा है तिब्बत सीमा पर, हिम में गल रहा है देश के लिए या पाकिस्तान की सीमा पर है, वो इनका साहित्य पढ़े। क्या लिखते हैं बताइए आप? किसी के दिल में है प्रेम, सही-सही देखिए, टटोल के देखिए। अपने सहोदर से प्रेम नहीं, पिता से प्रेम नहीं, बहनों से प्रेम नहीं, पत्नी-प्रेमिका से प्रेम नहीं, समाज से प्रेम नहीं, सिवाय अपने किसी चीज की फुर्सत नहीं। कोई सत्य उनके पास नहीं है। कभी सोचा...।

क्या आप लेखक की जीविका के लिए मात्र लेखन कार्य पर निर्भर रहना अनुचित समझते हैं?

जीविका के लिए मात्र लेखन कार्य पर निर्भर रहना मैं अनुचित समझता हूं। लेखक हो या कवि, वह संघर्षशील संसार में सत्य का नैकट्य प्राप्त करना चाहता है। वह सत्य की अभिव्यक्ति के लिए रचना-सृष्टि करता है। यह उसका महान मानवीय दायित्व और कर्त्तव्य होता है, जिसे वह पूरा करता है। कविता की सृष्टि जीविका कमाने के लिए नहीं होती है। उदर पोषण या नौकरी प्राप्त करना, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करना पड़ता है। इसलिए यदि सामाजिक व्यवस्था कर दी जाए, बेकारी मिटा दी जाए, सबको क्षमता के अनुसार कार्य मिलने लगे तो कवि भी अपनी जीविका अर्जित करने लगेगा और जीविकोपार्जन के लिए कविता न लिखनी पड़ेगी। लेकिन अभी वह दिन दूर है, अपने देश में नहीं आया। इसलिए बेचारे कवि कविता के माध्यम से पेट भरने का तरीका अपनाते हैं और कविता को रोटी की आकृति में देखते हैं। इसलिए यदि कोई कवि अपनी कविता को जीविका के लिए ही लगा देता है तो वह निश्चय ही गलती करता है।

इलेक्ट्रानिक मीडिया और संचार की नई तकनीक का साहित्य और संस्कृति पर होने वाले प्रभावों का मूल्यांकन आप किस प्रकार करते हैं?

संचार की नई तकनीकी उपलब्धियां प्रगतिशील जीवन का प्रतिबिंब नहीं करतीं। इसकी वर्तमान प्रणाली से जनहित नहीं हो सकता, आदमी को जड़ता दूर ही नहीं हो सकती, मनुष्य इनके ऊपरी तामझाम से आकृष्ट होकर उसी में खो जाता है। चेतना के विकास का काम इनके माध्यम से नहीं हो पा रहा है। मैं यही समझता हूं।

इधर आपने जो कविताएं लिखी हैं, हम सुनना चाहेंगे...

(हंसते हैं) अच्छा, सुनो—*दुख ने मुझको/जब-जब तोड़ा/मैंने अपने टूटेपन को/कविता की ममता से जोड़ा/जहां गिरा मैं/कविताओं ने मुझे उठाया/हम दोनों ने/वहां प्रातः का सूर्य उगाया/'सच'/अब ऐसा नासमझ हो गया है/कि 'झूठ' से भी बड़ा/झूठ हो गया है/सरकार की सड़क हो गई है/इस सड़क पर चलकर/आदमी की कड़क खो गई है।*

देखिए, कविताई न मैंने पाई, न चुराई, इसे मैंने जीवन जोतकर किसान की तरह बोया और काटा है। यह मेरी अपनी है, और मुझे प्राण से अधिक प्यारी है।❑

संपर्क : एच-108, शिवाजी पार्क, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-110026

कवि केदारनाथ अग्रवाल का प्रेम दर्शन

ज्योति किरण

'मनुष्य जब तक प्यार करता है वह अपनी चरित्रगत उदारता से नहीं गिरता'—पाश्चात्य विचारक लेम्ब का यह विचार जीवन का वह दर्शन है जो जीवन को स्वस्थ, संपूर्ण और सही दिशा देता है। सच्चा प्रेम जीवन की वह शक्ति है जो मनुष्य की तमाम कमियों को खूबियों में बदल देती है। इसकी व्यापकता और सार्वभौमिकता सवालों से परे है। जब-जब मनुष्य प्रेम के स्वस्थ भाव-बोध से दूर हुआ है मनुष्यता की सीमा सीमित और संकीर्ण हुई है।

'प्रेम' महज़ स्त्री-पुरुष संबंधों की रागात्मकता को ही नहीं मानता वरन् उससे आगे वात्सल्य, क्षेत्र, देश, जन, धरती तक व्याप्त होता है। अपने देश और जनपद के प्रति कवि केदार का प्रेम वह रागात्मक अंतःसूत्र है जो उन्हें पारिवारिक प्रेम से लेकर विश्व प्रेम तक बांधता है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं प्रेम की सहजता और सरलता में भी जीवन के उस दर्शन से जोड़ती हैं जो जीवन को हमेशा अर्थवान और मूल्यवान बनाता है। कवि केदार 'प्रेम' को जीवनमूल्य मानते हैं। *आत्मगंध* की भूमिका में उन्होंने लिखा है—'मैं प्रेम को जीवन का मूल्य मानता हूं। इतना ही नहीं, प्रेम मानवीय चेतना की परम उपलब्धि है, जिसे प्राप्त कर आदमी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है।' जीवन का यह सर्वोच्च मूल्य ही वास्तव में जीवन का सबसे बड़ा दर्शन है। यहीं से जीवन का उत्स होता है और विसर्जन भी। यहीं से हम सशक्त होते हैं और कमज़ोर भी। जीवन के सभी क्रिया-कलाप यहीं से नियमित और नियंत्रित हैं। जो यहां चुक जाता है, वो हर जगह चुक जाता है। जीवन के इस वृत्ति को जो समझ लेता है, वह जीवन में उत्तरोत्तर ऊंचा उठता है। केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं—*'हे मेरी तुम!/ प्यार नहीं पाथर की नाव/डूब जाय जो नदिया में/भारी भार भरी/ हे मेरी तुम!/प्यार सिंधु की/लहर-छहर है—/गमनागमनी है/आक्रीड़न है/आर-पार का उत्तोलन है।'*

> *केदारनाथ अग्रवाल की प्रेम कविताएं सिर्फ प्रेमी या प्रेमिका के प्रति मानवीय और सहृदय नहीं बनाती बल्कि पूरे परिवेश के प्रति, हर एक व्यक्ति के प्रति हमें आत्मीय बनाती हैं। प्रेमपूर्ण वातावरण में ही मानवता के विकास के सभी रास्ते खुलते हैं। सामाजिक गतिरोध वहां होता है जहां स्वस्थ प्रेम का अभाव होता है। लोक और आलोक की भूमिका में केदारनाथ अग्रवाल ने कहा है—"कविताई न मैंने पाई, न चुराई। इसे मैंने जीवन जोत कर किसान की तरह बोया और काटा है। यह मेरी अपनी है, और मुझे प्राण से अधिक प्यारी है।"*

प्रेम का यह दर्शन मनुष्य में मनुष्यता विकसित करता है, मानवता स्थापित करता है। मनुष्यता का विकास 'प्रेम का आधार' है। बृहत्तर मानवता के जो मूल्य हैं वही प्रेम के मूल्य हैं। उज्ज्वल मन का उजास की वस्तुतः प्रेम का प्रकाश है। यह आधार वास्तव में जितना पुष्ट और पुख्ता होगा, जीवन का आनंद उतना ही गहरा और व्यापक होगा। स्वकीया प्रेम के भावभूमि पर भी ये कविताएं प्रेम की व्यापकता का एहसास कराती हैं। जीवन के सभी रंग यहां मौजूद हैं। यह आनंद जीवन का ही ध्येय नहीं है बल्कि समग्र साहित्य का भी अंतिम लक्ष्य है—*'हे मेरी तुम!/आओ बैठें पास-पास/हम हास और परिहास करें/एक-दूसरे को निहारकर/जीने का अभ्यास करें।'*

जीने का यह अभ्यास ही जीवन में आस्था और सौंदर्य पैदा करता है। यहीं से उल्लास और उमंग का उत्स होता है। जायसी ने भी कहा है—संसार में प्रेम से अधिक सुंदर और काव्य कुछ भी नहीं है। प्रेम ही मनुष्य के जीवन का चरम मूल्य है, जिसे पाकर मनुष्य बैकुंठी होता है, अन्यथा वह एक मुट्ठी राख नहीं तो क्या है—*मानुष प्रेम भएउ बैकुंठी/नाहीं त काह छार भरि मुट्ठी।*

केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं बैकुंठी प्रेम का आभास कराती हैं। जीवन के कठोर यथार्थ से लड़ते-लड़ते जब मन हारने लगता है तब एक मुस्कान भी जीवन में असीम आनंद भर देता है—*हे मेरी तुम!/कटु यथार्थ से लड़ते-लड़ते/अब न लड़ा जाता है मुझसे/हे मेरी तुम!/अब तुम ही थोड़ा मुसका दो/जीने का उल्लास जगा दो।*

सच्चा और निर्मल-निश्छल प्रेम जीवन के ताप को सोख लेता है। वास्तव में प्रेम 'अहं' के समर्पण एवं तिरोहण का नाम है। जो प्रेम का इष्ट है, वही केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का लक्ष्य है। अहं का पूर्ण विसर्जन प्रेम की अंतिम परिणति है। ऐसी स्थिति में व्यष्टिगत चेतना समष्टिगत चेतना में परिणत हो जाती है—

फूल तुम्हारे लिए खिला है/ लाल-लाल पंखुरियां खोले/ ग़ज़ब गुलाल। हे मेरी तुम! इसे देखकर चूमो चूम-चूमकर झूमो/झूम-झूमकर नाचो-गाओ; कुटिल काल देखे/ मुंह बाए, मुग्ध-मगन हो जाए/ नेह-नीर हो बरसे-हरसे/जड़ हो चेतन/ चेतन हो/ जीवन की धारा/ धारा काटे निष्ठुर कगारा/मानव को मानव हो प्यारा/जग हो फूल गुलाब हमारा।

केदारनाथ अग्रवाल की प्रेम कविताएं सिर्फ प्रेमी या प्रेमिका के प्रति मानवीय और सहृदय नहीं बनाती बल्कि पूरे परिवेश के प्रति, हर एक व्यक्ति के प्रति हमें आत्मीय बनाती हैं। इसलिए प्रेमपूर्ण वातावरण में ही मानवता के विकास के सभी रास्ते खुलते हैं। सामाजिक गतिरोध वहां होता है जहां स्वस्थ प्रेम का अभाव होता है। *लोक और आलोक* की भूमिका में केदारनाथ अग्रवाल ने कहा है—"कविताई न मैंने पाई, न चुराई। इसे मैंने जीवन जोतकर किसान की तरह बोया और काटा है। यह मेरी अपनी है, और मुझे प्राण से अधिक प्यारी है।" यही कारण है इनकी कविताओं में जीवन का सहज-सरल आकर्षण, आद्यंत मौजूद है। जब हम संकीर्ण स्वार्थी विकारों से मुक्त हो उदात्तीकरण की ओर उठते हैं तब हम सही मायने में प्रेममय होते हैं। यह प्रेम हमे अजर बनाता है, यह प्रेम हमें अमर बनाता है। यह प्रेम हमें जीने की तमीज़ सिखाता है, मरने की तहज़ीब सिखाता है। कवि त्रिलोचन को भी अपनी प्रिया का प्यार जगजीवन का प्रेमी बनाता है—*मुझे जगत-जीवन का प्रेमी बना रहा है तुम्हारा प्यार।*

प्रेम के इस विराट दर्शन में सभ्यता के आरंभ से ही पूरी प्रकृति—सृष्टि महफूज़ है। यह भाव केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का मूल भाव है। इसी को लक्षित करते हुए आलोचक डा. नामवर सिंह ने कहा है—"प्रगतिशील कवि का प्रेम इतना स्वस्थ और स्फूर्तिदायक इसलिए है कि वह प्रेम को संपूर्ण जीवन का अंग समझकर अनुभव करता है। प्रयोगवादी कवि की तरह वह संपूर्ण

जीवन से प्रेम संबंध को काटकर देखने का आदी नहीं है। जिस तरह इसके प्रेम संबंध को सामाजिकता सुधारती चलती है, इसी तरह उसका प्रेम संबंध सामाजिक भावना को भी बल देता चलता है।''

सामाजिकता का विकास केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं का मूलाधार है, जो प्रेम जीवन को कर्ममय सौंदर्य से नवाज़ता है, वह प्रेम धन्य है– *'कष्टों में भी मुझको/कर्ममय बनाता प्रेम तुम्हारा।* प्रेम का यह दर्शन कर्मनिष्ठ जीवन का संदेश देता है। आज भौतिकवादी सोच और संस्कृति के परिणामस्वरूप (विकारग्रस्त) प्रेम मनुष्य को कर्महीन बनाता है और कभी-कभी जीवनहीन भी। यह प्रेम का वह पक्ष है जो वास्तव में उसका है नहीं।

आदि कवि वाल्मीकि ने भी राम और सीता के प्रेम का विकास मिथिला या अयोध्या के महलों और बगीचों में न दिखाकर दंडकारण्य के विस्तृत, कर्मक्षेत्र के बीच दिखाया है। ऐसा प्रेम वास्तव में जीवन-यात्रा के मार्ग में माधुर्य और आनंद फैलाने वाला होता है। संपूर्ण कर्मक्षेत्र जगमग हो जाता है। प्रिय के आनंद से प्रेमी का हृदय ही आनंदित नहीं होता बल्कि संसार की सभी वस्तुएं अधिक प्रिय और आनंदप्रद हो जाती हैं। यह प्रेम का शक्तिशाली पक्ष है जिससे आनंद का विस्तार होता है–*हे मेरी तुम!/सर्प–यज्ञ की सुधि बिसराए/जन-मन-मंगल से/उत्तोलित/शुभाशीष का हाथ हो गया/अमानिशा को आत्मसात् कर/वेणी ललित-ललाम हो गया/उर्ध्व गमन के लिए ज्ञान का/सहज-सुलभ सोपान हो गया/हे मेरी तुम! अब की जैसी/नागपंचमी कभी न आई/नागराज को दूध पिलाओ, जीवन की जय-जीत मनाओ।*

यह प्रेम का उज्ज्वल पक्ष हैं जो जीवन का दैन्य और दीनता ढक देता है। प्रेम की व्यापकता को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है–''एकांतिक प्रेम की अपेक्षा हम उस प्रेम का अधिक मान करते हैं जो संजीवन रस के रूप में प्रेमी के सारे जीवन-पथ को रमणीय और सुंदर कर देता है, उसके सारे कर्मक्षेत्र को अपनी ज्योति से जगमगा देता है। जो प्रेम जीवन की नीरसता हटाकर उसमें सरलता ला दे, वह प्रेम धन्य है। जिस प्रेम का रंजनकारी प्रभाव विद्वान की बुद्धि, कवि की प्रतिभा, चित्रकार की कला, उद्योगी की तत्परता, वीर के उत्साह तक बराबर फैली दिखाई दे उसे हम भगवान का अनुग्रह समझते हैं। भगवद्भक्ति के लिए हम तो प्रेम की यह पद्धति समीचीन मानते हैं। जब उस परमप्रिय संबंध से सारा जगत प्रिय हो सकता है।'' मनुष्य को चारित्रिक उदारता और ऊंचाई पर पहुंचाने वाले इस उदात्त प्रेम की पहचान ही मनुष्यता की मूल पहचान है। विश्वबंधुत्व की अवधारणा भी प्रेम का ही एक विश्वव्यापी दर्शन है।

प्रेम मनुष्य को अंदर से भी जोड़ता है और बाहर से भी। यही एक ऐसा भाव है जिसके अभाव में मानव वास्तव में मानव नहीं रहता। यही एक ऐसा भाव है जिसकी व्यंजना रोकर भी की जाती है और हंसकर भी। जो जितना प्यार पाता है उससे ज्यादा देना चाहता है। प्रेम जीवन में ज्वार की तरह नहीं आता, बल्कि बहार की तरह संपूर्ण जीवन को आनंदित करता है, सुख-दुख में बांधे रखता है–*हे मेरी तुम!/खेल-खेल में खेल न जीते/जीवन के दिन रीते बीते/हारे बाज़ी लगातार हम/अपनी गोट नहीं पक पाई/मात मुहब्बत ने भी खाई/हे मेरी तुम!/आओ बैठो इसी रेत पर/हमने-तुमने जिस पर चलकर/उमर गंवाई।*

साथ-साथ चलने की खुशी हार-जीत से परे है। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में स्वकीया प्रेम का वह दर्शन है जिससे भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक अवधारणा मज़बूत होती है। ❑

संपर्क : हिंदी विभाग, महिला महाविद्यालय, किदवई नगर, कानपुर।

कमला प्रसाद

नए लेखकों को बढ़ावा देने, उनसे आत्मीयता स्थापित करने वाले हिंदी के वरिष्ठ आलोचक और प्रगतिशील लेखक संघ के राष्ट्रीय महासचिव 73 वर्षीय कमला प्रसाद का 25 मार्च 2011 को निधन हो गया। कमला प्रसाद जी का जन्म मध्य प्रदेश के सतना जिले के धौरहरा गांव में किसान परिवार में 14 फरवरी 1938 को हुआ था। सागर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम.ए. करने के बाद उन्होंने सतना और भोपाल में अध्यापन कार्य प्रारंभ किया। बाद में कमला प्रसाद जी अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय के हिंदी विभागाध्यक्ष हुए। इस पद पर रहते हुए उन्होंने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्य किए। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उन्होंने 'अंतरभारती' की स्थापना की। प्रलेस और हिंदी साहित्य के कार्य को आगे बढ़ाने वालों में प्रमुख कमला प्रसाद ने हरिशंकर परसाई द्वारा संस्थापित *वसुधा* पत्रिका का संपादन ज्ञानरंजन जी के साथ किया। बाद में आप अकेले ही जीवनपर्यंत *वसुधा* का संपादन करते रहे। *वसुधा* के संपादन के अतिरिक्त *पहल* पत्रिका से भी आप कुछ समय तक जुड़े रहे। अंत तक आप प्रलेस के महासचिव रहे।

आपकी कृतियों में प्रमुख हैं–साहित्य शास्त्र, छायावाद-प्रकृति और प्रयोग, छायावादोत्तर काव्य की सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, साहित्य और विचारधारा, रचना और आलोचना की द्वंदात्मकता, समकालीन हिंदी निबंध, मध्ययुगीन रचना और मूल्य, कविता तीरे तथा आलोचक और आलोचना आदि। विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्ति के पश्चात आप मध्य प्रदेश कला परिषद के निदेशक रहे और कुछ समय केंद्रीय हिंदी संस्थान (आगरा) के अध्यक्ष भी रहे।

आजकल परिवार की श्रद्धांजलि!

दांपत्य-रस के अनूठे कवि

नंदकिशोर नंदन

जहां अधिकतर समकालीन हिंदी कवि अपनी कविताओं में प्रेमिका के प्रति अपनी अनुरक्ति-रंजित अनुभूतियों एवं उसकी विविध सौंदर्य-छवियों को अभिव्यक्त कर आत्मगर्वित अनुभव करते हैं वहां केदारनाथ अग्रवाल, अपनी पत्नी में ही अपने प्रेम और सौंदर्य-बोध को मूर्तिमान कर अभिव्यक्त करते हैं। उन्हें यह लिखते हुए कहीं से भी कोई संकोच नहीं होता बल्कि यह भी स्पष्ट करते हैं कि उनकी कविताओं में जहां कहीं भी दूसरी नारियों के प्रति अनुराग की प्रतीति होती है, वह वास्तविक न होकर परंपरागत काव्य संस्कार की अभिव्यक्ति है। उन्हीं के शब्दों में—"मैं मूलतः पत्नी प्रेमी रहा हूं और मेरी प्रेम की कविताएं उन्हीं के प्रेम और सौंदर्य की कविताएं हैं। कहीं-कहीं कभी-कभी कुछ कविताएं ऐसी झलक दे जाती हैं जैसे कि मैं उनके अलावा भी दूसरी नारियों से घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहा हूं। बात ऐसी नहीं है। जो मैं ऐसा लिख गया हूं, वह केवल पारंपरिक काव्य-संस्कार का परिणाम है, जो घर की चहारदीवारी से बाहर पहुंच गया है।" (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ संख्या 15) यह विस्मयकारी है कि कवि 73 वर्ष की उम्र में ऐसी प्रेम कविताओं का संग्रह *जमुन जल तुम* प्रकाशित करते हुए किंचित मात्र संकोच नहीं करता, जिनमें कुछ कविताएं परंपरागत रीतिकालीन भावबोध की कविताएं हैं और उनकी भाषा और छंद-विन्यास भी रीतिकालीन है। अपने को अधिक से अधिक आधुनिक और प्रगतिशील दिखने-दिखाने के क्रम में अपनी निजता को सात पर्दों में छिपाकर अधिक प्रगतिशील बनने वाली कविता और कवियों के लिए यह एक चुनौती है।

जमुन जल तुम की पहली कविता छायावादी प्रेमानुभूति की है तो दूसरी और तीसरी कविता सवैया छंद में है, जिसमें कवि पूरी तरह रीतिकालीन रंग में है। निम्नांकित सवैया से गुजरते हुए किसी भी काव्य-मर्मज्ञ को घनानंद की याद आए बिना नहीं रहेगी—

कर जोरि करौं अब एती बिनैं नहि ध्यान मैं चूक हमारी जु लाइएं
हम ठाढ़े ठगे रहे पेखिबे कों पुनि का इत स्वागत साज सजाइए।
सब भांति तिहारे बने हम तौ पद पावन आंकि हिए तट जाइएं
अवलोकि जिन्हैं निज नैनन से तुबधाम को सूधे चलि आइए।

(*जमुन जल तुम*, पृष्ठ 19)

केदार कृषक, मज़दूर और प्रकृति के जितने निकट हैं, उतने ही गृह-जीवन के भी निकट हैं। उनकी कविता में पत्नी के प्रति उत्कट प्रेम की सहज अभिव्यक्ति के ही साथ बच्चों के प्रति भी उनकी सहज वत्सलता प्रकट हुई है, जिसका उल्लेख मैं बाद में करूंगा पर पहले उनके पत्नी-प्रेम के कुछ मनोरम चित्र देखें। जब प्रेम प्रगाढ़ रूप में पत्नी और पति दोनों के बीच पलता है, तो वह सार्थक परिणति के रूप में दांपत्य का आदर्श बनता है। एकतरफ़ा प्रेम किसी के साथ हो, असफलता की कहानी बनकर रह जाता है। दोनों तरफ़ पलने वाले इस प्रेम को केदार कवित्त छंद में व्यक्त करते हुए मैथिलीशरण गुप्त (दोनों ओर प्रेम पलता है) और उर्दू के प्रसिद्ध शायर ग़ालिब (दोनों तरफ़ है आग बराबर लगी हुई) से होड़ लेते हैं—*दूर होके मुझसे वे पाते हैं न चैन कभी/ध्यान उन्हें प्रतिपल मेरा बना रहता/होकर अकेले सुख मिलता मुझे भी नहीं/आंखों में समाया उनका ही रूप रहता/छाए रहते हैं धन आशा के उनके उर/मानस में मेरे भाव सिंधु है लहरता/दोनों ओर लग गई है अब प्रेम आग/देखें कौन बुझता है और कौन जलता!* (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ 24)

> *केदारनाथ अग्रवाल के पत्नी-प्रिया के रूप और सौंदर्य में जितनी गहरी मिठास है वैसी मिठास, वैसा माधुर्य न तो गीत में है और न ही कविता में। केदार जी अपने दांपत्य के मादक क्षणों को—अंतरंग अनुभवों को भी कविता में स्पष्टता और सहजता से उकेरते हैं। जिस युग में पत्नी के अलावा एक प्रेमिका की जरूरत की वकालत आधुनिक और प्रगतिशील कहलाने वाले कवि, लेखक करते हैं, वहां अपनी पत्नी को प्रेयसी से बढ़कर प्यार करने की उत्कटता प्रीतिकर अनुभूति से भर देती है।*

प्रेम प्रेयसी के प्रति हो या पत्नी के प्रति उसमें रूपाकर्षण की भूमिका कम नहीं होती बल्कि नेपाली ने तो यहां तक कह दिया है—*है रूप जहां बस प्रेम वहीं/प्रिय-दर्शन में कुछ खेद नहीं!*

केदार अपवाद नहीं हैं। उनकी दृष्टि में उनकी पत्नी-प्रिया के रूप और सौंदर्य में जितनी गहरी मिठास है वैसी मिठास, वैसा माधुर्य न तो गीत में है और न ही कविता में। धर्म-कर्म में तो मिठास का प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए वह पत्नी से यह आत्मीय अनुरोध करते हैं—*है न इतना गीत में रस/है न इतना काव्य में रस/रूप में जितना तुम्हारे/प्राणप्यारी, है भरा रस/धर्म-फल फीका बहुत है/कर्म फल फीका बहुत है/फिर चखाओ प्राण प्यारी!/प्रेम फल, मीठा बहुत है।* (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ 67)

प्रेमी और कवि भी अपनी प्रेमिका से वियुक्त होकर आठ-आठ आंसू बहाते हैं। रीतिकाल के कवि बिहारी ने विरह-वेदना को इस हद तक अतिरंजित करके प्रस्तुत किया है कि विरह की वेदना का मर्म जैसे आंसुओं के सागर में डूब गया है। उर्दू में भी इसकी बहुतायत है। लेकिन केदार की यह वेदना जितनी सहज है उतनी ही मार्मिक भी—*नहीं तुम निकट हो, नहीं तुम निकट हो/बहुत चांदनी है, तो क्या है, बताओ/अकेला हृदय है अंधेरा पड़ा है/नहीं तुम निकट हो, नहीं तुम निकट हो/बहुत फुल्ल तरु हैं, तो क्या है बताओ/महावृक्ष मेरा अकेला खड़ा है।* (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ संख्या-74 रचनाकाल, 26 नवंबर 1952)

पत्नी-प्रिया की अनुपस्थिति में चांदनी, नयनाभिराम फूलों तथा पेड़-पौधों

की हरियाली कवि मन के अंधकार और सूनेपन को दूर नहीं कर पाते। क्योंकि वह केवल प्रेम और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति ही नहीं है, वह कवि में प्राणों का संचार करने वाली प्राणमयी मनमोहिनी है जो उसके संतप्त जीवन में विद्रोह ही उत्ताल तरंगें उठाती है, और जिसकी एक उत्तप्त मुस्कान शोषण को जलाकर राख कर देने वाली है—*प्राणमयी मुस्कान तुम्हारी जब फूलों को पार करेगी/दीन-दुखी मेरे जीवन में तब विद्रोही ज्वार भरेगी/ज्वालामयी मुस्कान तुम्हारी जब शोषण को क्षार करेगी।* (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ-75, रचनाकाल 30 नवंबर 1952)

कवि अपनी पत्नी-प्रिया की इस मुस्कान को अपने अंतरतम की अतल गहराई से प्यार करता है, इस मधुर किंतु ज्वालामयी मुस्कान पर केवल उसका ही अधिकार है क्योंकि इस मुस्कान के बल पर उसने जीवन की समस्त विपत्तियों को पराजित किया है—*वह मुस्कान तुम्हारी है—जो अतिशय मुझको प्यारी है/मुझको छोड़ नहीं अब उसका कोई भी अधिकारी है/मेरी है वह मैंने उस पर सब तन्मयता वारी है/उसके कारन अब तो मुझसे सारी विपदा हारी है* (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ-95, रचनाकाल 12 अगस्त, 1956)

कवि पत्नी-प्रिया की केवल मुस्कान से ही अपने जीवन-संघर्ष में शक्ति नहीं पाता बल्कि उसके माथे पर पत्नी का दिया चुंबन भी उसे जीवन के घमासान युद्ध में अडिग रहने की प्रेरणा देता है—*मैं रणोद्यत हुआ/माथे पर लेकर चुंबन तुम्हारा/झिझका नहीं न अड़ा/बराबर लड़ा/घमासान संघर्ष में पड़ा/हाथ हारे-पांव हारे/मैं न हारा/माथ में चुंबन लिए जीता रहा* (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ-126, रचनाकाल, 15 नवंबर 1959)

केदार जी अपने दांपत्य के मादक क्षणों को—अंतरंग अनुभवों को भी कविता में इतनी स्पष्टता और सहजता से उकेरते हैं कि जिस युग में पत्नी के अलावा एक प्रेमिका की जरूरत की वकालत आधुनिक और प्रगतिशील कहलाने वाले कवि-लेखक करते हैं, वहां अपनी पत्नी को प्रेयसी से बढ़कर प्यार करने की उत्कटता हमें प्रीतिकर अनुभूति से भर देती है। प्रेम की यह एकनिष्ठता उनके समकालीन कवियों में खासकर नागार्जुन और नेपाली में दिखलाई पड़ती है। निराला तो इसकी अद्‌भुत मिसाल हैं ही। केदार की अपनी पत्नी-प्रिया के साथ एकात्मकता ऐसी है कि उसकी अनुपस्थिति उसे इसलिए भी विकल कर जाती है कि उन्हें कई दिनों से चुंबन का मसृण-सुख नहीं मिला है और वह दिए गए चुंबनों के अनुभवों को गुलाब की झर जाने वाली पंखुरियों के समान अनुभव करते हैं गोकि प्रथम दिन का चुंबन उनके अधरों से गुलाब की पंखुरी के समान चिपका था—*कई दिन हो गए/मुझे चुंबन दिए-मुझे छोड़कर गए/पहले दिन वह चुंबन रहा तुम्हारा चुंबन/गुलाब की पंखुरी की तरह मेरे होठ से चिपका/रक्ताभ-सुगंधित नशीला/दूसरे दिन वह चुंबन न रहा तुम्हारा चुंबन /झर ही तो गया मेरे होठ से वह चुंबन/गुलाब की पंखुरी की तरह जमीन पर /कांपता कराहता वियोगी।*

(*जमुन जल तुम*, पृष्ठ-129) 24 फरवरी, 1960

चुंबन की मर्मानुभूति अनुभव करने वाला कवि यह भी एहसास करा देता है कि वह नारी के शरीर को उसकी समग्रता में ही अनुभव करता है। तभी तो उसके उरोजों का वर्णन करते हुए वह कहीं भी मांसल नहीं हो पाता—*तुम्हारे उरोजों का सोना/कठोर ही नहीं/दूध की धार से भरा/कोमल भी है/कठोरता कोमलता का कवच है/तुम जानती हो न?*

(*जमुन जल तुम*, पृष्ठ-125, 15 नवंबर 1959)

केदार जी जब अपनी पत्नी-प्रिया को—हे! संबोधन से पुकारते हैं तो उनकी गहन प्रेम-भावना और अधिक घरेलूपन से परिपूर्ण हो उठती है। 'हे मेरी तुम' में उन्होंने वह अंतरंग अपनत्व भर दिया है, जो कदाचित दूसरे शब्दों में नहीं आ पाता। कवि के इस आत्मीय अनुरोध के अंतर्भाव को सहज ही अनुभव किया जा सकता है—*यह नीला-सा फूल तोड़कर/ मुझको दे दो/ताकि इसे मैं बरसाऊं बादल को पहले/भेंट चढाऊं/फिर वह बरसें/और तुम्हें नहलाए/अंग तुम्हारे झलकें/बादल को प्यारा लगता है/मिट्टी का यह नीला फूल/मुझको भी प्यारा लगता है/अंचल का यह गीला फूल!* (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ-117)

केदार के कवि की सौंदर्य चेतना और संघर्षशीलता एक ही कवि-व्यक्तित्व के अभिन्न पहलू हैं। दोनों को अलग करके उनका सम्यक मूल्यांकन संभव नहीं है। उनके काव्य में अभिव्यंजित गृहस्थ जीवन की छवियों में पत्नी-प्रिया के अलावा उनके बच्चे भी हैं, जिन्हें वह उसी गहराई, उसी ममत्व से प्यार करते हैं। उनके गृह-प्रेम ने उन्हें बांधने के बजाय मुक्त कर दिया है। इस संग्रह में बिटिया के लिए भी कविता है, जो पिता के ममत्व की तरलता से ओत-प्रोत है। उन्होंने कविता में 'आहा' शब्द का प्रयोग कर उसे और व्यंजक बना दिया है—*नवल अंग नन्हा-सा तेरा/तितली-सा दिखलाता है/पानी की मछली-सा चंचल/तब स्वभाव मन भाता है/आहा, तुझको प्यार करूं, बिटिया तुझे दुलार करूं।* (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ-21)

केदार जी जहां यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने परकीया प्रेम को उदात्तीकृत करने के बजाय अपने स्वकीया प्रेम को ही मानवीय प्रेम के रूप में अत्यंत सहजता और मुक्तता के साथ व्यक्त किया है, वहीं आज के कवियों द्वारा परकीया-प्रेम के आकर्षण की त्वरित आवेग वाली काव्य प्रवृत्ति पर उन्होंने गहरा असंतोष व्यक्त किया है—"आज, मेरे ऐसे प्रेम की कविताएं हिंदी काव्य में मिलना दुश्वार हैं। अब तो नए-नए उभरते स्वर वाले कवि-गण भी परकीया आकर्षण से ही अभिभूत होते हैं और क्षणिक आवेश की रचनाएं देकर पारस्परिक चुहलबाज़ी कर लेते हैं। ऐसी कविताएं सामाजिक दायित्व से हीन कविताएं होती हैं और ऐसे कवि न घर में प्रेम को प्रतिष्ठित कर पाते हैं, न समाज में।" (*जमुन जल तुम*, पृष्ठ-16)

यह बात केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवि ही कह सकते हैं, जिनके जीने और रचने में कोई फांक नहीं है, और इसी कारण वह जन-संघर्ष के जितने समर्थ कवि हैं, उतने ही वह प्रेम और सौंदर्य के भी समर्थ कवि हैं। ❑

संपर्क : 'हरीतिमा', चौधराइन मंदिर गली, नया टोला, मुज़फ़्फ़रपुर-842001

मैं समय की धार में धंसकर खड़ा हूं...

चंद्रकांत सिंह

केदारनाथ अग्रवाल हिंदी की प्रगतिशील काव्य परंपरा के जाने-माने स्तंभ हैं। हिंदी कविता को सजाने, संवारने और समय से लड़ सकने योग्य बनाने में जिन कुछेक कवियों का नाम लिया जा सकता है, कवियों की उस विरल परंपरा में केदारनाथ अग्रणी हैं। केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं समाज की कड़वी सच्चाइयों से न केवल रूबरू कराती हैं, बल्कि उनका हल भी प्रस्तुत करती हैं। आज जब पूंजी का कोई विकल्प नहीं है, आस्था से लेकर विश्वास तक में आर्थिक छद्मजीविता फैली हुई है, ऐसे अंधेरे समय में केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं स्वार्थ और निजता से ऊपर उठकर आम आदमी के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करती हैं। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में जीवन की संघर्षमयी गाथा है। *युग की गंगा, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पंख और पतवार, गुलमेंहदी, अपूर्वा* आदि उनके चुनिंदा कविता-संग्रह हैं। इन कविता-संग्रहों में कवि का युगबोध देखते ही बनता है। कवि के काव्य संसार की निर्मिति बुंदेलखंड जैसे पिछड़े इलाके में हुई, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गौरवशाली साहित्यिक प्रांगण ने कवि को कविता में रमने, भीगने, सिरजने का अवसर दिया। *फूल नहीं रंग बोलते हैं* कविता-संग्रह पर केदारनाथ अग्रवाल को 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' से 1973 में सम्मानित किया गया, यही नहीं *अपूर्वा* के लिए 1986 ई. में 'साहित्य अकादमी सम्मान' मिला। साहित्य अकादमी के अतिरिक्त केदारनाथ अग्रवाल को हिंदी संस्थान पुरस्कार, तुलसी पुरस्कार, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान से भी सम्मानित किया गया है। रूसी, जर्मन और चेक भाषा में उनकी कविताओं का अनुवाद भी हुआ है, जो इस बात का प्रमाण है कि कवि की काव्य-भूमि सार्वजनीन है।

> *केदार के यहां आए प्राकृतिक उपमान अपने रूप-विन्यास में इतने गहरे हैं कि उनकी कविता प्रकृति की सहचरी जान पड़ती है। अधिकांश आलोचकों ने केदार की कविता में आई गंवई प्रकृति को देखकर केदार को प्रकृति के चितेरे कवि के रूप में देखना प्रारंभ कर दिया। असल में उनकी कविता में जो भी प्राकृतिक बिंब आते हैं वे लोक से सीधे आते हैं। उनकी कविता में जो जनमानस की पीड़ा से लेकर उत्सव तक के चित्र दिखाई पड़ते हैं उन सबके पीछे लोक का सहज आकर्षण है। यह आकर्षण ही कवि की कविता को शक्ति देता है और इस शक्ति के बल पर ही ऊर्जस्वी कवि काल को छकाता आगे बढ़ता है।*

उनका मानना था कि वही कविता असल में कविता है जिसमें मानवीय पीड़ा को व्यंजित करने की क्षमता है। जो कविता समाज द्वारा, सत्ता द्वारा हथिया ली जाती है ऐसी कविता को केदार का कवि मन कविता नहीं मानता। केदार के लिए तो असली कविता वही है जो पीड़ा का आख्यान अपने भीतर छिपाए हुए हो, जिसके गर्भ में सुंदर समाज का सपना हो—*जो न सार्थक हो—/न सटीक हो—/न बोधक हो—/न बेधक हो/मैं नहीं लिखता/ऐसी कविता/जो न आदमी के पहिचान की हो/न सत्यालोकित संज्ञान की हो।*

आज जब पूंजी का आतंक हर जगह छाया हुआ है। हर वस्तु उत्पाद में तब्दील होती जा रही है। यहां तक कि मानवता ने भी नफ़ासत पसंदों की मख़मली चादर से खुद को जोड़ लिया है; ऐसे घोर पूंजीवादी दौर में केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं प्रतिरोध करने का जज़्बा प्रदान करती हैं। उनकी कविताओं का मिज़ाज विपुलता लिए हुए है। जीवन के हर पक्ष पर उन्होंने कलम चलाई। उनके लिए कलम ही सच्ची पूजा है। अपनी मेहनत और ईमानदारी के अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं है। यही वजह है कि वह बराबरी का हक मांगने किसी अमूर्त ईश्वर के पास नहीं जाते, बल्कि अपनी श्रमपरस्ती से सब कुछ हासिल करने के एकजुट प्रयास में दिखलाई पड़ते हैं। केदारनाथ आस्था पर प्रहार करते हैं। उनका मानना है कि इस घोर भौतिकतावादी युग में खुद ईश्वर तक असुरक्षित है, सो भला उनसे कैसे सहारे का अनुमान किया जा सकता है।

समाज के सारे अवयवों में अन्विति देखने वाले इस प्रगतिशील कवि ने मनुष्य की स्वतंत्रता की बात की। यही नहीं वैयक्तिक स्तर पर चारित्रिक दृढ़ता को वे अनिवार्य मानते थे। उनको मालूम था कि नैतिक रूप से क्षरित व्यक्ति समाज और देश को दिशा नहीं दे सकता। यही वजह है कि प्राथमिक स्तर पर व्यक्ति विशेष के अंदर वह नैतिक बल की मांग करते हैं। आदमी अगर चारित्रिक रूप से एक बार गिरता है तो बस गिरता जाता है। उसका कोई ठौर नहीं होता, पीले पत्ते की तरह उसकी ज़िंदगी होती है लक्ष्यहीन। केदार लक्ष्यहीन नहीं जीना चाहते उनके लिए जीने का मतलब है पूरी जीवंतता के साथ खम ठोंकते हुए चलना। आम आदमी के साथ पैर मिलाते हुए जीवन का एक-एक डग वे तय करना चाहते हैं—*गिरे तो/गिरते गए/गिरते-गिरते/आचार से/विचार से गिरते गए/न हुए अपने/न और के/वनमानुष हुए कुठौर के।*

वह जीवन को समाज के सापेक्ष देखते हैं। जीवन को एक सुचिंतित दिशा देना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि उनका जीवन दूसरों के दुख में सहभागी हो। अपने लिए तो सभी जीते हैं, जीने का असली मज़ा तो तभी है जब जीवन का फूल दूसरों के लिए खिले, जन मन की मुक्ति में ही अपनी मुक्ति देखी जा सके। उनका चाहना है कि कर्मठता की मिसाल हो उनका जीवन, जिसमें युगबोध की जागृति का सपना हो—*मेरा फूल नहीं खिलता है सूने और अकेलेपन में सूनेपन के जर्जर वन में/बंध्या धरती के आंगन में/मेरा फूल सदा खिलता है/ऊंचे चौड़े वक्षस्थल पर/कर्मठ हाथों के करतल पर/युग के बजते/पल प्रतिपल पर।*

अपनी कविता की सहायता से वे प्रेम का गीत गाना चाहते हैं। उनका कवि मन उस विरह की तरह है जो दिशा-दिशा घूमता है लेकिन उकांत की तलाश के लिए नहीं बल्कि जीवन की अरुणिमा से आम आदमी को और अधिक प्रेमिल बनाने के लिए। उन्होंने जीवन से संघर्ष मांगा, आस्था से अनास्था की यात्रा मांगी जिससे बदला जा सके समाज की अंधेरे में जकड़ी व्यवस्था को। बुंदेलखंड की ग़रीब बेबस जनता के लिए उन्होंने रोटी मांगी। उनको पता था कि भारत का हरावल दस्ता गर कोई बन सकता है तो वह किसान ही है। यही वजह है कि किसानों के पौरुष पर उन्होंने बहुत कुछ लिखा। वे इस बात से परिचित थे कि किसानों के पास गंवाने के लिए कुछ भी नहीं है। उनकी

ज़मीन ही उनके लिए बख्तरबंद है, ढाल है। ग़रीबों को संबोधित करते हुए वे कहते हैं कि—*जो जीवन की धूल चाट कर बड़ा हुआ है/तूफानों से लड़ा और फिर खड़ा हुआ है/जिसने सोने को खोदा, लोहा मोड़ा है/जो रवि के रथ का घोड़ा है/वह जन मारे नहीं मरेगा/नहीं मरेगा।* केदारनाथ अग्रवाल को समकालीन राजनीति की अच्छी समझ थी, राजनीति के अंतर्द्वंद्व से वे भली-भांति परिचित थे। यही वजह है कि उनकी कविता राजनीति की बखिया उधेड़कर रख देती है। उन्हें पता था कि भारत का निम्न वर्ग बेहद सीधा है। जिसे वह अपना मानता है वही सत्ता उसके दलन को तत्पर हो उठती है—*अब पहरुए आदमी की चांदमारी करते हैं/सत्ता का कुंड आदमियों के रक्त से भरते हैं।*

'नेतृत्व का नायक' शीर्षक कविता में केदारनाथ अग्रवाल ने सत्ता के वर्ग चरित्र को उघाड़ कर रख दिया है। जब तक जनता को अपनी शक्ति, अपनी ऊर्जा का बोध नहीं रहता तब तक नायक उसका दमन करता है, लेकिन जैसे ही वह जनता के बनैले क्रोध को पढ़ता है उसे सिर छुपाने तक की जगह नसीब नहीं होती। इस कविता में कवि ने दिखाया है कि शोषकधर्मी नायक जनता के विप्लवकारी रूप को देखकर दंग रह जाता है, उसे सत्य का डर हर क्षण सालता है। वह जनता से बचता रहता है—*नेतृत्व का नायक/कभी यहां/कभी वहां/भटकता है/अपना सिर/बुरी तरह पटकता है/झाड़ियों के मुंह में/अटकता है/सत्य की/आंख में खटकता है।*

विवेक पर पहरेदारी जब की जाती है, उस वक्त मनुष्यता अंधी नज़र आती है। मनुष्यता को अंधा बना देने वाली शक्तियों के असली चेहरे को उनकी कविताएं खोलकर रख देती हैं। केदार जी लिखते हैं कि आदमी का सूरज सभ्यता की चारदीवारी में कैद है। न मनुष्य को पता है और न ही उसके विवेक को। साज़िश पुरज़ोर चल रही है और मनुष्य अवश नज़र आ रहा है। वह इस कदर बेअसर हो चला है कि सभ्यता के कीच में उसे अपनी स्वतंत्रता का भी बोध नहीं—*क़ैद है/आदमी का सूरज/आदमी की कोठरी में/आदमी के साथ/न देश-बोध होता है जहां—/न काल-बोध/न कर्म-बोध होता है जहां—/न सृष्टि-बोध।*

जन मन की मुक्ति के लिए वे संघर्ष को अपरिहार्य मानते थे, उनका मानना था कि संघर्ष की लड़ाई सबको लड़नी है बिना लड़े कोई नहीं रह सकता। सभी को अपने अस्तित्व, व्यक्तित्व के लिए दुर्धर्ष संघर्ष करना पड़ता है। यह अलग बात है कि कवि की लड़ाई आम आदमी से इतर है। कवि एक साथ जीवन के कई छोर पर लड़ता है और उसका लड़ना अपने लिए नहीं होता। वह आम आदमी के पक्ष में लड़ता है। कड़ी शिद्दत के बाद कवि को शब्द मिलता है और उस शब्द के सहारे कवि आम आदमी तक पहुंचता है—*सभी तो लड़ते हैं लड़ाइयां/अस्तित्व की/व्यक्तित्व की/अभिव्यक्ति की/इससे, उससे/हमसे, तुमसे/शब्द और अशब्द से/अर्थ और अनर्थ से/तुरीय और सुषुप्ति से/आदमी होने के लिए/अमर्त्य जीने के लिए*

उनका कवि व्यक्तित्व संघर्षों से भाग खड़ा नहीं होता बल्कि हर क्षण मोर्चा लेने के लिए तत्पर रहता है। 'मैं' शीर्षक कविता में केदार के संघर्षरत मन को देखा जा सकता है। कवि जानता है छद्मजीवियों की मक्कारी को, लेकिन वह हार नहीं मानता क्योंकि उसके पास सत्य का बल है, जिसके सहारे वह अनाचार के ख़िलाफ़ उठ खड़ा होता है। केदार का कवि व्यक्तित्व आम जनता के पक्ष में संघर्ष करने को ही अपने कवि-धर्म की टेक समझता है—*मैं समय की धार में धंसकर खड़ा हूं/मैं छपा-छप छापते छल से लड़ा हूं/क्योंकि मैं सत से सधा हूं/जी रहा हूं/टूटने वाला नहीं कच्चा घड़ा हूं।*

जीवन की गोधूलि रेखा को जैसे-जैसे कवि पार करता है, वैसे-वैसे उसका पौरुष संघर्षों से होड़ लेने के लिए खुद को तैयार पाता है। संघर्षों से कभी क्षत-विक्षत न होने वाला कवि मन यौवन के मकरंद का हर क्षण पान करता है। शारीरिक ढलान के बावजूद केदारनाथ अग्रवाल का कवि व्यक्तित्व हार नहीं मानता बल्कि पहले से भी अधिक तीव्र रूप में प्रतिरोध की चौकी खड़ी करता है। उसे इस बात की तनिक भी चिंता नहीं है कि उसकी जीवन रेखा अवसान की ओर अग्रसर है। कवि लगातार जीवन का गीत गाता है, उस बसंत का गीत गाता है जिसने जन-मन के सपनों का रूप लिया है।*जाते-जाते भी/जीने का/अंत न होगा/मेरा जीना/जीवन से जीवंत/प्रतिभा का/पौरुष का पुंज/काव्य-कला का/कूजित कुंज।*

केदारनाथ अग्रवाल की आस्था मनुष्य की मुक्ति की यात्रा में है। शोषण और दमन के बरअक्स महत्तम के सुख का आकांक्षी कवि जब देखता है; अंधेरे में उठते हाथों को गरीबों का गला दबाते, मुक्ति की यात्रा में रोड़े अटकाते तब वह संघर्ष की समिधा में यज्ञाहुति को बेकल हो उठता है। किसानों को जगाता है, युवाओं को प्रेरित करता है ताकि अनाचार का ख़ात्मा हो सके। उसे किसानों की शक्ति पर भरोसा है, उसे पता है कि अत्याचारों का सिलसिला बदस्तूर जारी नहीं रहेगा, यह शोषण तभी तक है जब तक गरीबों को अपनी शक्ति का पता नहीं है, जिस दिन उन्हें भान हो जाएगा कि उनके भीतर असंख्य ज्वालामुखी पर्वत छिपे हैं उसी दिन अत्याचारों की उपत्यकाएं धीमी पड़ती जाएंगी। केदारनाथ अग्रवाल चाहते हैं कि उनके क्रांतिधर्मी गीत की पंक्तियों से मालवा का पूरा अंचल गूंज उठे। कविता को शोषण के बरअक्स हथियार के रूप में कवि प्रयोग करना चाहता है। उसकी इच्छा है कि उसके गीत क्रांति की ज्वाला को पैदा करे ताकि असमानता के किले और दुर्गों का ख़ात्मा हो सके और सबके हृदय में प्रेम के अंकुर का प्रस्फुटन हो सके—*मालवा में गीत मेरे गूंज जाएं/मैं यहां पर गीत गाऊं/वह वहां पर घनघनाएं/मालवा में आग का डंका बजाएं/मैं यहां से नाग छोड़ूं/वह वहां पर फनफनाएं/मालवा में क्रांति का भूचाल लाएं।*

जब कवि अपनी कविता का उपनिवेश बन जाए तभी उसकी कविता सार्थक होती है, केदार ने खुद को अपनी कविता में अंतर्भुक्त कर दिया। अपनी कविता में ही केदार सोते और जागते हैं। उनकी कविता सत्ताविमर्श के समानांतर एक पाठ देती है जिसका मनन करते हुए कवि जीवन की जटिलताओं और वर्जनाओं से होड़ लेता है। केदार का कवि मन जानता है कि अंधकार जल, हवा, सूर्यातप सभी को ग्रस सकता है लेकिन कविता को ग्रसित करना उसके बूते का नहीं। कविता अंधकार से प्रभावित नहीं होती बल्कि उसको भेदकर निकल जाती है। 'घना कोहरा' शीर्षक कविता में कविता की शक्ति देखने योग्य है।

केदार के यहां आए प्राकृतिक उपमान अपने रूप-विन्यास में इतने गहरे हैं कि उनकी कविता प्रकृति की सहचरी जान पड़ती है। अधिकांश आलोचकों ने केदार की कविता में आई गंवई प्रकृति को देखकर केदार को प्रकृति के चितेरे कवि के रूप में देखना प्रारंभ कर दिया। असल में उनकी कविता में जो भी प्राकृतिक बिंब आते हैं वे लोक से सीधे आते हैं। उनकी कविता में जो जन मानस की पीड़ा से लेकर उत्सव तक के चित्र दिखाई पड़ते हैं उन सबके पीछे लोक का सहज आकर्षण है। यह आकर्षण ही कवि की कविता को शक्ति देता है और इस शक्ति के बल पर ही ऊर्जस्वी कवि काल को छकाता आगे बढ़ता है। उनके व्यक्तित्व पर टिप्पणी करते हुए कवि शमशेर ने सही कहा है कि—'आज के साहित्य की नकारात्मक नैराश्यपूर्ण फ़िज़ा में केदार का स्वर एक ऐसे सजग मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी का है जो श्रम से, कर्मठता से, किसान और श्रमिक की एकजुट जीवंतता से प्रकृत्या कभी हार नहीं मानता और साथ ही शक्तिगर्भा प्रकृति के सौंदर्य नैकट्य और बंधुत्व से और इन सबसे उपलब्ध अपने दुर्दमनीय आशावाद से जीने की प्रेरणा ले रहा है और दूसरों को दे रहा है।' ❑

संपर्क : कमरा न. 106, तृतीय विंग, लोहित छात्रावास, जे.एन.यू. नई दिल्ली-110067

केदार की कविता में स्त्री

मेधा

प्रगतिवादी कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में लोक-जीवन अपने सभी सुरों और धुनों में उपस्थित है। केदार जी की कविताएं अक्सर राजनीति से लैस होकर हमारे सामने आती हैं उनकी प्रकृति से संपृक्ति भी गहरी है। वहां प्रकृति का राग स्वयं में कोई शय नहीं बल्कि लोकराग का ही हिस्सा है। उनकी कविता में सौंदर्य किसी आभूषण की तरह दिखावे की चीज़ नहीं बल्कि प्राणतत्व है। वह बोलता है, गाता है और नृत्य करता है। सौंदर्य के विराट गान में ही जनकवि केदार के यहां जन का जीवन अपने दुख-सुख, अपनी आस-निराशा, अपनी ताकत और अपनी विवशता की बहुविध छवियों के साथ उपस्थित है।

यह लोकराग ही है कि केदार की कविताओं को पढ़ते हुए कविता के होकर रह जाते हैं। आपके भीतर कहीं कोई दबा हुआ छंद फूट पड़ता है जो जितना आपका है उतना ही सबका है। लोकराग ने कवि केदार को जन-मानस का हिस्सा बनाया है, उनका लोकराग अपने छंदों में बड़ों को ही नहीं बच्चों को भी बांध लेता है। स्कूल से लौटते हुए बच्चे कंधे पर बस्ता लादे एक सुर से गाते हैं—हवा हूं हवा मैं बसंती हवा हूं। भाषा के निरस पाठ्यक्रम के बीच बसंती हवा कविता सचमुच बच्चों के जीवन में बसंत बनकर आती है। छंद, लय, ताल और टटके बिंबों से सजा उनका काव्य-संसार लोक-जीवन का विस्तार बन जाता है। लोक-जीवन की तन्मयता में गुम उनकी कविताओं से राजनीति कहीं नहीं छूटती। उनकी कविताओं में राजनीति का सौंदर्यबोध से कोई बैर नज़र नहीं आता। उनकी कविताएं अपने रूप में हमें आनंद से ओतप्रोत करती हैं, तो अपनी अंतर्वस्तु से समाज में व्याप्त विषमताओं की भर्त्सना करती हैं और उनसे लड़ने की पुरज़ोर ताकत देती हैं।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता की यह विशेषता है कि यह भारतीय समाज में व्याप्त हर किस्म के शोषण एवं विषमता पर कुठाराघात करती हैं। अनपढ़, भोले किसान के जीवन के दारुण पहलू को वह बहुत संजीदगी से महसूस करते थे। 'गांव का महाजन' शीर्षक कविता में वह लिखते हैं—'सूद लपेटे है कर्ज़ की ग्रामीणों को/ मुक्ति अभी तक नहीं मिली है इन दीनों को/ इन दीनों के ऋण का रोकड़-कांड बड़ा है/ अब भी किंतु अछूता शोषण-कांड पड़ा है।'

उनकी कविताएं श्रम के सौंदर्य, शक्ति और संभावनाओं की प्रतिष्ठा को समाज में स्थापित करने का प्रयास है। वह लिखते हैं—"मार हथौड़ा, थोड़े। नहीं अनेक गढ़ ले/ फौलादी नरसिंह हथौड़ा लोह और पसीने से ही / बंधन की दीवारें तोड़ दे"। शोषण के चौतरफा मार से बेहाल गांव के किसान का परिवार दीन-दुखी यह कुनबा/ जाड़े की थर-थर में कांपता/ अपनी चौपारी में बैठा/ ताप रहा है कांड। इस तरह हम पाते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल की कविता में भारतीय समाज में व्याप्त शोषण के लगभग सभी आधारों को पकड़ने की कोशिश की गई है और उसकी कड़ी आलोचना भी वहां मौजूद है।

बहरहाल, केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में स्त्री, मज़दूर, किसान, दलितों की तरह शोषितों की एक श्रेणी के रूप में नहीं मौजूद है, जिसे केदार जी की कविता विद्रोह के लिए जागृत करती है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि केदारनाथ अग्रवाल की कविता में स्त्री अनुपस्थित है केदार सौंदर्य के ऐसे कवि हैं, जिनके यहां दुनिया को सुंदर बनाने वाली हर शय मौजूद है। इसीलिए स्त्री भी वहां उपस्थित है। लेकिन केदार के यहां स्त्री का कोई स्टीरियोटाइप नहीं है। वह अपने विभिन्न रूपों में वहां उपस्थित है, बिना किसी वैल्यू जजमेंट के। यही केदार की विशेषता है। वह वहां रूपसी भी है, मज़दूरिन भी, ब्याह संस्था के व्यभिचार के ख़िलाफ़ बग़ावत करती खुलेआम प्रेमी को स्वीकारती कोई ब्याहता है तो रोटी के लिए बलात्कार भोगने को मजबूर स्त्री भी और वह परंपरित स्त्री भी जो युद्ध पर गए सैनिक पति के इंतज़ार में मर-मर के जीती है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में स्त्री, मज़दूर, किसान, दलितों की तरह शोषितों की एक श्रेणी के रूप में नहीं मौजूद है, जिसे केदार जी की कविता विद्रोह के लिए जागृत करती है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि केदारनाथ अग्रवाल की कविता में स्त्री अनुपस्थित है। केदार सौंदर्य के ऐसे कवि हैं, जिनके यहां दुनिया को सुंदर बनाने वाली हर शय मौजूद है। इसीलिए स्त्री भी वहां उपस्थित है। लेकिन केदार के यहां स्त्री का कोई स्टीरियोटाइप नहीं है। वह अपने विभिन्न रूपों में वहां उपस्थित है, बिना किसी वैल्यू जजमेंट के। यही केदार की विशेषता है।

केदार जी की कविता में तीन तरह की स्त्रियां हैं। एक वह जो समाज के शोषित वर्ग—किसान, श्रमिक, दलित की स्त्री है, जो प्रत्यक्षतः उनकी कविता में नहीं आती है, लेकिन वहां अप्रत्यक्ष तौर पर उसकी पीड़ा का बयान है। यह केदार जी की संवेदनशीलता का सूक्ष्म रूप है, जो कविता में बहुत खूबसूरती से छुपी होने के बाद भी सुधी पाठक को संप्रेषित हो जाती है। इस बात की पुष्टि के लिए यहां इन पंक्तियों को देखना समीचिन होगा—*पंचो, सुनो खबरिया/ रम्मू लड़ा मुकदमा/ प्यारी के मन मोहन गहने/ अंग-अंग से उतर-उतर कर/ बिना बजे, वो बोले, चुप के/ गिरे गहन में जाकर पहुंचे/ डूबे सेठ दुकनिया।* भारत के किसी भी गांव के किसान-पत्नी की बेबसी का चित्र यहां उभरकर आता है और चाहे यह न कहा गया हो कविता में तब भी स्पष्ट हो जाता है कि किसान की स्त्री को विषमता की दोहरी मार सहनी होती है। एक तो ग़रीबी की, दूसरी लैंगिक जहां उसे हमेशा अपने पति के फैसले को ही अपना फैसला मानकर स्वीकार करना होता है। उसे खेत-खलिहान की जिम्मेदारियां भी भुगतनी होती है और घर-गृहस्थी की भी। और यह सिलसिला जन्म के साथ ही प्रारंभ हो जाता है। 'आंख दुखों से आंज रही है' कविता स्त्री के पूरे जीवन की त्रासदी का मार्मिक बयान है—*बारह बरस व्यथा में बीते, तेरहवें में पांव धरे है/ पीर हृदय में, नीर नयन में, सांसों में संताप भरे है/ दंभक ताड़ित और प्रताड़ित शैशव का अभिशाप लिए है/ फूलों के नादान अधर से, शूलों के अपमान पिए*

है/ माता और पिता से वंचित पर घर बरतन मांज रही है/ सात बरस से सांझ-सकारे/ आंख दुखों से आंज रही है।

उपर्युक्त कविता केदार की दूसरी श्रेणी की स्त्री जो उनकी कविता में स्पष्ट रूप से मौजूद है—ग़रीबी और पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के जकड़नों से त्रस्त स्त्री जो पेट की आग बुझाने के लिए रोज बलात्कार झेलने को अभिशप्त है—वह जाकर चली आती है रुपये लेकर/ बलात्कार भोग कर/ दूसरों के साथ/ ब्याह गए/ बुद्धू के साथ/ समाज की आंखों में जीने के लिए/ कैद और कुंठित। ऐसी स्त्री के प्रति केदारनाथ अग्रवाल की कविता में एक किस्म की गहरी सहानुभूति नज़र आती है, जो पितृसत्तात्मक समाज में मौजूद विभिन्न किस्मों के शोषण का शिकार होती है, लेकिन प्रतिरोध नहीं करती। सर झुकाकर अपनी नियति को स्वीकार कर लेती है और मान लेती है कि यही तकदीर में बदा था। चाहे वह पति के इंतज़ार में बिना प्रेम के सारी उम्र ही क्यों न गंवानी पड़े। ऐसा लगता है कि पुरुष-प्रधान समाज में जिन स्त्रियों को बतौर व्यक्ति कोई स्थान प्राप्त न हो सका—न घर में, न परिवार में और न समाज में। उसके बहुत करीब हैं केदार और परकाया प्रवेश कर उनके दुखों को अपना ही दुख बना लेते हैं। लेकिन जो स्त्री अपने होने को स्वयं तय करना चाहती है, जो तकदीर के नाम पर अपने हिस्से में बद दिए गए दुखों को 'पतिव्रतता' के नाम पर स्वीकार करने को राज़ी नहीं है, उस स्त्री को केदार अपनी कविता में नोटिस तो जरूर करते हैं, लेकिन उससे उनका रिश्ता आत्मीयता का नहीं बन पाता। उससे एक अजनबीपन, एक औपचारिकता का रिश्ता नज़र आता है।

उदाहरण के तौर पर 'मुक्त युवती' कविता को देखा जा सकता है—"जब अदालत पर चढ़ी/ युवती चली बाहर निकलकर/ दुष्ट भ्रष्टाचारी पति के मित्र दौड़े/ अपहरण हेतु बल के बोंग लेकर/ किंतु युवती का युवक-प्रेमी गठीला नौजवान/ आठ साथी साथ लेकर/ लाठियां बरसा चला बौछार जैसी/ हो गया संग्राम ख़ासा/ धूर्त पति को चोट आई/ और उसके मित्र भू पर गिरे घायल/ खून खच्चर से गई मर लोकनिंदा/ ब्याह टूटा/ ब्याह का व्यभिचार टूटा। प्रेमिका ने प्रेम का वर वक्ष जीता/ आततायी पति गया आहत हृदय घर।"

ऊपर दर्ज की गई कविता एक घटना का बयान मात्र करती नज़र आती है। एक पत्रकार की शैली में, बिल्कुल तटस्थ। वहां उनकी शैली अपनी आत्मीय शैली में अनुपस्थित है। 'मुक्त युवती' शीर्षक ऐसा जान पड़ता है मानो स्त्री ने कोई ऐसी पहल की होगी, जिससे उसके सुप्त साहस और शक्ति के जागरण का प्रमाण मिलता होगा। लेकिन दरअसल यह कविता एक स्त्री के लिए दो पुरुषों के संघर्ष की गाथा बनकर रह जाती है। हां इस ओर कविता में जरूर इशारा है कि ब्याह संस्था के सभी व्यभिचारों को पवित्र मानकर उसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। यहां सवाल यह उठता है कि कवि केदार की कविता इस मुक्त स्त्री के नज़दीक क्यों नहीं हो पाती, जबकि उनकी कविता अन्य कोटि की स्त्रियों से एक बहनापा बना लेती है। इसके बीज उनके युगबोध में छुपे नजर आते हैं। केदारनाथ अग्रवाल का पहला कविता-संग्रह *युग गंगा* आज़ादी से पहले 1947 में छपता है। यह वह वक्त था, जब भारतीय स्त्री का सार्वजनिक जीवन में प्रवेश हो चुका था। स्वतंत्रता संग्राम में औरतों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। उस समय सती प्रथा पर प्रतिबंध, बाल विवाह पर रोक, विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा आदि समाज-सुधार के केंद्र में रहें। स्त्री बस एक माध्यम थी राष्ट्रवादी परियोजना की। अंग्रेजों के सामने अपनी सभ्यतागत श्रेष्ठता को साबित करने के लिए नवजागरण आंदोलन ने एक नए किस्म की पितृसत्ता की रचना की, जिसमें एक ओर तो अपने नौनिहालों के परवरिश और एक सुव्यवस्थित और सुंदर गृहस्थ जीवन के लिए उसे अंग्रेज महिलाओं की तरह शिक्षित करना जरूरी था और साथ ही अपनी संस्कृति की विशिष्टता बनाए रखने के लिए महिलाओं को धर्म और पतिव्रत के अधीन भी रखना जरूरी था। स्त्रियों की यह नई भूमिका आजादी के बाद भी जारी रही, जिसके तहत स्त्री का सार्वजनिक जीवन में प्रवेश तो हो जाता है, लेकिन पितृसत्ता के हदों के भीतर ही। उसके स्वतंत्र चेतनासंपन्न व्यक्तित्व के लिए वहां कोई स्थान नहीं था। संभवतः केदारनाथ अग्रवाल का यही युगबोध उन्हें मुक्ति की कामना से लैस स्त्री को उतनी आत्मीयता से स्वीकार नहीं कर पाता है।

केदार की कविता में स्त्री का एक और रूप दृष्टिगोचर होता है। वह रूप है प्रेयसी और पत्नी का। केदार के यहां प्रेम का पुष्प पितृसत्ता के घेरे से बाहर समता की मिट्टी में पुष्पित और पल्लवित होता है। यही वजह है कि वह प्रेम स्त्री के प्रेमिका रूप पर ही समाप्त नहीं हो जाता है, बल्कि पत्नी रूप में भी वह प्रेम उसी ताजगी के साथ खिलता और सुवासित होता है। केदार के लिए प्रेम में स्त्री केवल ग्रहण करने वाली नहीं वरन् खुद भी सक्रिय है। कवि प्रेम के क्षणों में दुर्वादल पर अपनी प्रियतमा के साथ लेटते हुए यह अनुभव करता है कि—'तरु में प्रेम-विकार/ लता में/ पुलक वासना भार रहे/ हम तुम दोनों को मद-विह्वल/ चुंबन का अधिकार रहे।' और उस सक्रियता का स्वीकार्य और सम्मान ही केदार की कविता को प्रेम की उच्च धरातल तक पहुंचाती है और उसे स्थायी बनाती है। ❑

संपर्क : अपना अपार्टमेंट, एफ एफ 6, सावित्री नगर, नई दिल्ली-110017

जानकीबल्लभ शास्त्री

संस्कृत से काव्य रचना प्रारंभ करने वाले, संगीत के जानकार हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार और वयोवृद्ध कवि आचार्य जानकीबल्लभ शास्त्री का निधन 7 अप्रैल 2011 को बिहार के मुजफ्फरपुर स्थित उनके निवास निराला निकेतन में हो गया।

जीवन के अंत समय तक पशु-पक्षियों की निस्वार्थ सेवा करने वाले 96 वर्षीय जानकीबल्लभ जी बहुत दिनों से अस्वस्थ चल रहे थे। 2 जनवरी 1916 को गया के मैगरा गांव में जन्मे जानकीबल्लभ कई भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे—आपकी प्रमुख कृतियां—*कांकली, रूप अरूप, राधा, मेघगीत अवंतिका, श्यामा संगीत* और *धूपवरी* (काव्य-संग्रह), साहित्य-दर्शन चिंताहास, त्रयी, प्राच्य साहित्य *मन की बात* (प्रमुख आलोचना ग्रंथ) हैं। 'भारत-भारती' सम्मान से सम्मानित जानकी जी को राष्ट्र भाषा परिषद (बिहार) ने भी सम्मानित किया था।

आजकल परिवार की श्रद्धांजलि!

केदारनाथ अग्रवाल के गीत : संवेदना और दृष्टि

रामनिहाल गुंजन

हिंदी गीतों की एक परंपरा है, जो लोक काव्यों के भीतर से उभरकर सामने आती है तथा लोकधर्मी चेतना के साथ विकसित होती है, उसका स्रोत व्यापक जन-जीवन, खासकर ग्रामीण जीवन की व्यापक दुनिया होती है। ऐसे गीतों में लोकधुनों की प्रधानता होती है, इसलिए उनमें जीवन की सहजता और ठेठपन का बोध स्वाभाविक है। हिंदी में इस प्रकार के गीतों की एक लंबी परंपरा रही है, जिसमें ऐसे गीत भी लिखे गए हैं, जिनमें भाषिक संरचना की भिन्नता के बावजूद ग्रामीण जन-जीवन के संस्कार देखे जा सकते हैं। केदारनाथ अग्रवाल के गीतों में इस तरह के उदाहरण प्रायः देखने को मिल जाते हैं। यों तो निराला के गीतों के संस्कार से उनके संस्कार मिलते-जुलते हैं। फिर भी उनके ग्राम्य-जीवन के साथ शहरी जीवन के यथार्थ का मिला-जुला रूप भी लक्षित किया जा सकता है। निराला के प्रगीत-काव्यों में भी इसका एहसास बार-बार होता है। चाहे शहरी परिवार की कविता 'तोड़ती पत्थर' हो अथवा ग्रामीण परिवेश की 'वे किसान की नई वधू की आंखें', दोनों में लोक जीवन की सुपरिचित भूमि और गंध देखने को मिल जाती है। इसी परंपरा का विकास केदार के गीतों और प्रगीत-काव्यों में हुआ है।

> *केदार श्रम-शासन के पक्षधर कवि और गीतकार हैं—इसलिए वे व्यापक जीवन के भाष्यकार भी हैं। उनके गीतों और कविताओं में श्रम-शक्ति के अविराम गत्यात्मक चित्र विविध रूपों में अंकित हैं। केदार के गीतों की भाव-भूमि जन-भावनाओं और जन-आकांक्षाओं के अनुरूप विविध विषयों की प्रस्तुति में भी सहायक है।*

केदारनाथ अग्रवाल के गीतों के प्रायः दो रूप देखने को मिलते हैं—पहला गीत और दूसरा प्रगीत। केदार अपने जीवन की अनुभूतियों, लोक-संवेदना, भाषा की सरलता एवं सहजता आदि पर विशेष ध्यान देते थे। यही कारण है कि उनके गीतों में संप्रेषणीयता की प्रधानता है। इसके अलावा उनके गीतों में लय और गेयता के साथ-साथ अंतर्वस्तु की विविधता और वस्तुपरकता प्रमुख है—रामविलास शर्मा का यह मानना कि 'केदार की प्रकृति एक विशेष अंचल की प्रकृति है'; इसी अर्थ में सार्थक है। दूसरी ओर केदार के गीतों के प्रभावशाली होने के पीछे उनका राजनीतिक चेतना से लैस होना भी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनके गीतों और प्रगीत-काव्यों के ज़रिए एक पूरा-का-पूरा जातीय जीवन का इतिहास प्रत्यक्ष हो जाता है। 1946 के आस-पास लिखे केदार के अधिकांश राजनीतिक गीतों और कविताओं को रामविलास जी ने इसी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना है— 'सन् 47 से अब तक यानि 1985 तक प्रगतिशील कविता की जिस शक्तिशाली धारा के प्रतिनिधि कवि केदार और नागार्जुन हैं, उसका संबंध सन् 46 की क्रांतिकारी चेतना से है। इस दौर के अन्य कवियों के अलावा स्वयं केदार की बहुत-सी पुरानी कविताएं असंकलित रही हैं।' (*प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल*, पृ. 32)। इस प्रकार रामविलास जी का सीधा संकेत केदार के प्रथम काव्य-संग्रह *युग की गंगा* (1947) की रचनाओं की ओर है, जो स्वाधीनता आंदोलन के दौर में लिखी गई थीं। दरअसल केदारनाथ अग्रवाल मूलतः गीतात्मक संवेदना के कवि हैं। इसलिए जैसा कि ऊपर कहा गया है, उनकी कविताओं में प्रगीतात्मकता का भरपूर समावेश देखने को मिलता है। हालांकि रामविलास जी केदार को मूलतः गीतकार नहीं मानते, फिर भी उनकी गीतात्मक या प्रगीतात्मक संवेदना से इंकार भी नहीं करते। यों यह बात सही है कि गीत प्रायः छंदोबद्ध और लयात्मक होता है, लेकिन हर छंदोबद्ध और लयात्मक रचना गीत नहीं होती। गीत होने के कुछ अनिवार्य शर्तें होती हैं, जिनका बुनियादी सरोकार कवि की गीतात्मक संवेदना और लयात्मक अनुभूतियों से होता है। तात्पर्य यह कि जब कोई गीतकार निजी जीवन-प्रसंगों या वस्तुगत संदर्भों से अभिभूत होकर किसी गीत या प्रगीत की रचना करने बैठता है तो उसके जीवनानुभवों से उपजी स्वतःस्फूर्त संवेदना लयात्मक रूप में व्यक्त होने लगती है, जिससे गीत का जन्म होता है। रामविलास शर्मा ने केदार की कविताओं पर विचार करते हुए उसी प्रसंग की एक महत्त्वपूर्ण बात कही है और वह यह कि 'केदार की मूल काव्य-प्रेरणा एक स्वतः गीतों के रचनाकार की प्रेरणा है।' केदार प्रायः स्वतः स्फूर्त ढंग से अपनी कविताओं में प्रगीत-तत्वों का समावेश करते हैं तो सहज ही उनमें गीतात्मकता का आना स्वाभाविक लगता है। उन्होंने *फूल नहीं रंग बोलते हैं* (1965) की काव्य-रचना के दौर में *धीरे उठाओ मेरी पालकी/ मैं हूं सुहागिन गोपाल की* या फिर *मांझी न बजाओ वंशी/ मेरा मन डोलता/ जैसे जल का जहाज पल-पल डोलता* जैसी गीत-पंक्तियां लिखी थीं। इससे स्पष्ट होता है कि वे उस दौर की कई रचनाओं को लिखते समय एक प्रकार की गीतात्मक मानसिकता से गुजर रहे थे, जिसे रामविलास जी के शब्दों में यदि कहें जो वह स्वतःस्फूर्त गीतों की प्रेरणा ही रही है। इसी प्रकार की गीतात्मक अभिव्यक्ति उनकी कई अन्य कविताओं में भी हुई है, जो स्वाभाविक है। केदार की कविताओं पर लिखते हुए रामविलास जी ने उल्लेख किया है कि केदार के एक गीत में, जो बांदा के सौंदर्य को उकेरा गया है, उसमें लोकगीत का नया रूप निखर उठा है—*फूटे कटोरे-सी मुस्काती/ रूप भरी है नगरी।* यों केदार ने ऐसे कई गीत लिखे हैं, जिनमें से लोकगीत की धुनों और लोक-जीवन की गंध का सहज एहसास होता है। शमशेर बहादुर सिंह ने अपने एक लेख में केदार की रोमानी कविताओं को लक्षित कर उन्हें 'नार्मल रोमांटिक कवि' कहा है जो सही भी है। वैसे केदार सौंदर्य-बोध के कवि उस अर्थ में नहीं हैं जिस अर्थ में पंत, प्रसाद, शमशेर, अंचल, नरेंद्र शर्मा और अज्ञेय को याद किया जाता है। केदार का सौंदर्य बोध प्रकृति और मनुष्य के सहज सजीव चित्रण पर आधारित है। जहां नारी के सौंदर्य का वर्णन उनकी रचनाओं में उपस्थित होता है। उनमें स्वकीया नारी का सौंदर्य-वर्णन ही प्रमुख है। कहने की जरूरत नहीं कि केदार के सौंदर्य-बोध में जो रोमानीयत है वह प्रकृति और नारी-सौंदर्य की ओर उन्मुख है। कवि केदार में यह प्रवृत्ति दोनों रूपों में विद्यमान है। कहीं-कहीं प्रकृति और नारी एक-दूसरे के पूरक के रूप में भी प्रस्तुत हुई हैं। इसलिए उनकी सौंदर्य-दृष्टि की एकरूपता और समानता उनके वस्तुगत दृष्टिकोण और चेतना को सूचित करती है। यही वजह है कि प्रकृति और नारी उनके गीतों और कविताओं में

सर्वोत्कृष्ट रूपों में मौजूद हैं। केदार की प्रेमपरक रचनाएं जैसा कि ऊपर जिक्र किया गया है, ज्यादातर उनके स्वकीया प्रेम तक सीमित हैं। अतः उनकी प्रेमपरक रचनाओं के केंद्र में कवि-पत्नी का निर्मल प्रेम-रस प्रवाहित होते देखा जा सकता है, जो आकस्मिक भी नहीं है। केदार ने इस प्रकार के जो भी गीत और कविताएं लिखीं, वे उनके *हे मेरी तुम* तथा *जमुन जल तुम* नामक काव्य-संग्रहों में संकलित हैं। यों रामविलास शर्मा ने केदार को 'काम चेतना का आंचलिक कवि' कहा है। किंतु केदार की उस आंचलिकता में प्रकृति, मनुष्य, नारी, गांव तथा आस-पास का परिवेश भी शामिल है। यही कारण है कि व्यापक अर्थ में वे प्रकृति और सौंदर्य के ही कवि ठहरते हैं। केदार के प्रगीत-काव्यों अथवा गीतों में गांव, खेत, पहाड़, नदी, पेड़-पौधे, किसान, मजदूर, कृषक बालाएं, मजदूरिनें आदि का चित्रण बहुतायत में मिलेगा। चूंकि किसान धरती को अपना श्रम और पसीना एक करके आबाद और उपजाऊ बनाता है तथा समाज और देश के लिए उसमें फसलें उपजाता है, इसलिए केदार उसे धरती का सच्चा हकदार मानते हैं। वे एक गीत में लिखते हैं—*जो मिट्टी का पूर्ण पारखी/जो मिट्टी के संग-साथ ही/तपकर/जलकर/जीकर/मरकर/खपा रहा है जीवन अपना/देख रहा है मिट्टी में सोने का सपना।* (*यह धरती है उस किसान की*) केदार मानते थे कि किसान का संबंध धरती से सनातन है। इसलिए कि धरती राधा बनकर नाचती है और किसान कृष्ण की भूमिका में उपस्थित होता है—*आसमान की ओढ़नी ओढ़े/धानी पहने फसल घंघरिया/ राधा बनकर धरती नाची/ नाचा हंसमुख कृषक संवरिया।* इस प्रसंग में ज़िंदगी को गढ़ने वाले उन मज़दूरों को केदार नहीं भूल पाते, जिनके शक्ति-श्रम के आधार पर ही किसी रामराज्य की कल्पना की जा सकती है। अतः श्रम की मर्यादा की श्रेष्ठता को केदार अपनी रचनाओं में पूरी ताकत के साथ प्रतिष्ठित करते देखे जा सकते हैं। इस प्रसंग में 'जब-जब मैंने उसको देखा' अथवा 'एक हथौड़ा वाला घर में और हुआ' जैसी प्रगीत-काव्य-पंक्तियों का सहसा स्मरण हो आना स्वाभाविक है। बहरहाल श्रम की श्रेष्ठता के प्रसंग में कुछ और पंक्तियां देखें—*ज़िंदगी को वह गढ़ेंगे जो खदानें खोदते हैं/लौह के सोये असुर को लौह रथ में जोतते हैं/यज्ञ को इस शक्ति-श्रम को/श्रेष्ठतम मैं मानता हूं।* बावजूद इसके केदार इस बात को लेकर ज्यादा चिंतित और दुखी हैं कि जो कृषक-मज़दूर जीकर और मरकर खेतों में समाज के लिए अनाज पैदा करता है, खुद उसे आजीवन अभाव में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इसका फल उसकी संतानें भी भोगती हैं। यह क्रम पीढ़ी-दर-पीढ़ी जारी रहता है। इस प्रसंग में एक ग़रीब किसान के बेटे का मार्मिक चित्र प्रस्तुत है—*जब बाप मरा तब यह पाया/भूखे किसान के बेटे ने/घर का मलबा टूटी खटिया/कुछ हाथ भूमि वह भी परती* (*अब पेट खलाए फिरता है*)

आम जन जिन स्थितियों से गुज़रता है उनमें बेकारी तथा भुखमरी की समस्याएं प्रमुख हैं। एक ओर देश में बेकार युवकों की लंबी-कतारें हैं तो दूसरी ओर श्रम करने के बावजूद भरपेट भोजन नहीं पानेवाला मजदूर-वर्ग है, जिनके लिए रामराज्य की कल्पना निरर्थक है। ऐसे रामराज्य पर केदार ने प्रखर व्यंग्य करते हुए लिखा है—*आग लगे इस रामराज्य में/रोटी रूठी कौर छिना है/थाली सूनी अन्न बिना है/पेट धंसा है रामराज्य में/आग लगे इस रामराज्य में।* (*आग लगे इस रामराज्य में*) तथाकथित रामराज्य की मारी हुई एक नारी-पात्र रनिया भी है, जिसका चित्रण केदार ने 'रनिया मेरी देस बहन है' शीर्षक एक कविता में किया है। यों केदार की रनिया निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' की मज़दूरिन से ज्यादा भिन्न नहीं है। कारण कि वह भी श्रम करती है। हंसिया लेकर घास काटती है, फिर भी वह दुखी है। उसके जीवन में भी कभी वसंत नहीं आया। केदार एक सुखी व्यक्ति से उसकी तुलना करते हुए आज के हिंदुस्तान की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाजन्य विषमता को रेखांकित करते हैं। वह इस बात को लेकर आश्वस्त भी हैं कि ग़रीब मज़दूरों का हक आनेवाले दिनों में सुरक्षित होगा। केदारनाथ अग्रवाल निराला के बाद दूसरे बड़े कवि हैं, जिन्होंने मानव-मन के विविध चित्र अपने गीतों और कविताओं में उकेरे हैं। केदार ने प्रेमपरक कविताएं और गीत भी लिखे हैं, जो उनकी परवर्ती रचनाओं में शामिल हैं। केदार संपूर्णता में प्रेमपरक स्थितियों का चित्रण उपस्थित करते हैं। यथा—*मैं गया हूं डूब/इतना डूबा/तेरे बाहुओं में/लोचनों में/कुंतलों में/गिर गया है डूब जितना/सिंधु में संपूर्ण।* (*हे मेरी तुम!*) दूसरी ओर प्रेम में बाधक बनने वाले 'क्रूर काल' को भी केदार चुनौती देते हैं। काल से होड़ लेने वाले कवि शमशेर की तरह केदार भी कहते हैं—*काल क्रूर से नहीं डरेंगे/ नहीं डरेंगे, नहीं डरेंगे।* केदार की यह शक्ति, जो काल से नहीं डरती तथा उसे पराजित करने के जीवन-रेखा अंकित करने के निमित्त अपने कवि के बाहुबल और लेखनी पर भरोसा करती है—*शक्ति मेरी बाहु में है/ शक्ति मेरी लेखनी में/बाहु से निज लेखनी से/ तोड़ दूंगा मैं शिलाएं।* चूंकि केदार का अटल विश्वास मनुष्य के उदात्त जीवन के प्रति है, जिसमें भय, संत्रास, कुंठा, अशुभ आदि भावों का कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि केदार इनको विजित करने को अपने प्रबल आत्मविश्वास का सहारा लेते हैं। इसलिए जहां मानव-समाज जीवन की आस्था के बजाय शुभ-अशुभ की अंध धारणाओं से ग्रस्त होता है वहां केदार उस पर चोट करते हुए लिखते हैं—

काटो काटो काटो करवी/साइत और कुसाइत क्या है/जीवन से बड़ साइत क्या है। (*काटो कोटो काटो करवी*) केदार श्रम-शासन के पक्षधर कवि और गीतकार हैं—इसलिए वह व्यापक जीवन के भाष्यकार भी हैं। उनके गीतों और कविताओं में श्रम-शक्ति के अविराम गत्यात्मक चित्र विविध रूपों में अंकित हैं। इसके पीछे कवि का अपने विश्वास-बल के साथ-साथ जनता का स्नेह भी निहित है, इसलिए कवि को इस बात में प्रबल आस्था है कि वह इसी जीवन में हिंदुस्तान की धरती पर आस्थामूलक गीतों की खेती करने में कामयाब होगा—*मार देखो/ गीत टूटेगा न धन से/ यह बना है प्राणपन से/ यह बना है शुद्ध मन से/ नेह के नाते वचन से।* केदारजी आम जन के पक्षधर थे। इसी का प्रमाण है कि उन्होंने जो भी गीत और कविताएं लिखीं, उनमें व्यापक जनता की छवि स्पष्ट रूप में अंकित है। वे कहते थे—*हम बड़े नहीं/फिर भी बड़े हैं/इसलिए कि/लोग जहां गिर पड़े हैं/हम वहां तने खड़े हैं।* कहने की आवश्यकता नहीं कि इस भूमिका का महत्त्व कवि केदार की कलम और कविता पर टिका है, जो उनके लिए बहुत बड़े आधार का काम करती है। वह धर्म और भाग्य के बजाय अपनी नेक कलम और कविता का सहारा लेकर बराबर गिरकर उठते रहे। कहना न होगा कि उनकी कलम पूरी ईमानदारी के साथ जन-जीवन के चित्र उकेरने में समर्थ होती थी। इसलिए वे उसे 'नेक कलम' कहना ज्यादा ज़रूरी समझते थे—

नहीं सहारा रहा/धरम का और कलम का/एक सहारा है—/बस मुझको नेक कलम का।(*एक सहारा नेक कलम का*) *दुख ने मुझको जब-जब तोड़ा/मैंने अपने टूटेपन को/ कविता की ममता से जोड़ा/जहां गिरा मैं/कविताओं ने मुझे उठाया/हमने प्रात का सूर्य उगाया।* (*दुख ने मुझको जब-जब तोड़ा*) देखा जाए तो केदारनाथ अग्रवाल ने अपने गीतों और प्रगीतों के माध्यम से हिंदी गीत विधा को नया स्वर और आयाम दिया है। केदार के गीतों की भाव-भूमि जन-भावनाओं और जन-आकांक्षाओं के अनुरूप विविध विषयों की प्रस्तुति में सहायक है, अतः उनकी गीत-रचनाएं तथा कविताएं आने वाले समय में भी अपनी प्रासंगिकता नए सिरे से प्रमाणित करने में समर्थ होंगी। ❑

संपर्क : नया शीतल टोला, आरा-802301 (बिहार)

केन कूल का गीत विहग

शुभा श्रीवास्तव

अमर साहित्यकार केदारनाथ अग्रवाल का जन्मशती वर्ष मनाया जा रहा है। साहित्य के प्रति तथा अपने काव्य के प्रति उनकी सोच पूर्णतः स्पष्ट थी उनकी कविता रोमानी भावुकता से प्रारंभ होकर प्रगतिशील विचारधारा तक पहुंची। स्वयं के संदर्भ में वह कहते हैं कि–"मुझे द्वंदात्मक भौतिकवाद का जीवन दर्शन ही सर्वोत्तम मानवीय बोध का दर्शन लगा। यही कारण है कि मैं न तो ईश्वर में विश्वास रखता हूं न दानव को मानता हूं। मनुष्य है, उसकी चेतना ही सृष्टि है। दूसरी एक सृष्टि प्रकृति है।" इस कथन में इन्होंने तीन बिंदु चिन्हित किए हैं। प्रथम कार्ल मार्क्स का द्वंदात्मक भौतिकवाद का सिद्धांत, द्वितीय मानव सृष्टि और तीसरी प्रकृति सृष्टि। हम अगर केदार जी के काव्य को गहराई से देखें तो इन्हीं तीन स्तंभों पर उनका संपूर्ण काव्य संसार खड़ा है। उनके संपूर्ण रचना-संसार में मार्क्स के जीवन दर्शन की अमिट छाप है। प्रकृति के वे कुशल चित्रकार कहे जाते हैं और मानवीय सृष्टि में उन्होंने सामान्य मानव अर्थात सामान्य जन को अपने काव्य के केंद्र में रखा है।

कार्ल मार्क्स के द्वंदात्मक भौतिकवाद पर केदार जी की पूर्ण निष्ठा रही है। वह साहित्य का मूल्यांकन भी इसी आधार पर करते हैं। कविता का उद्देश्य बताते हुए वह कहते हैं कि–"मैं कविता को मानवीय चेतना की दिशा और दृष्टि देने वाली सक्षम इकाई मानता हूं। इस इकाई के द्वारा ही यथार्थ और आदर्श की संगतियां और विसंगतियां निरूपित होकर आदमी को आदमी होने के लिए प्रेरित करती है ताकि वह समाज स्थापित हो सके जो शोषण विहीन हो और समता के आधार पर उत्तरोत्तर उन्नति करता रहे"। अपने इसी दृष्टिकोण के कारण वह छायावाद की रुमानी भावुकता का विरोध करते हैं, रीतिकाल की तुकबंदी की उपेक्षा करते हैं और कहते हैं कि–"अब हिंदी कविता न रस की प्यासी है न अलंकार की इच्छुक है और न ही संगीत की तुकांत पदावली की भूखी है। भगवान उसके लिए व्यर्थ है। आज जिसके कि राजा शासक है पूंजीपति पोषक हैं। अब वह बनना चाहती है किसान की वाणी, मजदूर की वाणी, जन-जन की वाणी। इसके लिए कवि को चाहिए कि अपनी निजता निकालकर ऐसी ईकाई बने जो समष्टि की हो सके।" मार्क्स से प्रभावित होने के कारण ही 'चंदू' 'चैतू' 'राम परदारथ' 'राम निहोर' (कविता के शीर्षक) जैसे व्यक्ति जो समाज के शोषित व दलित वर्ग में जाते हैं, उनके काव्य के प्रमुख व्यक्ति हैं। केदार जी ने मध्यवर्ग के खोखले आदर्श तथा सर्वहारा वर्ग के श्रम संघर्ष को अपने काव्य का मुख्य उपजीव्य बनाया है। दलित व शोषित वर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं संवेदनाओं और उपेक्षाओं का यथार्थ चित्रांकन इनके काव्य का मुख्य लक्ष्य रहा है। *जब बाप मरा/ तब यह पाया/ भूखे किसान के बेटे ने/ घर का मलबा, टूटी खटिया। कुछ हाथ भूमि। वह भी परती। चमरौधे जूते का तल्ला ...।*

केदार जी ने बुंदेलखंड में रहते हुए वर्ग वैषम्य का भयावह यथार्थ देखा है। दिन-रात एक करके श्रम करने के बावजूद भी श्रमिक के हाथ गरीबी लाचारी, अशिक्षा और पिछड़ापन ही आता है। केदार जी समता मूलक समाज चाहते थे इसलिए मार्क्स के जीवन दर्शन में उनकी आस्था अडिग थी।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि भारतीय कृषि जीवन और मजदूर जीवन का सबसे अधिक और सबसे यथार्थपरक चित्रण केदार के काव्य में मिलता है।

वस्तुतः केदार जी के रूढ़ अर्थों में मार्क्सवादी वही थे। उनकी मार्क्सवादी विचारधारा जीवन संदर्भों के साथ मानव की स्वाभाविक सौंदर्य चेतना से जुड़कर बनी है। *अपूर्वा* की भूमिका में वह यह स्वीकार करते हैं कि उनका काव्य प्रगतिवाद के प्रचलित मानदंडों पर आधारित नहीं है। वह कहते हैं कि उनकी कविताओं में प्रेम (प्रकृति व मानवीय) लोक जीवन, भू-चित्र आदि वर्जित विषयों का बहिष्कार नहीं है। अतः केदार जी मार्क्सवाद का उतना ही अनुसरण करते हैं जितना वह मानवता के विकास में सहायक है। मार्क्सवाद को वह रागात्मकता के साथ स्वीकार करते हैं। हम यह कह सकते हैं कि केदार जी ने मार्क्सवाद को मनुष्य की जिजीविषा और उसकी सौंदर्य प्रियता के समग्र रूप को जोड़ने का महानतम कार्य किया है। मानवीय जिजीविषा के कारण ही केदार जी के काव्य का श्रमिक आशावादी दिखता है। सौंदर्य केदार जी के काव्य का अभिन्न अंग रहा है चाहे वह मानवीय हो या प्राकृतिक।

केदार जी की दृष्टि में मानव जीवन की संपूर्णता ही मानवीय सौंदर्य है। वह मानव जीवन की रागात्मकता और उसके शारीरिक आग्रहों को हेय नहीं समझते हैं बल्कि मानव को उसकी संपूर्णता में संदर्भित और व्याख्यायित करते हैं। नारी सौंदर्य के ये दो उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं–

गांवों की औरतें/सूखा पिसान फांक-फांककर/पीठ पेट एककर/हाड़-तोड़/ मरती है पत्थर रगड़कर। अब नारी सौंदर्य का निर्वसन रूप देखिए–*भूल सकता मैं नहीं/ये कुछ खुले दिन/ओठ से चूमे गए/उजले धुले दिन।* 'हे मेरी तुम' जैसी कविताएं प्रेम के गार्हस्थिक रूप को उकेरती हैं।

केदारनाथ अपनी कविता के लिए साधारण मनुष्य का पक्ष वरण करते हैं, इसीलिए उनकी कविता जटिल न होकर सहज कविता है। ऐसी सहजता हिंदी-साहित्य में तुलसीदास में देखने को मिलती है। सामान्य जन केदार की कविता के केंद्र में है। श्रम सौंदर्य के आधार पर ही वह मनुष्य का भविष्य उज्ज्वल देखते हैं। श्रम सौंदर्य में पूर्ण निष्ठा ही उनके प्रिय प्रतीक हसिया और हथौड़ा को सृजित करते हैं। जहां श्रम है, जहां पसीना बहता है। केदार जी को सौंदर्य वहीं दिखता है। वह मनुष्य के श्रम को प्यार व सम्मान दोनों देते हैं। इसीलिए लोहार, किसान उनके प्रिय मनुष्य हैं–*जो मिट्टी का पूर्ण पारखी/ जो मिट्टी के संग साथ ही/ तपकर, गलकर, जीकर, मरकर/ सोने का सपना/ मिट्टी की महिमा गाता।*

केदारनाथ जी का काव्य मनुष्य और प्रकृति के साहचर्य से बना है इनके काव्य में प्रकृति मनुष्य से अलग नहीं बल्कि एक-दूसरे की अवलंबी है। दोनों का जीवन एक-दूसरे के बिना अधूरा है, अपने इसी दृष्टिकोण के कारण केदार जी सुमित्रानंदन पंत से भिन्न हो जाते हैं। पंत के लिए कभी प्रकृति मानव से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाती है तो कभी वह मानव को सबसे सुंदरतम कहने लगते हैं पर केदार के काव्य में दोनों की अपनी-अपनी सत्ता महत्त्वपूर्ण है। दोनों एक-दूसरे के सहयोगी हैं पूरक या श्रेष्ठतम नहीं हैं। दोनों का जीवन एक-दूसरे के बिना अधूरा है। प्रकृति और मनुष्य के साहचर्य की अद्भुत कहानी

वयां करता एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

एक बीते के बराबर/यह हरा ठिगना चना/बांधे मुरेठा शीश पर छोटे गुलाबी फूल का/सजकर खड़ा है/ पास ही मिलकर उगी है/ बीच में अलसी हठीली/देह की पतली/कमर की है लचीली/नीले फूले फूल को सिर पर चढ़ाकर/वह कह रही है, जो हुए यह। दूं हृदय का दान उसको... यहां प्रकृति की अपनी पृथक सत्ता है पर उसका आधार मानवीय है। यहां प्रकृति का कोमल किसानी चित्रण है। केदार जी की इन्हीं कविताओं के आधार पर उन्हें किसानी चेतना का कवि कहा जाता है।

केदार जी लोक कवि हैं इसलिए उनके काव्य में प्रकृति अपने आंचलिक रूप में चित्रित हुई है। केन नदी केदार जी के काव्य का आधार है और बुंदेलखंड की ऊबड़-खाबड़ ज़मीन काव्य-भूमि रही है। केदार जी ने अपनी प्रतिभा के बल पर गांव की उपेक्षित प्रकृति को हिंदी साहित्य में स्थान ही नहीं दिलाया अपितु उसे सम्मान भी प्रदान किया।

चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया/गिरी धम्म से फिर/ चढ़ी आम ऊपर/उसे भी झकोरा, किया कान में कू/उतरकर भगी मैं हरे खेत पहुंची...हवा हूं, हवा मैं बसंती हवा हूं।

केदार जी के पहले यह बसंती हवा उपवनों में ही दिखाई पड़ती थी परंतु उन्होंने इसे गांव के खेतों में पहुंचाया।

प्रकृति-प्रेमी कवियों से केदार जी का काव्य भिन्न है। केदार जी न तो सूरदास की भांति अपने प्रभु के लिए प्रकृति का सहारा लेते हैं और न ही छायावादी कवियों की भांति प्रकृति को रहस्यमय बनाते हैं। प्रकृति चित्रण में निजी जीवन की अभिव्यक्ति केदार की अपनी विशेषता है। इसके पूर्व सुमित्रानंदन पंत जैसे कवि ने भी प्रकृति के माध्यम से अपने निजी जीवन को उघाड़ने का साहस नहीं किया है–*आज की भोर नहीं है मेरे सुख का ओर छोर। कुसुमित हुए हैं अब मेरे पोर-पोर/तुम्हारे संस्पर्श/ तुम्हारी दीप्ति से।*

केदार जी की प्रकृति मानव जीवन दायिनी है। शायद इसी कारण इन्होंने जितने प्रकृति के चित्र उकेरे हैं वह महज़ प्रकृति का निर्वसन पर्यटन रूप नहीं है बल्कि अनिद्य सुंदरी रूप है। केदार जी ने प्रकृति का निर्वसन रूप सिर्फ देखा ही नहीं है बल्कि उसे आत्मसात करके जीया और भोगा भी है। तभी तो वे कहते हैं कि–

चोली फटी सरस सरसों की/नीचे गिरा फागुनी लहंगा
ऊपर उड़ी चुनरिया नीली/देखो हुई पहाड़ी विवसन/आतप तप्ता।

हिंदी साहित्य में मध्ययुगीन प्रकृति उद्दीपन रूप में रही है परंतु केदार जी के काव्य में यह आलंबन रूप में विद्यमान है। केदार जी की प्रकृति मूलक कविताओं में हमें काल्पनिकता, संगीतमयता, सूक्ष्म ऐंद्रियता, गहन प्रेम की कातरता, चाक्षुप बिंबों और प्रतीकों की सुंदर सजावट स्थूलता के बगैर देखने को मिलती है। प्रकृति केदार के लिए क्या मायने रखती है यह तथ्य उनकी इस पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है–

पेड़ नहीं/पृथ्वी के वंशज हैं/फूल लिए/फल लिए/मानव के अग्रज हैं।

कवि केदार के न रहने पर भी उनकी याद दिलाने के लिए रह गई हैं उनकी रचित पंक्तियां–

हम न रहेंगे तब भी तो ये खेत रहेंगे।
इन खेतों पर घन घहराते शेष रहेंगे
जीवन देते, प्यास बुझाते
श्याम बदरिया के लहराते केश रहेंगे...हम न रहेंगे! ❑

संपर्क : ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, सारनाथ, वाराणसी (उ.प्र.)

फार्म-4
(नियम 8 के अंतर्गत)

आजकल के स्वामित्व का विवरण

(1)	प्रकाशन का स्थान	नई दिल्ली
(2)	प्रकाशन की अवधि	मासिक
(3)	मुद्रक का नाम नागरिकता पता	श्रीमती अरविन्द मनजीत सिंह भारतीय अपर महानिदेशक (प्रभारी) प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, लोदी रोड नई दिल्ली-110 003
(4)	प्रकाशक का नाम नागरिकता पता	श्रीमती अरविन्द मनजीत सिंह भारतीय अपर महानिदेशक (प्रभारी) प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, लोदी रोड नई दिल्ली-110 003
(5)	संपादक नागरिकता पता	सीमा ओझा भारतीय सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, लोदी रोड नई दिल्ली-110 003
(6)	उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समस्त पूंजी के 1 प्रतिशत से अधिक के साझीदार व हिस्सेदार हैं	प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, लोदी रोड नई दिल्ली-110 003

मैं श्रीमती अरविन्द मनजीत सिंह, घोषणा करती हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

(श्रीमती अरविन्द मनजीत सिंह)
प्रकाशक

पुस्तक चर्चा

दुर्लभ मैत्री दुर्लभ संवाद

मित्र संवाद, भाग 1 व 2 : संपादक : रामविलास शर्मा, अशोक त्रिपाठी;
प्रकाशक : साहित्य भंडार, इलाहाबाद।

केन-कून की काली मिट्टी, वह भी तुम हो! रामविलास पठाए चिट्ठी, वह भी तुम हो।/कड़ी धूप में सड़क किनारे भरे तगारी, तोड़े गिट्टी, वह भी तुम हो।/अंगारों पर सिकती लिट्टी, वह भी तुम हो।/देख लो, सुन लो, अभागो!/दृश्य यह अब भी बचा है।/ऋचा पर गिरती ऋचा है!

रामविलास शर्मा जीवन-भर केदारनाथ अग्रवाल को चिट्ठी पठाते रहे। उनकी यह दुर्लभ-दोस्ती जवानी से शुरू होती है और ता-उम्र चलती है। पिछली शताब्दी का तीसरा दशक। आज़ादी आने में अभी देर थी। लेकिन उसकी सुगबुगाहट सुनाई देने लगी थी। उस दौर से इनके बीच पत्राचार शुरू होता है। एक बनता हुआ आलोचक—एक बनता हुआ कवि। रामविलास विचारधारा—विश्वचेतना-अंग्रेज़ी के ज़रिए विश्व साहित्य से जुड़े रामविलास और केदारनाथ अग्रवाल बांदा के पत्थरों और जल से बना एक सच्ची 'भारतीय आत्मा' यह इनकी दोस्ती का विपरीत आकर्षण था—जो इनके आपसी पत्र-व्यवहार में दिखाई पड़ता है।

अपने समय के एक दिग्गज आलोचक और एक सच्चे कवि के आपसी पत्रों की यह अद्भुत किताब *मित्र संवाद* 1991 में प्रकाशित हुई। आज इस किताब का शुमार हिंदी की क्लासिक कृतियों में किया जाता है। अब इस पुस्तक का नया और परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक केदारनाथ अग्रवाल साहित्य के अध्येता डा. अशोक त्रिपाठी ने रामविलास शर्मा के परामर्श, प्रेरणा और सुझाव पर संपादित की थी।

रामविलास शर्मा *मित्र संवाद* की भूमिका में लिखते हैं—'*मित्र संवाद* में केदार से मेरी बातचीत जुलाई 1935 में शुरू होती है और नवंबर 1943 तक अकेले मैं ही बोलता रहा हूं। इसका कारण यह है कि इस बीच केदार के लिखे सारे पत्र नष्ट हो गए हैं।' वे आगे केदार के गद्य की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—'केदार के कवि-जीवन के आदिकाल से मैं उनके गद्य का प्रशंसक रहा हूं। पद्य की नुक्ताचीनी, गद्य की प्रशंसा बरसों तक—यह व्यापार देखकर केदार ने यह समझा हो कि मुझे उनकी कविता पसंद नहीं है तो इसमें आश्चर्य ही क्या? *केदारनाथ अग्रवाल और प्रगतिशील काव्यधारा* के प्रकाशन के बाद उनका यह भ्रम बहुत कुछ मिट गया है लेकिन शायद पूरी तरह नहीं क्योंकि मैं उनके गद्य का प्रशंसक अब भी हूं। अतः मैं घोषित करता हूं कि केदारनाथ अग्रवाल अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और मुझे उनकी कविता बेहद पसंद है।

मित्र संवाद को पढ़ना एक युग को पढ़ने जैसा है। इन पत्रों के ज़रिए हम आज़ादी से पहले का भारत, आज़ादी के बाद का भारत। मध्यमवर्गीय जीवन की दिक्कतें, परेशानियां। एक संघर्षरत कवि—एक संघर्षरत आलोचक के जीवन की सच्ची झलकियां, साहित्य-संवाद, उस दौर की हलचलें, बौद्धिक-बहसें, राजनीतिक चेतना और इन पत्रों में आने वाले जाने-पहचाने चेहरे—कभी नागार्जुन, कभी शमशेर, कभी बच्चन, कभी अज्ञेय, कभी त्रिलोचन, कभी नामवर—सब इन पत्रों में जीवंत ढंग से आते-जाते रहते हैं। केदार रामविलास को 19.10.56 को लिखते हैं—'बांदा से वापस जाकर नागा बाबा ने मुझ पर एक बड़ी प्यारी कविता लिखी है। 95 पंक्तियों की। नकल भेजूंगा। उन्होंने बांदा को चमचमा दिया है। हम सब उनके कृतज्ञ हैं। फिर मेरे लिए तो उन्होंने कलम ही तोड़ दी। इतना गौरव अब शायद मुझे कभी न मिलेगा—*श्याम सलिल सरवर है बांदा!/नीलम की घाटी में उजला श्वेत कमल-कानन है बांदा! निराला की साहित्य-साधना* जैसी अपूर्व पुस्तक का लेखक निराला के न रहने पर 20/10/61 को केदार को लिखता है—'हां प्यारे, निराला जी अब नहीं रहे। न रोता हूं, न हंसी आती है। उन्हें जितना देखा वह दिल कचोटने के लिए काफी है। जिस निराला ने मेरे सामने गीतिका के गीत, राम की शक्ति पूजा, तुलसीदास, कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा की रचना की थी, वह जीते जी ही मिट गया था। अंतिम बार जब मैंने देखा था तब कुछ घंटों के लिए वह निराला लौट आए थे, उस दिन कवि ने रवि ठाकुर के अपने प्रिय परिचित गीत गाए, अपनी रचनाओं को भी गाया, सुनाया, कालिदास काव्य चर्चा की, मुझसे मिल्टन पढ़वाकर सुना।'

मित्र संवाद को एक उपन्यास की तरह भी पढ़ा जा सकता है। एक आत्मकथा की तरह भी, एक जीवनी की तरह भी और अगर आप चाहें तो इससे एक आलोचना कृति की तरह भी पढ़ सकते हैं। इस पुस्तक के बारे में डा. नामवर सिंह लिखते हैं—'*मित्र संवाद* अंततः जीवन का गद्य है। ग़ालिब ने अगर अपने पत्रों के ज़रिए उर्दू गद्य की नींव डाली और उसे परवान चढ़ाया तो रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल के पत्रों ने हिंदी की 'गद्य की विलुप्त कला' को बचा लिया। प्राणवान गद्य ही, गद्य की रक्षा कर सकता है। इस दृष्टि से *मित्र संवाद* उस गद्य की विलुप्त कला का अप्रतिम दस्तावेज़ है।'

रामविलास केदार को लिखते हैं—"दिमाग को कुरेदने से ऐसी बातें कहां निकलती हैं! राम रूप पर विह्वल होकर तुलसीदास ने दुख की थाह न पाकर जैसे एक दिन कहा था—कियो न कछू करिबो न कछू, कहियो न कछु, करबोई रह्यो है। उसी तरह सुन्न महल में बैठकर अनहद नाद सुनने वाले कबीर ने एक बार कहा था—*जद का माई जनमिया, कदे न पाया सुख/डारी-डारी मैं फिरया, पाते-पाते दुख।* दुख के इस बोल पर हम रहस्यवादियों का सारा आनंद और प्रकाश निछावर करते हैं।"

रामविलास और केदार की इस दुर्लभ मैत्री पर नामवर सिंह का यह आकलन देखिए—"दुनिया की तो नहीं कह सकता, लेकिन रामविलास-केदार की दोस्ती की मिसाल हिंदी में नहीं है। इस मैत्री की विशेषता है कि यह समालोचक और कवि के बीच विकसित हुई। समालोचना का काम ही ऐसा है कि समालोचक मित्रविहीन होने के लिए अभिशप्त है। ऐसी स्थिति में कवि केदार और समालोचक रामविलास की मैत्री एक आश्चर्य ही है।' और ऐसा नहीं है कि रामविलास और केदारनाथ में—एक कवि में और एक समालोचक में टकराव नहीं रहा है। यह टकराव इन पत्रों में जगह-जगह लक्षित किया जा सकता है, लेकिन यह टकराव उनकी आपसी मैत्री में, प्रेम की बहती छाया में कभी नहीं आया—इसलिए इसे एक दुर्लभ दोस्ती कहा जा सकता है।

अशोक त्रिपाठी ने *मित्र संवाद* का संपादन बेहद सूझ-बूझ, मेहनत और लगन से किया है। भूमिका रामविलास जी ने लिखी है। अशोक त्रिपाठी ने इस पुस्तक के संपादन से गुजरते हुए जो कुछ अनुभव किया, उसे उन्होंने *मित्र संवाद से गुजरते हुए* में लिखा है। इसमें अशोक त्रिपाठी ने स्वर्ण जयंती से आगे तक चलने वाली इस मैत्री और पत्र-व्यवहार का व्यापक जायज़ा लिया है। अशोक त्रिपाठी लिखते हैं—"इस पुस्तक में कीट्स, मिल्टन, वाल्टन, वाल्ट व्हिटमेन, कालिदास, भवभूति, वाल्मीकि, कबीर, सूर, तुलसी आदि पर दोनों मित्रों की टिप्पणियां, इन कवियों की रचनाओं के कई नए आयाम उद्घाटित करती है। ये टिप्पणियां साहित्य की अनूठी निधि हैं। भवभूति के बारे में

समीक्षा

कहें केदार सहज खरी

मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल; संपादन : नरेंद्र पुंडरीक; प्रकाशक : किताबघर, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; पृष्ठ संख्या : 163, मूल्य : 200 रुपये।

लोक और समाज से गहरा जुड़ाव रखने वाले जनकवि केदारनाथ अग्रवाल आधुनिक हिंदी कविता की प्रगतिशील धारा के प्रमुख कवियों में से एक रहे हैं। अपनी कविताई के बारे में उन्होंने *लोक और आलोक* (1957) की भूमिका में स्पष्ट लिखा था—'कविताई न मैंने पायी, न चुरायी। इसे मैंने जीवन जोतकर, किसान की तरह बोया और काटा है। यह मेरी अपनी है और मुझे प्राण से अधिक प्यारी है। किंतु इसे मैंने कपाट और कोठे की बंदिनी बनाकर अपने अहं की चेरी के रूप में नहीं रखा। मैंने कविता को सरिता के रूप में जनता तक पहुंचाया है।'

जनता से कविता को जोड़ने वाले ऐसे कवि केदार से की गई बातचीत का संकलन *मेरे साक्षात्कार : केदारनाथ अग्रवाल* नाम से नरेंद्र पुंडरीक ने तैयार किया है। इसमें केदार जी से धनंजय वर्मा, सोमदत्त, अशोक वाजपेयी, कमला प्रसाद, भगवत रावत, राजेश जोशी, अजय तिवारी, अजित पुष्कल, ओमप्रकाश गर्ग, आलोक यात्री, रामचंद्र मानवीय, अशोक लव, मीनूरानी दूबे और नरेंद्र पुंडरीक की बातचीत संकलित है जिसके माध्यम से हम कवि केदारनाथ अग्रवाल के व्यक्तित्व, चिंतन, रचनाकर्म और जीवन के विविध पहलुओं को सहज ही जान-समझ सकते हैं।

मार्क्सवाद के प्रति अडिग आस्था रखने वाले कवि केदार रामचंद्र मालवीय के एक प्रश्न के जवाब में कहते हैं कि 'मार्क्सवाद सार्वदेशिक जीवन-दर्शन है जो आदमी को महान मानवीय मूल्यों से विचरित जीवन की ओर ले जाता है।' इसके साथ ही उनका मानना है कि—'मार्क्सवाद का जीवन-दर्शन उस भारतीय दृष्टिकोण से निश्चय ही मेल नहीं खाता, जिसको लेकर देश में यथास्थिति को बनाए रखने की दलील दी जाती है तथा धर्म और धर्मांधता को प्रश्रय देते हुए आदमी-आदमी के बीच की दूरी, वर्ग के हित में बनाए रखी जाती है। यह दृष्टिकोण सचमुच में भारतीय चिंतकों का दृष्टिकोण नहीं है। भारतीय जीवन को तो श्रेष्ठतम चिंतन-पद्धति से विश्वबंधुत्व की ओर ही जाना चाहिए और वह उसी ओर जाकर ही वास्तविक मानवतावाद की उपलब्धि कर सकता है, अन्यथा तथाकथित संकुचित वृत्ति के भारतीय दृष्टिकोण से विषमता और वर्गभेद ही बना रहेगा और आदमी आदमी से लड़ता-झगड़ता, मरता-खपता रहेगा। प्रगतिवादी आंदोलन के कारण केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, शमशेर और त्रिलोचन एक-दूसरे के निकट आए। इनके बीच की आत्मीयता साहित्य में सर्वविदित है। इन कवियों ने एक-दूसरे पर कविताएं भी लिखी हैं। नरेंद्र पुंडरीक ने इनकी आपसी रागात्मकता को लेकर केदार जी से कई बेबाक सवाल किए हैं। ऐसे प्रश्नों का उत्तर भी उन्होंने 'कहें केदार खरी-खरी' वाले अंदाज़ में दिया है। वे कहते हैं—'मैं अपने प्रगतिवादी ख़ेमे के अन्य कवियों से अलग रहकर अपनी मानसिकता से पहले अपने को समझता, तब उसे व्यक्त करता और फिर उसे सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मानवीय स्वरूप देने के लिए प्रतिबद्ध होता रहता था। न तो व्यंग्य लिखकर आदमी को आदमी बनाया जा सकता है, न दैनिक वस्तुपरकता के विवरण से आदमी की आत्मवत्ता को विकसित किया जा सकता है।'

इसी तरह के तमाम सवालों जैसे जाति, धर्म, राजनीति, रूपवाद, नई कविता, *तार सप्तक* में उनका शामिल न होना, हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति, आलोचकों की भूमिका, मुक्तिबोध, डा. रामविलास शर्मा से मित्रता के बारे में और इसके साथ-साथ केन नदी, कमासिन गांव, कचेहरी, बुंदेलखंड की धरती की गंध, हवा, धूल आदि-आदि...जो कुछ भी उनसे पूछा गया, सबके बारे में केदार जी अपने जीवन-अनुभव से, अपने जीवन-दर्शन और अपनी कविता से उसे जोड़ते हुए बड़े आत्मीय और सहज ढंग से हर सवाल का जवाब देते हैं। पेशे से वह वकील थे, लेकिन वकील और कवि होने के साथ-साथ वे एक अच्छे मनुष्य थे। वकालत और कवि-कर्म से संबंधित एक प्रश्न के जवाब में वे स्पष्ट कहते हैं कि 'वकालत मैंने सच को झूठ और झूठ को सच करने के लिए नहीं की, न ही निर्दोष को दोषी ठहराने के लिए की। वकालत मैंने विवेक और बुद्धि से, आम आदमी का हमदर्द होकर सच को सच और झूठ को झूठ साबित करने के लिए की। वह मेरे कमजोर हाथ को विवेक का बल देकर सही दिशा में कलम चलाने के लिए प्रेरित करती रही और मेरी वकालत और मेरी कविताएं सहधर्मिणी होकर मेरे साथ जीती रहीं।' मनुष्य और प्रकृति से प्यार करने वाले ऐसे जनकवि केदारनाथ अग्रवाल के साक्षात्कारों का संकलन-संपादन करके नरेंद्र पुंडरीक ने एक बड़ा काम किया है। निश्चय ही इस किताब को पढ़ते हुए पाठकों को कवि केदार से बातचीत करने जैसा सुख मिलेगा।

—श्याम सुशील

रामविलास का यह कहना कि—केवल भवभूति को पढ़ने के लिए संस्कृत सीखनी चाहिए। वाल्मीकि की तो वे बराबर प्रशंसा करते हैं और कालिदास को पढ़ने के लिए केदार जी से कहते हैं—'ससुरे संस्कृत पढ़'।"

एक जगह केदार जी ने लिखा है—"सांस का ज़ोर मेरी पंक्तियों में आवे, मेरी यही साधना है।" मित्र संवाद की पंक्ति-पंक्ति में हमें सांसों का ज़ोर दिखाई पड़ता है, सुनाई पड़ता है। इसी तरह पत्रों से गुजरते हुए हम पाते हैं कि एक नए तरह के मार्मिक सहज पात्र और देशज गद्य का निर्माण हमारे सामने हो रहा है। इसके साथ ही हमें इन पत्रों के ज़रिए एक बनते हुए कवि और बनते हुए आलोचक को भी बहुत नज़दीकी से और गहराई से देख सकते हैं। रामविलास शर्मा और केदारनाथ अग्रवाल दोनों पर ही निराला का गहरा प्रभाव है। निराला को लेकर दोनों के बीच बहस भी है। राम की शक्ति पूजा को लेकर केदार शंकित हैं। लेकिन धीरे-धीरे वे पूरी तरह निरालामय हो जाते हैं।

मित्र संवाद एक ऐसा दर्पण है, जिसमें हम एक पूरे युग को उसकी तमाम हलचलों के साथ देख सकते हैं। जीवन-साहित्य-राजनीति-समाज उसमें सब दिखाई पड़ता जाता है। बीस बरस पहले प्रकाशित हुई *मित्र संवाद* आज हिंदी की एक ज़रूरी किताब बन गई है और अब इसका दूसरा संस्करण बहुत सुसंपादित रूप में सुरुचि पूर्ण ढंग से प्रकाशित हुआ है, जिसके मुखपृष्ठ पर केदार के बांदा वाले घर का एक चित्र है, जिसमें लुंगी पहनकर रामविलास जी एक टूटी-फूटी आरामकुर्सी में धंसे हुए हैं, और केदार जी दूसरी आरामकुर्सी में धंसे हुए। सामने एक टेबल। नीचे हवाई चप्पल। यह प्राचीर भी यादगार है और यह पुस्तक भी! अंत में इतना ही—*सौ के होते/अगर आज तुम जीवित होते!/'चिंताओं की घनी भाप से/सीझे हुए' धवल-केशों को/केन-नदी के जल से धोते!/नागार्जुन, शमशेर, त्रिलोचन के तुम संगी/काशी में रहने वाले बुनकर के बेटे/ खुसरो के पोते!/तुम जीवित हो, और रहोगे!*

—कृष्ण कल्पित

दो जीवन

कली निगाह में पली
हिली-डुली कपोल में
हृदय-प्रदेश में खिली
तुली हंसी की तोल में।

गरम-गरम हवा चली
अशांत रेत से भरी
हरेक पांखुरी जली
कली न जी सकी, मरी।

बबूल आप ही पला,
हवा से वह न डर सका
कठोर ज़िंदगी चला
न जल सका, न मर सका।

मांझी न बजाओ बंशी

मांझी! न बजाओ बंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता है जैसे जल डोलता
जल का जहाज़ जैसे पल-पल डोलता
मांझी! न बजाओ बंशी मेरा प्रन टूटता
मेरा प्रन टूटता है जैसे तृन टूटता
तृन का निवास जैसे बन-बन टूटता
मांझी! न बजाओ बंशी मेरा तन झूमता
मेरा तन झूमता है तेरा तन झूमता
मेरा तन तेरा तन एक बन झूमता।

धूप धरा पर उतरी

धूप धरा पर उतरी
जैसे शिव के जटाजूट पर
नभ से गंगा उतरी।
धरती भी कोलाहल करती
तम से ऊपर उभरी!!
धूप धरा पर बिखरी!!

बरसी रवि की गगरी
जैसे ब्रज की बीच गली में
बरसी गोरस गगरी।

फूल-कटोरों-सी मुसकाती
रूप-भरी है नगरी!!
धूप धरा पर निखरी!!

धीरे से पांव धरा धरती पर किरनों ने

धीरे से पांव धरा धरती पर किरनों ने
मिट्टी पर दौड़ गया लाल रंग तलुवों का।

छोटा-सा गांव हुआ केसर की क्यारी-सा
कच्चे घर डूब गए कंचन के पानी में।

डालों की डोली में लज्जा के फूल खिले
ऊषा ने मस्ती से फूलों को चूम लिया।

गोरी ने गीतों से सरसों की गोद भरी,
भौरों ने गोरी के गालों को चूम लिया।

हिम से हत संकुचित प्रकृति अब फूली

हिम से हत संकुचित प्रकृति अब फूली
रूप-राग-रस-गंध-भार भर झूली
रंगों से अभिभूत हुई चट्टानें
जड़ता में जागी जीवन की तानें
नभ में भी आलोक-नील गहराया
सागर ने संगीत तरंगित गाया
आठ रूप शिव के, समाधि को त्यागे
मृण्मय अवनी के अंगों में जागे
वासंतिक वैभव, यौवन पर आया
हरा-भरा संसार खिला मुसकाया।

पक्षी जो एक अभी-अभी उड़ा

पक्षी जो
एक अभी-अभी उड़ा
और बोलती लकीर-सा
अभी-अभी
नील व्योम-वक्ष में समा गया
गीत वहां
गाने के लिए गया
गाएगा
और लौट आएगा
पक्षी जो
एक अभी-अभी उड़ा।

धीरे उठाओ मेरी पालकी

धीरे उठाओ मेरी पालकी
मैं हूं सुहागिन गोपाल की
बेला है फूलों के माल की
फूलों के माल की—
धीरे उठाओ मेरी पालकी।

धीरे उठाओ मेरी पालकी
मैं हूं बंसुरिया गोपाल की
बेला है गीतों के ताल की
गीतों के ताल की—
धीरे उठाओ मेरी पालकी

धीरे उठाओ मेरी पालकी
मैं हूं सुरतिया गोपाल की
बेला है मनसिज के ज्वाल की
मनसिज के ज्वाल की—
धीरे उठाओ मेरी पालकी।

रवि-मोर सुनहरा निकला

रवि-मोर सुनहरा निकला
पर-खोल सबेरा नाचा
भू-भार कनक-गिरि पिघला
भूगोल मही का बदला।

नवजात उजेला दौड़ा
कन-कन बन गया रुपहला।

मधुगीत पवन ने गाया
संगीत हुई यह धरती
हर फूल जगा मुसकाया!

डाक तार पंजीयन सं. डीएल (एस)-05/3222/2009-11 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस U(DN)49/2009-11
Postal Regn No. DL(S)-05/3222/2009-11 दिल्ली डाक आर एन आई 701/57
Licenced U (DN) 49/2009-11 to post without pre-payment at RMS Delhi Delhi Postal R N I 701/57

वार्षिक मूल्यः 100 रुपये

प्रकाशक व मुद्रक, अरविन्द मनजीत सिंह, अपर महानिदेशक (प्रभारी) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए अंकिता आर्ट प्रिंटर्स, 226, डी.एस.आई.डी.सी. कॉम्प्लेक्स, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-1 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित संपादकः सीमा ओझा